“सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : विचार एवं रचना दृष्टि”

हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय

में

पीएच.डी.(हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

शोधार्थी

वीरेन्द्र प्रताप सिंह

एम. ए., बी. एड्., एम. फिल.

जवाहर नवोदय विद्यालय

वालपई, उत्तर गोवा –**403506**

अप्रैल–2016

“सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : विचार एवं रचना दृष्टि”

हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय

में

पीएच.डी.(हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

शोधार्थी

वीरेन्द्र प्रताप सिंह

एम. ए., बी. एड्., एम. फिल.

जवाहर नवोदय विद्यालय

वालपई, उत्तर गोवा,

गोवा –**403 506**

शोध–निर्देशक

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

(अध्यक्ष)

हिन्दी विभाग

गोवा विश्वविद्यालय

गोवा– **403 206**

अप्रैल–**2016**

Certificate

As per the Goa University Ordinance, I certify that this thesis entitled ***"Sarveshwar Dayal Saxena : Vichar evam Rachana Drishti"*** **"सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : विचार एवं रचना दृष्टि"** *is a record of research work done by the candidate himself during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.*

Dated: 5 April, 2016

Taleigoa Plateau,

Goa -403 206

Research Guide

Dr. R .N. Mishra
Head,
Department Of Hindi
Goa University
Goa - 403 206

Declaration

I the undersigned himself declare that this thesis entitled ***"Sarveshwar Dayal Saxena: Vichar evam Rachana Drishti"*** **"सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाः विचार एवं रचना दृष्टि"** *has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of any degree or diploma of this University or any other university.*

Dated: 5 April, 2016
Taleigao Plateau,
Goa -403206

Virendra Pratap Singh
Hindi Department
Goa University- Goa

प्राक्कथन

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना समकालीन हिन्दी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। मूलतः उनकी पहचान तीसरे सप्तक के एक प्रखर रचनाकार के रूप में की जाती है। उन्होंने न सिर्फ काव्य के क्षेत्र में अपनी सशक्त पहचान बनायी अपितु कथाकार, नाटककार, संपादक तथा पत्रकार के रूप में भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उनके विचार युग परिवेश की उपज हैं जिनसे उनकी रचना-दृष्टि का निर्माण हुआ है। समाज में व्याप्त असमानता, शोषण और मूल्यहीनता उनके साहित्य का आधार है।

साहित्यकार समाज का दिग्दर्शक होता है लेकिन उसकी महत्ता तभी सार्थक है जब वह अपने साहित्य को सहित का भाव देने में समर्थ हो। जब तक यह भाव साहित्य में विद्यमान नहीं होता तब तक साहित्य प्रायः अपूर्ण ही रहता है। हिन्दी में साहित्य को सहित का अर्थ देने की परम्परा नवीन नहीं है। यह कबीर, सूर, तुलसी आदि मध्यकालीन प्रतिनिधि रचनाकारों से होते हुए आधुनिक साहित्यकारों, अज्ञेय, मुक्तिबोध और बाबा नागार्जुन तक वैसी ही चलती आ रही है। इसी परम्परा की एक नूतन कड़ी सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हैं।

सर्वेश्वर का संपूर्ण साहित्य आम आदमी को केन्द्र में रखकर रचा गया है। उन्हें सर्वहारा एवं मध्य वर्ग का प्रतिनिधि रचनाकार कहा जाता है जिनकी विचारधारा और रचना-दृष्टि सामान्य जन से जुड़ती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के समग्र साहित्य में गरीबों के पक्षधर होने की ध्वनि साफ सुनाई देती है। उन्होंने जहां भी अनैतिक, अनाचार और शोषण देखा है, उसे बिना किसी लाग-लपेट के पूरी ईमानदारी के साथ अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। इसके साथ ही प्रकृति, प्रेम और लोक संवेदना के विविध रूपों का चित्रण भी उनके साहित्य में देखने को मिलता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पर मार्क्स, गांधी और लोहिया के विचारों का प्रभाव उनके साहित्य के विविध रूपों में दृष्टिगोचर होता है। आपके साहित्य में समाज के विभिन्न वर्गों की चेतना का प्रस्फुटन हुआ है, जहां मध्यवर्गीय जीवन के साथ-साथ लोक जीवन के विविध रूपों की झांकी भी मिलती है, जिसमें प्रकृति और प्रेम का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। इसी प्रकार मानवीय प्रेम की सरस अभिव्यक्ति भी सर्वेश्वर के साहित्य में बड़ी ही सहजता से प्रकट हुई है।

सर्वेश्वर के बचपन का अधिकांश समय गांव में ही बीता था जहां न सिर्फ उन्होंने अपना बचपन गुजारा बल्कि उसे भोगा भी था। गांव और उसकी मिट्‌टी के प्रति यह जुड़ाव उनके साहित्य में भी लोक-संपृक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

शोध की दृष्टि से देखा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पर अनेक शोध कार्य हो चुके हैं लेकिन उनके साहित्य में अभिव्यक्त विचारों और उनकी रचना-दृष्टि पर अभी तक मेरे संज्ञान में कोई शोध कार्य संपन्न नहीं हुआ है। अतः इस क्षेत्र में शोध की संभावना होने के कारण ही मैंने इस विषय पर शोध-प्रबंध लिखने का निर्णय लिया।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मैंने सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के विचारों और उनकी रचना-दृष्टि को विवेचित और विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इस क्रम में मैंने शोध-प्रबंध को सुविधा की दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाः व्यक्ति, परिवेश और जीवन रेखा' के अंतर्गत सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के जीवन, शिक्षा, परिवेश तथा उनके कार्यक्षेत्र का उल्लेख किया गया है, क्योंकि किसी भी साहित्यकार और उसकी रचना-दृष्टि को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करना आवश्यक है। वस्तुतः विचार का परिवेश और व्यक्तित्व से गहन संबंध होता है। इसलिए इस अध्याय में मैंने सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं का उल्लेख करते हुए उनकी जीवन रेखा को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इस क्रम में मैंने सर्वप्रथम सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व के विविध आयामों की चर्चा करते हुए उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों और परिस्थितियों पर भी संक्षिप्त रूप से

प्रकाश डाला है। वस्तुतः यह अध्याय विवेचित रचनाकार के जीवन की वह झांकी है जिसे देखे बिना उनकी रचना–दृष्टि को समझना संभव नहीं होगा।

शोध–प्रबंध के दूसरे अध्याय में मैंने सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य की विभिन्न विधाओं का परिचय दिया है। इसके लिए मुझे उनके संपूर्ण साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालनी पड़ी। चूंकि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मूलतः एक कवि हैं इसलिए इस अध्याय में उनके सभी काव्य–संग्रहों का समग्रता के साथ विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही इस अध्याय के अंतर्गत मेरा यह प्रयास भी रहा है कि उनके साहित्य का कोई भी आयाम छूटने न पाए। इस संदर्भ में काव्य के अतिरिक्त मैंने उनके कथा, नाट्‌य एवं पत्रकारिता साहित्य का भी अवलोकन किया है।

तीसरा अध्याय साहित्य और विचार के अंतः संबंधों पर आधारित है। इसमें साहित्य और विचार तथा समाज से उसके सरोकारों पर प्रकाश डाला गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम साहित्य और विचार की अवधारणा और इसके स्वरूप पर चर्चा की गयी है और यह बताने का भी प्रयास किया गया है कि किस प्रकार साहित्य और विचार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते किसी न किसी विचारधारा से प्रभावित होता है। यह बात रचनाकार पर विशेष रूप से लागू होती है क्योंकि वह अपने साहित्य के माध्यम से पाठक के सम्मुख समाज की एक झांकी प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में उसकी वैचारिकता को जान लेना समीचीन होता है। साहित्य और विचार के इन अंतर्संबंधों का गहन विश्लेषण इस अध्याय का आधार है।

चतुर्थ अध्याय 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि' से संबंधित है। इसके अंतर्गत मैंने मार्क्स, गांधी एवं लोहिया की विचारधारा के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन एवं विश्लेषण करते हुए इन चिंतकों की वैचारिक दृष्टि को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य के विविध रूपों में देखने का प्रयास किया है। इस क्रम में सर्वप्रथम उनके सभी काव्य–संग्रहों का विश्लेषण करते हुए उनमें अभिव्यक्त गांधीवाद, मार्क्सवाद और डॉ.राममनोहर लोहिया की समाजवाद संबंधी दृष्टियों की समीक्षा की गयी है। इसके उपरांत उनके समस्त कथा–साहित्य में

अभिव्यक्त उपर्युक्त विचार दर्शन को खोजने का प्रयास किया गया है। चूंकि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपने नाट्य साहित्य के कारण भी चर्चित रहे हैं अतः उनके नाट्य-साहित्य में भी अभिव्यक्त इन विचारधाराओं को जानने का प्रयास इस अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

पंचम् अध्याय 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि' से संबंधित है। वस्तुतः यदि साहित्य लोकोन्मुख न हो तो समाज के लिए उसकी उपादेयता कम हो जाती है। यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि सर्वेश्वर का साहित्य न सिर्फ लोकोन्मुख है बल्कि समाज से गहरा सरोकार भी रखता है। समाज से इसी सरोकार और उनकी लोक-दृष्टि का मूल्यांकन इस अध्याय के अंतर्गत किया गया है। वास्तव में सर्वेश्वर की लोक-दृष्टि का क्षितिज व्यापक है इसीलिए उनकी इस लोक-दृष्टि की झलक उनके लगभग संपूर्ण साहित्य में दिखाई देती है।

छठवें अध्याय में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य के अभिव्यक्ति सौंदर्य पर प्रकाश डाला गया है। इस क्रम में उनके साहित्य में अभिव्यक्त शब्द रूप, गुण, शब्द-शक्ति, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक योजना आदि का विश्लेषण व अनुशीलन किया गया है।

शोध-प्रबंध का अंतिम अध्याय निष्कर्ष से संबंधित है जिसके अंतर्गत सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के विचारों और उनकी रचना-दृष्टि का मूल्यांकन किया गया है। इसी अध्याय में उन सभी तथ्यों का निचोड़ भी प्रस्तुत किया गया है जिनका अध्ययन व विश्लेषण इस शोध-प्रबंध में किया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत मैंने शोध की उपलब्धियों और सीमाओं पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रारम्भ से लेकर परिसमाप्ति तक का सारा श्रेय मेरे शोध निर्देशक डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, पणजी-गोवा) को जाता है। उनके सफल मार्गदर्शन से ही यह महनीय कार्य पूर्ण हुआ है। मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध को अंतिम रूप देने में प्रोफेसर इशरत बी. खान, डा. वृषाली मांद्रेकर और डॉ. विपिन तिवारी तथा डा. ऋषिकेश, (हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, पणजी-गोवा) का हमेशा स्नेह एवं सहयोग प्राप्त रहा। उनके स्नेह,

सहयोग एवं दिशा-निर्देश के लिए शब्दाभाव के कारण मैं श्रद्धानत् हूँ। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर किरण बुडकुले (अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य संकाय, गोवा विश्वविद्यालय, पणजी-गोवा) का भी मैं हृदय से आभारी हूं जिनका स्नेही और ममत्वपूर्ण स्वभाव मुझे अपने इस शोध कार्य को निरंतर पूर्ण करने की प्रेरणा देता रहा।

मैं पुस्तकालयाध्क्ष, गोवा विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, केन्द्रीय पुस्तकालय-पणजी, गोमंतक राष्ट्रभाषा विद्यापीठ-मडगांव और जवाहर नवोदय विद्यालय-वालपोई आदि के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अति आवश्यक एवं दुर्लभ ग्रन्थों को उपलब्ध कराने में मेरी भरपूर मदद की।

मैं अपनी पूज्य माताजी श्रीमती निर्मला देवी, अग्रज श्री प्रदीप सिंह, बहनें श्रीमती गीता सिंह, जया, सुनीता और नमिता का भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिनकी प्रेरणा, आशीर्वाद व निरंतर प्यार के बिना यह कार्य पूर्ण करना संभव नहीं हो पाता। मैं अपने उन सहपाठियों को भी धन्यवाद देता हूँ जिनके योग्य मार्गदर्शन और सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

इस शोध-कार्य को पूर्ण कराने में आत्मीय सहयोग उपलब्ध कराने के लिए मैं अपने विद्यालय के प्राचार्य श्री शिवनाथन जी का हृदय से आभारी हूं जिनके निरंतर सहयोग से ही यह कार्य संभव हो सका है। इसके साथ ही विद्यालय के शिक्षक डॉ. दलवीर सिंह सकलानी, डॉ. आशा सकलानी, श्री नर नारायण, श्री नरेन्द्र पांडव व अपनी छात्राओं विशाखा, रुचिका, आकांक्षा, सेजल आदि के प्रति भी हृदय की गहराई से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे निरंतर सहयोग प्रदान किया।

मैं उन सभी रचनाकारों, आलोचकों व पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी पुस्तकों एवं आलोचनाओं से मैं लाभान्वित हुआ हूँ और अपना यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण कर सका हूँ।

इस शोध-प्रबन्ध की मुद्रण व्यवस्था हेतु मैं श्री रामकृष्ण ठाकुर व नन्दा ठाकुर को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने संगणक से सम्बन्धित सभी कार्य यथासमय पूर्ण करने में मेरी सहायता की।

इस शोध–कार्य के दौरान स्नेह व प्रेम से वंचित रहकर भी कभी शिकायत न करते हुए निरंतर सहयोग देने वाली जीवन संगिनी मधु को धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

अंत में, उन सभी परिचितों–अपरिचितों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिनका नाम स्थानाभाव के कारण यहाँ मैं नहीं ले पा रहा हूँ, परन्तु उनका सहयोग एवं आशीर्वाद मेरे लिए बहुमूल्य रहा है।

सभी को साधुवाद।

वीरेन्द्र प्रताप सिंह

अनुक्रमणिका

प्रथम–अध्याय **1-44**

सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाः व्यक्ति, परिवेश और जीवन रेखा

1 व्यक्तित्व एवं परिवेशः अवधारणा तथा स्वरूप

1.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जीवन–परिचय, शिक्षा एवं कार्यक्षेत्र

द्वितीय–अध्याय **45-136**

सृजन के विविध आयाम

(क) काव्य–साहित्य

2. काव्य–परिचय

2.1 काठ की घंटियाँ

2.2 बाँस का पुल

2.3 एक सूनी नाव

2.4 गर्म हवाएँ

2.5 कुआनो नदी

2.6 जंगल का दर्द

2.7 खूँटियों पर टँगे लोग

2.8 कोई मेरे साथ चले

2.9 अन्य काव्य–साहित्य

(ख) कथा और इतर साहित्य

2.10 उपन्यास

2.10.1 सोया हुआ जल

2.10.2 पागल कुत्तों का मसीहा

2.10.3 सूने चौखटे

2.11 कहानी साहित्य

2.11.1 कच्ची सड़क

2.11.2 अंधेरे पर अंधेरा

2.12 नाट्य साहित्य

2.12.1 बकरी

2.12.2 लड़ाई

2.12.3 अब गरीबी हटाओ

2.12.4 हिसाब-किताब

2.12.5 हवालात

2.12.6 बाल नाट्य-साहित्य

2.13 संस्मरण-साहित्य

2.14 निबंध-साहित्य

2.15 यात्रा-वृत्त

2.16 रेडियो-रूपक

2.17 एकांकी

2.18 नृत्य-नाटिका

2.19 आत्मलेख

2.20 आलोचना

2.21 हिन्दी पत्रकारिता

तृतीय-अध्याय 137-159

साहित्य और विचार का अंतःसंबंध

3.1 साहित्य और विचारः अवधारणा तथा स्वरूप

3.2 साहित्य और विचार का अंतः संबंध

चतुर्थ-अध्याय 160-226

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टिः गांधी, मार्क्स एवं लोहिया के संदर्भ में

खण्ड-क

4.1 महात्मा गांधी की वैचारिक दृष्टि

4.2 काल मार्क्स की वैचारिक दृष्टि

4.3 राममनोहर लोहिया की वैचारिक दृष्टि

खण्ड-ख

4.4 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

4.5 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के कथा-साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

4.6 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाट्य-साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

4.7 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के इतर साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

पंचम्–अध्याय 227-245

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि

5.1 काव्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि
5.2 कथा–साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि
5.3 नाट्य–साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि
5.4 इतर–साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि

षष्ठम्–अध्याय 246-272

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त सौंदर्य–दृष्टि

6.1 भाषिक संरचना
- **6.1.1** शब्द–विधान
- **6.1.2** शब्द–शक्तियां
- **6.1.2** शब्द–गुण

6.2 बिम्ब–विधान
6.3 प्रतीक–योजना
6.4 अलंकार विधान
6.5 मुहावरे एवं लोकोक्तियां
6.6 शैली–विधान

सप्तम्–अध्याय 273-282

अध्ययन का निष्कर्ष

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

अध्याय

1

सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाः व्यक्ति, परिवेश एवं जीवन रेखा

1. व्यक्तित्व एवं परिवेशः अवधारणा तथा स्वरूप

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना समकालीन कविता के एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। समकालीन कविता की व्यापक जनवादी चेतना और प्रगतिशील जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में सर्वेश्वर एक ऐसे कवि के रूप में सुपरिचित हैं जिनकी रचनाएँ पाठकों के साथ निरंतर आत्मीयता का रिश्ता बनाए हुए हैं। उनकी ज्यादातर रचनाएँ उन व्यक्तियों के विरुद्ध खड़ी नजर आती हैं जो जिन्दगी को किसी भी स्तर तक विकृत करने के लिए जिम्मेदार हैं। उनकी समस्त रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की एक अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में जो कुछ भी जिस तरह से भी घटित हुआ है उस सब का निचोड़ सर्वेश्वर के सृजन कार्य में अभिव्यक्त हुआ है। "जीवन और साहित्य का अभिन्न संबंध है। कोई भी साहित्यकार कितना ही तटस्थ हो, फिर भी साहित्य में उसके जीवन के कुछ न कुछ अंश आ ही जाते हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व तो उसके साहित्य में निहित होता ही है। इसलिए उसके साहित्य के मूल में पहुँचने के लिए उसके जीवन में पहुँचने की आवश्यकता होती है।"[1] अतः ऐसे में मुझे भी उनके व्यक्तित्व का अध्ययन एवं विश्लेषण करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। वस्तुतः साहित्य व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के अनुसार– "साहित्यकार का व्यक्तित्व अपने ही अनुरूप विशिष्ट शैली, माध्यम और उपकरण का चयन करता है।"[2]

कोई भी रचना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रचनाकार के व्यक्तित्व से अवश्य ही प्रभावित होती है ऐसे में किसी रचनाकार की सृजनशीलता के विविध आयामों के विश्लेषण और समझ के लिए रचनाकार के व्यक्तित्व का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में कवि सर्वेश्वर के व्यक्तित्व और उनकी सृजनशीलता पर प्रकाश डालने से पूर्व मैं 'व्यक्तित्व' शब्द को व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ।

(क) व्यक्तित्व की अवधारणा एवं स्वरूप

सामान्यतः व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्‌य रूप-रंग तथा शारीरिक गठन आदि से लगाया जाता है जहाँ अच्छे व्यक्तित्व का अभिप्राय व्यक्ति की शारीरिक रचना के सुन्दर होने, उसके स्वस्थ तथा मृदुभाषी होने, उसके स्वभाव और चरित्र के अच्छे होने तथा दूसरों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेने से सुनिश्चित किया जाता है। वास्तव में ये गुण किसी अच्छे व्यक्तित्व के लक्षण मात्र हैं जोकि व्यक्तित्व का एक पहलू है। वस्तुतः व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। "व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। अतः व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है।"[3] व्यक्ति का समस्त व्यवहार सामाजिक परिवेश से अनुकूलन के लिए होता है।

व्यक्तित्व का शाब्दिक अर्थ

व्यक्तित्व अंग्रेजी के शब्द 'पर्सनैलिटी' (Personality) का हिन्दी रूपान्तरण है। यह शब्द लैटिन शब्द 'पर्सोना' (Parsona) से लिया गया है जिसका अर्थ है वेशभूषा, जिसे नाटक करते समय नाटक के पात्र पहनकर तरह-तरह के रूप बदला करते थे। आरम्भ में इस शब्द का अर्थ बाह्‌य आवरण के रूप में लिया जाता था। इस प्रकार व्यक्तित्व शब्द बाह्‌य गुणों की ओर संकेत करता है।

विभिन्न हिन्दी शब्दकोषों में व्यक्तित्व शब्द को स्पष्ट किया गया है- प्रभात बृहत्‌ हिन्दी शब्दकोष में व्यक्तित्व का अर्थ है, "व्यक्ति की पृथक सत्ता, अलग अस्तित्व, व्यक्ति का अपनापन, निजीपन, किसी व्यक्ति की निजी विशेषता, वैशिष्ट्‌य, व्यक्ति होने की अवस्था, भाव"[4]। इसी प्रकार कालिका प्रसाद द्वारा संपादित बृहत्‌ हिन्दी शब्दकोष में व्यक्तित्व का अर्थ- "व्यक्ति की विशेषता, गुण,

वह विशेषता जो किसी व्यक्ति में असामान्य रूप से पायी जाए, व्यक्त होने का भाव (इण्डीविजुएल्टी)"[5] बताया गया है।

सामान्य दृष्टिकोण से अर्थ– जनसाधारण व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्‌य रूप तथा उन गुणों से लगाते हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे को अपनी ओर आकर्षित और प्रभावित करके विजय पाता है।

व्यवहार के दृष्टिकोण से अर्थ– व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो किसी व्यक्ति के व्यवहार का सम्पूर्ण गुण व्यक्तित्व है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से अर्थ– दर्शनशास्त्र के अनुसार– व्यक्तित्व आत्मज्ञान का ही दूसरा नाम है, यह पूर्णता का आदर्श है।

सामाजिक दृष्टिकोण से अर्थ– समाजशास्त्र के अनुसार– व्यक्तित्व उन सब तत्वों का संगठन है जिनके द्वारा व्यक्ति को समाज में कोई स्थान प्राप्त होता है। इसलिये हम व्यक्तित्व को सामाजिक प्रवाह कह सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थ– व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करने पर यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति में आन्तरिक व बाह्‌य जितनी भी विशेषताएं, योग्यताएं और विलक्षणताएं होती हैं उन सब का समन्वित रूप व्यक्तित्व है।

इस दृष्टिकोण के अंतर्गत अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया है। बीसन्ज और बीसन्ज ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए कहा है कि– "व्यक्तित्व मनुष्य की आदतों, दृष्टिकोण तथा विशेषताओं का संगठन है। यह जीवशास्त्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों के संयुक्त कार्य द्वारा उत्पन्न होता है।"[6]

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व को कुछ अलग ढंग से परिभाषित किया है– "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनो–शारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन निर्धारित करता है।"[7]

मनोवैज्ञानिक 'डेवर' व्यक्तित्व को व्यक्ति के सामाजिक जीवन के आदान–प्रदान से जोड़कर देखते हैं। इस संबंध में वे व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए

कहते हैं– "व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के उन शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में प्रदर्शित करता है।"[8]

उपर्युक्त परिभाषाओं और अर्थों का विश्लेषण करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाले अनेक कारक होते हैं जिन्हें सामान्य स्तर से आन्तरिक और बाह्य कारकों के रूप में विभक्त किया जा सकता है। आन्तरिक कारकों के अंतर्गत व्यक्ति की जन्मजात शक्तियाँ, गुण, क्षमताएँ आदि आती हैं वहीं बाह्य कारकों के अंतर्गत व्यक्ति के परिवेश और उसे निर्मित करने वाली परिस्थितियों को शामिल किया जा सकता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व के निर्माण में भी इन्हीं आंतरिक और बाह्य कारकों का योगदान रहा है। इन कारकों को समझने और उनके परिणामों को जानने के लिए मैं रचनाकार के व्यक्तित्व और उसके निर्माणक तत्वों पर संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ।

(ख) सर्वेश्वर का व्यक्तित्व और निर्माणक तत्व

सर्वेश्वर का बाह्य व्यक्तित्व प्रभावशाली था। साँवले चेहरे पर लम्बी नोकदार नाक थी, जो उनके भीतर के पैनेपन को एक निगाह में ही बयाँ कर देती थी। पाजामे के साथ लम्बा कुर्ता पहनकर जब वे किसी सभा में जाते थे तो उनका व्यक्तित्व देखते ही बनता था। कविता पढ़ते समय उनके कंठ में एक अद्‌भुत शक्ति भर जाती थी। विचार और व्यंग्य की ताकत से पाठकों और श्रोताओं को बाँधे रखने की उनमें अदम्य योग्यता थी। वस्तुतः उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में ही व्यंग्य-विनोद की प्रधानता परिलक्षित होती थी। उदाहरणार्थ साहित्य की ओर अपने झुकाव का कारण बताते हुए वे कहते हैं-"शायद कुसंग के कारण अधिक।"[9]

सर्वेश्वर का चेहरा आकर्षक था। आवाज भी खनकदार और गहरी थी। वे जहाँ भी पहुँच जाते थे वहाँ का वातावरण खिल उठता था। चिर युवा मन, हर सुन्दर चीज के प्रति आसक्ति और ठहाकेदार हँसी; जिसे सुनकर लगता था, मानो भीतरी आनंद को अब सुगंध की तरह बिखेरकर ही जाएँगे। ग्रामीण परिवेश में

पले होने के कारण उनका रहन-सहन अत्यंत सादगीपूर्ण था। ऊँचे पदों पर पहुँचने के बावजूद वे बाह्य प्रदर्शन से कोसों दूर थे।

सर्वेश्वर के व्यक्तित्व में निष्पक्षता साफ दृष्टिगोचर होती है। उनका व्यक्तित्व गहन-चिंतन, विनम्र और कर्म साधना से परिपूर्ण था। इस संबंध में तीसरे सप्तक में उनके इस स्वभाव पर की गयी टिप्पणी का विवरण प्रासंगिक होगा- “स्वभाव से न अच्छा न बुरा, बाहर से गंभीर, सौम्य, पर भीतर वैसा नहीं। विपत्ति, संघर्ष, निराशाओं से घनिष्ट परिचय के कारण जरूरत पड़ने पर खरी बात कहने में सब से आगे। अपनों के बीच बेगानों-सा रहने की और बेगानों को अपना समझने की मुख्य आदत थी। काहिली, चुस्ती, सोचना अधिक करना कम, अपनी लीग पर चलना और किसी की परवाह न करना ये उनके मुख्य दोष हैं, दूसरों की दृष्टि में। आकांक्षा कुछ ऐसा करने की, जिससे दुनिया बदल सके। मन का असंतोष और मित्रों का सहयोग उनकी संपत्ति थी।”[10]

उनके व्यक्तित्व में एक अद्भुत सजगता दिखाई पड़ती है। सामान्य से सामान्य आदमी के साथ एकदम मुक्त, स्नेहयुक्त व्यवहार और सबमें प्यार बाँटने की ललक उनके व्यक्तित्व के खास लक्षण हैं। वे किसी भी व्यक्ति की कठिनाई से ऐसे जुड़ जाते हैं मानों वे कठिनाइयाँ उनकी स्वयं की हों और वे उन्हें हर हाल में दूर कर देंगे। उनका मन कोरे सफेद कागज की भाँति स्वच्छ और निर्मल है। ये स्वभाव उनकी कहानी ‘पुलियावाला आदमी’ में स्पष्ट भी हो जाता है, जहाँ पुल पर बैठने वाले आदमी की भूख को देखकर वे द्रवित हो जाते हैं और कहते हैं- “दो एक बार उसे बड़ा सुस्त और मुरझाया हुआ देखकर मैं उसके लिए घर से रोटियाँ ले गया। चाय-बीड़ी वगैरह भी समय-समय पर देता रहा। कभी दो-एक आने पैसे हुए तो वे भी दे दिए।”[11]

उनके बाह्य व्यक्तित्व में गंभीरता थी लेकिन अंदर से वे कोमल ह्दय और दूसरों की पीड़ा से प्रभावित होने वाले थे। उनके व्यवहार में दोहरापन नहीं था।

सर्वेश्वर स्वभाव से शांतिप्रिय व्यक्ति थे। उन्हें गंदगी और शोर-शराबे से चिढ़ थी। वे हर वस्तु को व्यवस्थित तरीके से रखना पसंद करते थे। उनके कुछ अंतरंग मित्रों में विजयदेव नारायण साही और श्यामलाल जैन प्रमुख थे।

उनका व्यक्तित्व अंर्तमुखी था जिस कारण भूल से कुछ लोग उन्हें 'स्नाब' भी कहते थे। वे स्वयं को अक्सर आलसी कहा करते थे। बच्चों के प्रति उनके मन में गहरा लगाव था। 'पराग' में आने से इसी कारण वे काफी संतुष्ट थे। वे कला और साहित्य के अच्छे पारखी थे। इसी संदर्भ में सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने सर्वेश्वर की सराहना करते हुए उन्हें "नये कवियों में सर्वाधिक कलाबोध के पारखी तथा जन्मजात अकृत्रिम, सहज कवि कहा था।"[12] सर्वेश्वर के व्यक्तित्व की ढेर सारी विशेषताओं को देखने और समझने के बाद ही श्री महेश्वरदयाल गंगवार ने उनको शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति रखने वाला साहित्यकार कहा है।

सर्वेश्वर विद्रोही व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। उनका यह व्यक्तित्व उस समाज की देन है जिसमें वे पले-बढ़े। उनकी दृष्टि में परम्परागत समाज के प्रति एक नवीनता का भाव है जो विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आता है। सर्वेश्वर का यह व्यक्तित्व उनके बाल्यकाल से ही जन्म लेने लगा था। उन्होंने समाज में व्याप्त मौकापरस्ती और शोषण को बहुत करीब से देखा और समझा था। इसी कारण वे परिस्थितियों से समझौता न करके जीवन के हर क्षेत्र में विद्रोह का रास्ता अपनाते रहे। उनका यह विद्रोह उनकी कविता तथा उनके नाटकों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे में परिवर्तन के हिमायती के रूप में देखा जा सकता है। इन रचनाओं में सर्वेश्वर का बहुआयामी व्यक्तित्व सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो प्रकट करता ही है, लोकतंत्र और राजतंत्र की उन व्यव्स्थाओं पर भी चोट करता है, जहाँ मानवीय अस्मिता अन्याय और शोषण का शिकार हुई है। वे जीवन में परिवर्तन के पक्षधर हैं। इस संबंध में डॉ.सूर्यप्रकाश विद्यालंकार ने उनके संबंध में कहा है- "सर्वेश्वर अपने से पूर्व की काव्य श्रृंखला को झुठलाते हुए चुनौती के रूप में काव्य में प्रयोग करते हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए हैं।"[13]

सर्वेश्वर नई दिशाओं की ओर चलने का संकल्प लेते हैं-

"लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो हमारी यात्रा से बने

ऐसे अनिर्मित पथ प्यारे हैं।"[14]

नई कविता के क्षेत्र में सर्वेश्वर एक ऐसे कवि हैं जिसने परिवेश में व्याप्त विसंगतियों, विडम्बनाओं और मूल्यहीनता को देखा तथा अनुभव किया और फिर उसे अपनी कविता का आधार बनाया–

"जब सब बोलते थे
वह चुप रहता था,
जब सब चलते थे
वह पीछे हो जाता था,
जब सब खाने पर टूटते थे
वह अलग बैठा टूँगता रहता था,
जब सब निढाल सो जाते थे
वह शून्य में टकटकी लगाए रहता था,
लेकिन जब गोली चली
तब सबसे पहले
वही मारा गया।"[15]

सर्वेश्वर अपने गाँव से गहरा सरोकार रखते हैं, इतना गहरा कि जीवन भर गाँव को अपने भीतर लिए घूमते रहे। उनका बाल्यकाल गाँवों में ही बीता इसलिए ग्रामीण दशा को सर्वेश्वर ने समझा है। पूर्वी उत्तर प्रदेश जहाँ के वे कवि हैं अभी भी गरीबी से भरा है। गाँव की इस गरीबी, भूख, आर्थिक संघर्ष, मध्यवर्गीय पारिवारिक विडम्बनाओं व अंतर्विरोधों को उन्होंने स्वयं देखा और भोगा है इसीलिए उनकी अधिकांश कविताओं में व्यक्ति अनुभव की प्रधानता है। मानवीय मूल्यों का खोखलापन स्वयं देखने और भोगने के बावजूद वे अपने आप को उनसे अलग नहीं कर सके। इस सब के लिए कवि अपने को उत्तरदायी मानता है और अपना निरीक्षण करते हुए कहने लगता है–

"कभी-कभी ऐसा लगता है !
कि मुझे मेरे शरीर से अलग कहीं
प्रतिष्ठित कर दिया गया है,

मैं अपने ही तन से निर्वासित हूँ।"[16]

कवि ने भारत के उस गाँव को देखा है जो सदियों से केवल अपनी संस्कृति को ही ढोता रहा। कुआनों नदी जो गाँवों में है वह उन्हें दिल्ली की सड़कों पर भी दिखाई दे रही है। दिल्ली में रहते हुए भी वे बस्ती जिले की संस्कृति को विस्मृत नहीं कर सके जहाँ की अधिकांश जिन्दगी अधनंगी और भूखे पेट होकर अपना जीवन गुजारती है। इसी कारण उनकी अधिकांश कविताएं भूख और गरीबी पर आधारित हैं। भूख से लड़ते व्यक्ति की वह प्रसंसा भी करते हैं–

"जब भी,
भूख से लड़ते
कोई खड़ा हो जाता है;
सुन्दर दीखने लगता है।"[17]

गाँव के परिवेश से जुड़े रहने के कारण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी रचनाओं में लोकभाषा का अत्यधिक प्रयोग किया है। लोकधुनों का अनुकरण भी कवि की कुछेक कविताओं में देखा जा सकता है। इन लोकगीतों ने उनके मन पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उनकी सम्पूर्ण सृजनात्मकता ही लोक लय से थिरकती प्रतीत होती है। उनकी 'चरवाहों का युगल गान', 'सावन का गीत', 'चुपाई मारो दुलहिन', 'झूले का गीत' आदि कविताएँ गाँव की भाषा में लिखी गई कविताएँ हैं। उनके सम्पूर्ण सृजन–कर्म में गाँव अनेक रूपों में उभरता है यद्यपि गाँव की दुखद स्मृतियाँ इसमें अधिक परिलक्षित होती हैं। स्वयं उनके शब्दों में– "गाँव के बाहर माता–पिता का बनवाया एक मकान है, जो मेरे लिए उनकी समाधि है। आर्थिक संघर्ष से जूझता निम्न मध्य वर्ग का वह मेरा छोटा–सा परिवार उस मकान के पीछे तबाह हो गया। उसकी छत आज तक चूती है। बगल में इतना सटा हुआ कि उसकी एक तरफ की दीवार मेरा घर है, एक अनाथ आश्रम है। बचपन का अधिकांश समय जिसमें बच्चों के साथ कटा और आज भी हर निराश्रित क्षण में अपने को उन बच्चों के बीच बैठा हुआ पाता हूँ।"[18] अपने एक आत्म लेख 'परिचय अपना और अपनी कहानी का' में वे लिखते हैं– "माँ अध्यापन कार्य

करती और एक लम्बी बीमारी क्षय-ग्रस्त से जूझती मुझसे यह कहकर चल बसी कि महात्वाकांक्षा से हीन जीवन का कोई अर्थ नहीं है।"[19]

सर्वेश्वर एक ऐसे व्यक्ति थे जो अन्याय के प्रति आक्रोश से भरे थे। दुख उनका जन्मजात साथी था। किशोरावस्था में ही माँ की मृत्यु हो गयी और युवावस्था में पत्नी उन्हें छोड़कर चल बसी। पत्नी के निधन का दर्द बार-बार उनकी कविताओं में भी प्रतिध्वनित हुआ है। यह दर्द उनकी साँस-साँस में समा गया है। 'गर्म हवाएँ' संग्रह में 'सूखा-खण्ड' नामक रचना पत्नी विमला को ही समर्पित है। अर्द्धांग से बिछड़ने की कितनी टीस, कितनी वेदना, कितना अकेलापन और कितनी व्यथा है इसे उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है-

"बाएँ हाथ में ले
अपना कटा हुआ दाहिना हाथ
बैठा हूँ मैं घर के उस कोने में
जिसे तुम्हारी मौत
कितनी सफाई से खाली कर गयी है।"[20]

इस प्रकार दोनों बेटियों के दुख-दर्द, समाज के सुख-दुख और गरीबों के आँसू पोंछने में ही उनका जीवन समाप्त हो गया। परिश्रम, कर्तव्यनिष्ठा और निरंतर संघर्ष ही उनके जीवन का पाथेय रहा। सबसे बड़ा आघात तो उन्हें तब लगा जब उनके एक मात्र पुत्र का भी निधन हो गया। पर इन आघातों से सर्वेश्वर टूटे नहीं बल्कि दृढ़ हुए। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि उनका पारिवारिक जीवन संघर्षमय रहा। गरीबी, अभाव, आर्थिक संघर्ष और चोट पर चोट ने उनके पारिवारिक जीवन को 'अकेलापन' में बदल दिया। "इसी 'अकेलापन' और तज्जन्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है जो उनके पारिवारिक जीवन की प्रतीक है।"[21]

वे एक कलाप्रेमी व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं में कलाकारों के प्रति लिखी अनेक कविताएँ मिलती हैं। 'वह एक शब्द', 'मत कहो,' 'सुर मयूर', 'तानाशाही से लड़ती एक कवयित्री', 'जी स्वामीनाथन् के लिए चार कविताएँ', 'सुरों के सहारे-1', 'सुरों के सहारे-2' आदि कविताएँ उन्होंने केवल कलाकारों पर ही लिखी हैं।

वास्तव में उनकी रचनाधर्मिता के कई रूप थे। अपने यात्रा-संस्मरण 'कुछ रंग कुछ गंध' में सर्वेश्वर अद्‌भुत गद्य लिखते हैं। उन्होंने 'चरचे और चरखे' स्तम्भ के जरिए साहित्य, राजनीति, कला, संस्कृति और संगीत पर बेबाक टिप्पणियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता को समृद्ध किया। 'नवजागरण टाइम्स' के संस्कृति अंक के लेखों में उनका सांस्कृतिक बोध प्रखरता से गतिशील होता है। अनेक ललित कलाओं से जुड़ने के कारण सर्वेश्वर का सौन्दर्यबोध काफी परिष्कृत था। "संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला और साहित्य का ऐसा शायद ही कोई कार्यक्रम होता जहाँ वे मौजूद न रहते हों और अपनी मौजूदगी से उसे भरापूरा न करते हों।"[22]

उनके व्यक्तित्व में कुछ अवगुण भी थे। वे अपनी रचनाओं की आलोचना नहीं सह पाते थे। एक बार वे कुँवर नारायण और कन्हैयालाल नन्दन से इसलिए नाराज हो गए क्योंकि इन दोनों ने उनकी कविता की त्रुटियाँ गिनाईं। लेकिन उनका ये गुस्सा अस्थाई होता था और अक्सर कुछ दिनों बाद समाप्त हो जाता था।

संस्कृति के पतन की ओर बढ़ने और व्यक्ति केन्द्रित विचारधारा तथा निरंकुशता के खिलाफ संघर्ष करने वाले सर्वेश्वर का क्रान्तिकारियों से भी निकट का संबंध था। क्रान्तिकारियों पर लिखी उनकी अनेक कविताएँ इसका प्रमाण हैं। 'क्रान्तिकारी की मौत', 'संकल्प की मीनार' तथा आन्ध्र के क्रान्तिकारी किसान नेता किस्सा गोड़ व भूमैया पर लिखी कविताएँ इसी श्रेणी की हैं।

सर्वेश्वर के माता-पिता भी साहित्यिक संस्कारों से प्रभावित थे। पिता को साधारण तुकबंदियों का शौक था और वे मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि से प्रभावित थे जबकि माँ की रुचि कहानियाँ पढ़ने में थी। वे लिखते हैं- "मेरे सामने ही दोनों बहस करते थे कि क्या बनाएँगे। जब पिता को दुखी देखता तो कवि बनना चाहता था जब माँ को दुखी देखता था तो कहानीकार। आज जिस रूप में हूँ, दोनो ही हूँ। मेरी सबसे बड़ी कमजोरी है, अनेक ऐसी स्थितियों में चिपके रहना, जिनका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है और फलस्वरूप निरंतर एक तनाव में जीना। यही तनाव मुझे लिखने को विवश करता है। इस तरह दोहरी

जिंदगी बिताता हूँ- एक समर्थन की, एक विद्रोह की, एक यथार्थ की, एक कल्पना की, एक भावना के स्तर पर, एक विचारों के स्तर पर। दोनों स्तरों को एक करने का सघर्ष निरंतर बना रहता है और उसी तनाव की स्थिति में जीना होता है। दो विपरीत स्थितियाँ मुझे निरंतर अपनी-अपनी ओर खींचती हैं और उस गहन यातना के क्षणों में मेरी हर कराह, हर चीख मेरा साहित्य है।"[23]

सर्वेश्वर राजनीति के प्रति स्पष्ट नजरिया रखते हैं। बचपन से ही क्रान्तिकारी साहित्य से उनका नजदीकी रिश्ता रहा। कृष्णदत्त पालीवाल को दिए एक अंतरंग साक्षात्कार में वे स्वीकार करते हैं कि सन् 1942 के आन्दोलन में वे सक्रिय भागीदार होना चाहते थे लेकिन माँ की सरकारी नौकरी छूट जाने के भय से वे ऐसा नहीं कर सके। अपने साक्षात्कार में वे कहते हैं-"यह स्थिति बचपन से लेकर आज तक बनी हुई है कि मैं स्वयं राजनीति में कभी सक्रिय नहीं रहा लेकिन सक्रिय राजनीति से जुड़े लोग हमेशा मेरे अच्छे घनिष्ठ मित्र रहे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दिनों में जितेन्द्र सिंह और विजयदेव नारायण साही सभी मेरे अभिन्न मित्र थे। दोनों ही लोहियावादी थे। उन दिनों मैं परिमल का सदस्य था। ये दोनों ही परिमल थे। राजनीतिक चेतना का बहुत कुछ इन दोनों से छनकर मेरे पास आता था और अक्सर उनका असर कविताओं पर भी दिखता था।"[24]

वे समाज सेवा के प्रति सदैव तैयार रहते थे। जहाँ कहीं आवश्यकता होती वे वहाँ तुरंत पहुँच जाते। इस संदर्भ में लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है-"पति के रूप में सर्वेश्वर को मैंने पत्नी की अटूट सेवा करते हुए देखा है। पड़ोसी के रूप में रात भर सर्वेश्वर दूसरों की पीड़ा से अभिभूत होने वाले व्यक्ति हैं। वस्तुतः वे पहले मनुष्य हैं और बाद में साहित्यकार। इसीलिए मानवतावादी स्वर उनके साहित्य की एक प्रमुख विशेषता रही है।" गरीबों और शोषितों के प्रति उनके मन में गहरी सहानुभूति थी। सर्वेश्वर ने अपनी कहानी 'डूबता हुआ चाँद' में कहा है-"मेरे संपर्क में आने वाले लोग बड़ी जल्दी मुझसे घुल-मिल जाते हैं। यह कोई अकेले मुझमें ही बहुत बड़ी विशेषता नहीं है। ऐसे न जाने कितने व्यक्तित्व इस दुनिया में हैं, जिनसे घुलने-मिलने में लोग कोई नुकसान नहीं समझते, जिनकी सरलता और निष्कपटता

के झरोखों से दूसरों के दिल का घुटता हुआ धुँआ अपने आप बाहर निकल जाता है।"[25]

सर्वेश्वर के व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वे एक संवेदनशील साहित्यकार हैं जो दूसरों की पीड़ा से शीघ्र अभिभूत हो जाते हैं। वस्तुतः वे पहले मनुष्य हैं और बाद में साहित्यकार। सारे देश और विश्व की पीड़ा को वे अपनी पीड़ा समझते थे। गरीब और वंचितो के प्रति उनके हृदय में विशेष सहानुभूति थी। इसीलिए मानवतावदी स्वर उनकी कविताओं में सबसे अधिक मुखरित हुआ है। वे छोटे-बड़े, अमीर-गरीब हर किसी के साथ स्नेह का व्यवहार करते थे। उनका कहना है -"स्नेह तथा सहानुभूति की कीमत वे ही समझ सकते हैं, उनसे ही मिल सकती है जो इससे जीवन में वंचित हों।"[26]

सर्वेश्वर के स्वभाव की एक अन्य विशेषता उनकी स्पष्टवादिता है। यह ऐसी विशेषता है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। राजनीतिक क्षेत्र में फैले अन्याय, शोषण, पाखण्ड और आडम्बर का विरोध करने के लिए वे कवि, नाटककार, पत्रकार आदि बुद्धिजीवी लोगों का आवाह्न करते हैं कि वे मजदूरों का पक्ष सबल बनाएँ। उनका स्पष्ट मानना है कि-"यदि साहित्यकार, पत्रकार, रंगकर्मी, कलाकार सामाजिक-राजनीतिक बदलाव चाहते हैं तो उन्हें राजनीतिक आंदोलन से जुड़ना होगा।"[27]

संवेदनशील व्यक्ति होने के कारण सर्वेश्वर के व्यक्तित्व में एक प्रकार की सजगता देखी जा सकती है। उनके अंदर थोड़ा सा भी बनावटीपन नहीं था और न ही बनावटी लोगों को वे बर्दाश्त कर पाते थे। इस संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल का कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। "अपने जीवन संबंधों में भी सर्वेश्वर बड़े भावुक व्यक्ति थे। वे जल्दी बिगड़ जाते थे और जल्दी मिल भी जाते थे। इस आदत का असर उनकी रचना के रेशे-रेशे में मिला हुआ है।"[28]

जीवन के दुर्गम मार्गों पर भी वे आत्मशक्ति से जीतकर आगे बढ़ना चाहते थे। गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की तरह वे ईश्वर के आगे हाथ नहीं फैलाते अपितु अपनी आत्मशक्ति को बनाए रखना चाहते हैं। इसीलिए वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं-

“नहीं-नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूँगा।
अर्जित करूँगा उसे मरकर बिखरकर
आज नहीं कल सही आऊँगा उबरकर
कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
रोकूँगा पहाड़ गिरता, शरण नहीं माँगूँगा।”[29]

उनका जीने का अंदाज और समाज के प्रति नजरिया बिल्कुल अलग है। भीड़-भाड़ और चकाचौंध की दुनिया से वे अक्सर दूर ही रहते थे। हरिचरण शर्मा के शब्दों में-“सर्वेश्वर एक तटस्थ चिंतक, स्थितियों के सही विश्लेषक तथा कविता को जीवन का अनिवार्य अंग मानने वाले या कहें कि कविता को जीवनवादी मानने वाले कवि हैं। वे न तो किसी पार्टी के सदस्य हैं न वैसा होना उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। और न वे किसी संगठन के चश्में से राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष को देखते हैं। इन सबसे परे अकेले रहकर ही वे जीवन-व्यथा सहना चाहते हैं।”[30]

उनके काव्य की अनेक पंक्तियों में ये स्वभाव दृष्टिगोचर होता है। यथा-

“हवा को यदि आना है तो आए
दरवाजे भड़भड़ाए, तोड़ जाए,
अन्यथा सींकचों पर सिर टिका
रो-रोकर चली जाए।
किसी असमर्थ की प्रतीक्षा से
बंद कमरे की घुटन बेहतर है
जिसने खुद अपनी जबान काट ली हो
उससे नहीं बोलूँगा।
अब मैं यह खिड़की नहीं खोलूँगा।”[31]

एक जगह वे लिखते हैं-“मैं स्वभाव से मिलनसार आदमी हूँ लेकिन लोगों से बहुत कम मिलता-जुलता हूँ क्योंकि मेलजोल रखने लायक लोग दिखते ही नहीं और यदि गलती से मोलजोल बढ़ता भी है तो जल्दी टूट जाता है क्योंकि मैं स्वयं

को संस्कार, रुचि, विचार आदि में दूसरों से इतना भिन्न पाता हूँ कि साथ चलना मुश्किल हो जाता है। अपना कोई सही अर्थों में साथी नहीं होने का रोना भी मैं नहीं रोता क्योंकि मैं मानता हूँ कि अपने को मिटाकर दूसरों का होना मेरी दृष्टि में कोई मतलब नहीं रखता।"[32] शायद अपने इसी गुण के कारण सर्वेश्वर कभी भी किसी दल या गुट से संबद्ध नहीं हो सके क्योंकि उनकी नजर में कोई दल ऐसा नहीं था जिसका वे समर्थन कर पाते।

सर्वेश्वर के काव्य ने आज की युवा पीढ़ी पर गहरा प्रभाव डाला है। साठोत्तरी कविता में उनका व्यक्तित्व अनेक कारणों से चर्चित रहा है। इस चर्चा का प्रमुख कारण यह है कि निराला और मुक्तिबोध की विद्रोही परंपरा को उन्होंने काव्य के नए मुहावरे से आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। साठोत्तरी कविता का यह मुहावरा इतना प्रख्यात है कि आज की अधिकांश युवा कविताओं पर इसकी अमिट छाप आज भी देखी जा सकती है।

सर्वेश्वर की इस तरह की कविताओं ने धूमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी, रमेश गौड़, मंगलेश डबराल, मणि मधुकर आदि को काव्यदिशा बताने में सहायता दी है। नई कविता का अभिव्यक्तिगत खुलापन सर्वेश्वर में सदैव कायम रहा। 'काठ की घटियाँ' काव्य-संग्रह की अज्ञेय जी की भूमिका से स्पष्ट होता है कि वे प्रारम्भ से ही सर्वेश्वर के व्यक्तित्व और उनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित रहे हैं। इन कविताओं ने तत्कालीन पाठक समुदाय को भी अत्यधिक प्रभावित किया था। उस समय की कविताओं के प्रभाव का साक्ष्य देते हुए डॉ.जगदीश गुप्त ने लिखा है-

"सर्वेश्वर उन कवियों में प्रमुख हैं जिनकी कविताओं ने छठे दशक के आरंभ में ही मुझे नई कविता की शक्ति, सामर्थ्य के प्रति गहराई से आश्वस्त किया था। जो विश्वास आधुनिक युग बोध से युक्त उनकी सच्ची और मार्मिक अभिव्यक्ति ने मुझे उस समय और उसके बाद दिया, उसके सहारे मैंने निर्भीक होकर नई कविता की लड़ाई लड़ी, जिसका फल भला-बुरा जैसा भी माना जाए, सबके सामने है। इस दृष्टि से सर्वेश्वर के कृतित्व का नई हिन्दी कविता के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व भी माना जाएगा, इसमें संदेह नहीं।"[33]

डॉ.जगदीश गुप्त के इस कथन से स्पष्ट है कि वे सर्वेश्वर की कविताओं से प्रभावित होकर ही नई कविता के समर क्षेत्र में निर्भीक होकर उतरे हैं।

वस्तुतः सर्वेश्वर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी है। वे साहित्य में एक कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, बाल साहित्य के लेखक, निबन्धकार, पत्रकार और यात्रा–संस्मरणकार के रूप में पहचाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनका एक अन्य रूप विद्वान सम्पादक का भी है।

(ग) परिवेशः अवधारणा और स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है उस समाज का वातावरण ही वास्तव में उसका परिवेश है। यह परिवेश न सिर्फ साहित्यकार के व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण कारक है बल्कि इसका प्रभाव अनिवार्य रूप से उसकी रचनाओं में भी देखा जा सकता है। वस्तुतः कोई भी रचनाकार इससे तटस्थ होकर सृजन कर्म नहीं कर सकता है। वह अपने परिवेश की व्यवस्था और लोक–व्यवहार से ही अपनी रचना के लिए विषय–वस्तु चुनता है और फिर अपने आदर्शो और व्यक्तित्व के अनुरूप उसका प्रतिपादन करता है। साहित्यकार के निजी दृष्टिकोण को उस युग की परिस्थितियाँ और बदलती हुई सामाजिक चेतना बहुत दूर तक प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव में लेखक का अतीत जहाँ उसे अनुभव प्रदान करता है वहीं भविष्य उसमें आशा का नवीन संचार करता है। वर्तमान साहित्यकार को अनुभव प्रदान करता है जिसके आधार पर वह विभिन्न रचनाओं का सृजन कर पाता है। प्राचीनतम् रचनाओं से लेकर आधुनिकतम् रचनाओं तक इस तथ्य को बखूबी देखा जा सकता है। भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तक यह परम्परा हमें व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होती है। रीतिकालीन काव्य तो अपने इसी परिवेश की उपज है।

वास्तव में परिवेश ही साहित्यकार की दृष्टि और चिंतन–मनन का आधार होता है। जिस रचनाकार का जैसा परिवेश होगा उसकी रचना में भी उसी प्रकार के परिवेश की झलक स्पष्टतः देखी जा सकती है। यदि हम हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक परम्परा का अवलोकन करें तो अनेक साहित्यकारों की रचनाओं में उनका परिवेश जीवंतता के साथ प्रस्तुत हुआ है। उदाहरणार्थ मुंशी प्रेमचन्द्र का

उपन्यास गोदान, भारतेन्दु का नाटक भारत–दुर्दशा, फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास मैला आँचल और सर्वेश्वर का प्रसिद्ध नाटक बकरी साहित्यकार और उसके परिवेश के संबंधों का सटीक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुतः लेखक या कवि अपने परिवेश का प्रतिनिधि होता है। उसे जिस प्रकार का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण मिलता है उसकी अभिव्यक्ति भी उसी अनुसार प्रभावित होते हुए अंततः उसके साहित्य में प्रकट होती है। इस क्रम में वह जहाँ अनेक सामाजिक समस्याओं, विचारों और भावनाओं को वाणी देता है वहीं इनके द्वारा निर्मित परिवेश से वह स्वयं भी प्रभावित होता है। इस संदर्भ में डॉ.नामवर सिंह का विचार उल्लेखनीय है–"यह सही है कि सृजन के क्षणों में रचनाकार केवल यही सोच रहा होता है कि जो कुछ उसके भीतर पक रहा है उसे किसी प्रकार अभिव्यक्त कर दे। उस वक्त वह केवल रचना को देखता है तथा उसकी समस्त इन्द्रियाँ सिमट कर उसी रचना के बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती हैं। यहाँ तक तो उसका रचना–कर्म स्वांतः सुखाय कहा जा सकता है, किन्तु इस स्वांतः सुखाय में उसकी सारी साधना और सारा व्यक्तित्व अन्तर्निहित होता है– दृष्टिकोण, अनुभव, अनुभूति, विचार, विश्वास वगैरह सब कुछ इसी के अंतर्गत आ जाते हैं। इन तमाम बातों को वह स्वयं कहे या नहीं, लेकिन साहित्यिक कृति के रूप में इन सब का फल हमारे सामने आता है।"[34]

यह बात बिल्कुल सच है कि रचना का सृजन एकांत में ही होता है लेकिन इन एकांत के क्षणों मे भी रचनाकार का परिवेश बराबर उसके साथ रहता है। कथा–सम्राट मुंशी प्रेमचन्द भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहते हैं–"साहित्यकार अपने देशकाल से प्रभावित होता है, जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए अविचलित रहना संभव नहीं होता है।"[35] वास्तव में साहित्यकार और परिवेश को अलग करना संभव ही नहीं है। कोई भी रचनाकार सर्वप्रथम अपने परिवेश से रचना का प्रतिपाद्य ग्रहण करता है और फिर उसी रचना में उसकी पुनर्रचना कर पुनः उसे परिवेश को प्रदान कर देता है।

परिवेश की अवधारणा तथा उसके स्वरूप को और अधिक तार्किक ढंग से समझने के लिए सर्वप्रथम उसके विविध अर्थों और उनके स्वरूप को स्पष्ट करना

आवश्यक है। वस्तुतः परिवेश लगभग अमूर्त शब्द है जिसकी व्याख्या करते हुए सामान्य जन अक्सर उसे वातावरण या फिर सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक स्थितियों तक ही सीमित कर देते हैं। लेकिन परिवेश शब्द अपने आप में व्यापक अर्थो को समाहित किए हुए है जिनका दायरा अन्यन्त विस्तृत है। इस शब्द के अंतर्गत वह सब कुछ आ जाता है जिसके साथ हम किसी देश–काल में अवस्थित होते हैं।

परिवेश का शाब्दिक अर्थ

भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश के अनुसार परिवेश का शाब्दिक अर्थ है,– "परिधि, वेष्टन, घेरा।"[36]

मानक हिन्दी कोश में भी परिवेश का अर्थ–"परिधि, घेरा, प्रभा–मंडल, बदली के समय सूर्य या चाँद के चारों ओर दिखाई देने वाला घेरा।"[37]– बताया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य विभिन्न शब्दकोशों में भी परिवेश के निम्नलिखित अर्थ बताए गए हैं–

'नालन्दा अद्यतन कोश' में परिवेश का अर्थ है–"घेरा, परिधि, परोसना, परकोटा, किले की दीवार, सूर्य या चाँद का घेरा आदि"[38]

'वृहत् हिन्दी कोश' में इसका अर्थ है– "घेरना, परिधि, किसी रचनाकार का वह विशिष्ट वातावरण जो उसके लेखन से संसक्त होता है और उसे प्रभावित करता है।"[39]

संस्कृत के शब्दकोश में परिवेश का अर्थ है– "परोसना, घेरा, परिधि.........कोई ऐसी वस्तु जो चारों ओर से घेरकर किसी वस्तु की रक्षा करती है।"[40]

प्रभात वृहत् हिन्दी शब्दकोश में 'परिवेश' के विभिन्न अर्थ– "घेरा, परसना(भोजन), वर्षाकाल में सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर बन जानेवाला मंडल, देवताओं आदि के मुखमंडल के चारों ओर का प्रभामंडल, वातावरण आदि हैं।"[41]

'परिवेश' के विभिन्न कोशगत अर्थो को जान लेने के उपरांत' 'परिवेश' के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मतों पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल लेना प्रासंगिक होगा। इस संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य आलोचक डॉ.नामवर सिंह परिवेश के संदर्भ में अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-" मेरे लिए परिवेश ऐसा अमूर्त्त प्रत्यय नहीं है जिसका साहित्य से कोई रिश्ता न हो और साहित्य कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी व्याख्या मानव जीवन तथा परिवेश से अलग रखकर की जा सके। साहित्य रचनाकार के मन का ऐसा लड्डू भी नहीं है जिसे रचनाकार जब चाहे, बना ले और जब चाहे खा ले एवं जिसका रचनाकार की परिस्थितियों से कोई लेना-देना न हो, प्रत्युत साहित्य एक निश्चित परिस्थिति में पैदा होता है और वह परिस्थिति उसकी स्वेच्छा को मर्यादित करती है।"[42]

साहित्यकार साहित्य की चाहे जिस विधा का सृजन करे, वह अपने परिवेश से विमुख नही हो सकता। किसी भी उपन्यासकार के लिए परिवेश की व्यापकता का उल्लेख करते हुए डॉ.रघुवंश लिखते हैं-"एक लेखक के लिए परिवेश उसका वह सारा जीवन है जो वस्तुतः उसके युग का रूप है। समस्त स्थानीय, देशीय, राष्ट्रीय और यहाँ तक कि अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम उसका परिवेश हो सकता है। जितना कुछ उसके अनुभव के अंतर्गत वर्तमान देशकाल में समेटा जा सकता है, उसे परिवेश माना जा सकता है। किसी भी दृष्टि, शैली या स्तर का लेखक अपने परिवेश से मुक्त होकर यथार्थ जीवन का उपन्यासकार नहीं हो सकता।"[43]

प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त के विचार परिवेश के संबंध में अत्यंत व्यापक हैं। उनका मानना है-"हमारे विचार से परिवेश का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसके अंतर्गत कवि की वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से लेकर साहित्यिक स्रोतों, प्रेरणाओं, आंदोलनों एवं आश्रयों तक को लिया जा सकता है जो सर्जन की प्रक्रिया को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं।"[44]

परिवेश के संबंध में अज्ञेय उसकी परिवर्तनशीलता पर बल देते हैं। उनका कथन है-"परिवेश मेरे लिए देशकाल का सतत् परिवर्तनशील संबंध है- बल्कि उस संबंध का भी वह रूप है जो मेरी चेतना को छूता है, क्योंकि निस्संदेह ऐसा भी बहुत कुछ हो रहा होगा-हो रहा है-जो मेरी चेतना से परे है, उसे मैं अपना परिवेश कहने का दम कैसे भरूँ? जब जहाँ वह मेरी चेतना को छुएगा, चाहे उसके

बढ़ते हुए दबाव के कारण, तब और वहाँ वह मेरा परिवेश हो जाएगा।.........आज की बड़ी दुनिया में मेरा परिवेश स्थितिशील नहीं है, वह सतत् चलनशील है। सभी संबंध भी गतिशील हैं। उनका जो रूप मेरी चेतना को छूता है वह छूने–छूने में बदलता जाता है।.........मेरा जो परिवेश है वह एक असंतुलन से दूसरे असंतुलन तक का है।"[45]

वास्तव में किसी भी मनुष्य और उसके परिवेश के मध्य एक गहरा संबंध होता है। इस संबंध की व्याख्या करते हुए प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह का विचार है–"मनुष्य और परिवेश का संबंध चिरन्तन है। वह जो भी आकार ग्रहण करता है, उस पर परिवेश की छाप बड़ी गहरी और स्पष्ट होती है। परिवेश क्या है? वह व्यक्ति के चतुर्दिक जो एक इतिहास का गतिशील चक्र होता है, उसी का नाम है। उसके भीतर हमारी प्रकृति, हमारा धर्म, हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ, हमारा संपूर्ण समाज होता है। अतः परिवेश के अंतर्गत हमारे अतीत और वर्तमान दोनों ही आ जाते हैं।"[46]

उपर्युक्त संदर्भ में परिवेश के विविध शब्दकोशीय अर्थ और परिवेश तथा मनुष्य के मध्य संबंधों पर विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवेश के अंतर्गत उन समस्त परिस्थितियों और उनके प्रभावों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो किसी भी साहित्यकार के सृजन कार्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। परिवेश का यह स्वरूप सिर्फ वर्तमान तक सीमित नहीं है अपितु साहित्यकार का अतीत और बहुत हद तक उसका भविष्य भी अपने परिवेश से गहरा संबंध रखते हैं।

परिवेश के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसका गहरा सम्बन्ध मनुष्य की आन्तरिक चेतना से भी है। एक ही परिवेश में पैदा हुए दो भिन्न लोगों की परिवेश के सम्बन्ध में धारणाएँ भिन्न भी हो सकती हैं। इसका कारण उनकी आन्तरिक चेतना है। यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह अपने परिवेश से क्या ग्रहण करता है। इसलिए कई बार देखने में आता है कि एक ही परिवेश में निर्मित दो साहित्यकारों का सृजन क्षेत्र भिन्न हो जाता है। यद्यपि यहाँ इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि दो भिन्न अवधारणाओं के होने के

बावजूद भी उनके मध्य कुछ न कुछ साम्य अवश्य रहता है। इस साम्य का आधार उनका परिवेश ही होता है।

बदलती परिस्थितियों के अनुसार परिवेश की प्रकृति भी बदलती रहती है। जागरूक लेखक निरन्तर परिवेश के बदलते संदर्भों में अपने सृजन कार्य के लिए सामग्री ग्रहण करता रहता है। वह अपनी रचना में परिवेश की पुनर्रचना करता है। यह तभी सम्भव हो पाता है जब लेखक अपने परिवेश के साथ गहरी आत्मीयता और संलग्नता रखता है तथा निरन्तर अनुभूति के स्तर पर अपने परिवेश से जुड़ा रहता है। परिवेश और साहित्यकार के सम्बन्धों पर हेतु भारद्वाज ने बिल्कुल सटीक टिप्पणी की है-"परिवेश के साथ रचनाकार का संवेदनात्मक जुड़ाव प्रामाणिक और ईमानदार रचनाओं का आधार बनता है। 'कफन', 'गदल', 'परदा', 'डिप्टी कलेक्टरी', 'मलबे का मालिक', 'बीच के लोग', बहिर्गमन जैसी कहानियाँ उस परिवेश की उपज हैं जिसे इन कहानियों के लेखकों ने अपने चारों ओर ही नहीं अपने भीतर भी अनुभव किया था।"[47]

(घ) सर्वेश्वर और उनका परिवेश

किसी भी रचनाकार का गहरा सम्बन्ध उसके परिवेश से होता है। वह परिवेश उस काल की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधाराओं और परिस्थितियों से निर्मित होता है। साहित्यकार युग-चेतना से प्रभावित रहता है। 'देशकाल के शर से बिंधकर, वह जागा कवि अशेष छविधर'- यह पंक्ति प्रत्येक साहित्यकार से गहरा सम्बन्ध रखती है। कोई भी साहित्यकार चाहे वह कवि हो या लेखक उसकी रचना और विचारों में उसका परिवेश प्रतिबिंबित होता है। ऐसे में सर्वेश्वर जैसा रचनाकार अपने परिवेश से प्रभावित हुए बिना कैसे रह पाता।

किसी चित्रकार के चित्र को देखकर दर्शक यह अनुमान सहज ही लगा लेता है कि चित्रकार का अभ्यान्तर कैसा होगा। वैसे भी कवि या साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी आत्मा उड़ेलकर रख देता है। साहित्यकार के साहित्य में वही भाव, वस्तु और बिम्ब प्रकट होते हैं जो उसके मस्तिष्क में किसी न किसी रूप में छाए रहते हैं। उदाहरणार्थ तुलसी का साहित्य नारी प्रताड़ना की कसक का ही

परिणाम है जिसका चित्रण उनके समस्त काव्य में मुखर होता जान पड़ता है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन का प्रेमालाप उनके समस्त साहित्य में मधुशाला बनकर थिरकता प्रतीत होता है। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ की कण–कण में भगवान वाली काव्य पीड़ा उनके जीवन से ही निस्त्रत होकर साहित्य में समा गई है।

सर्वेश्वर के साहित्य में भी उनके काल की सम्पूर्ण चेतना प्रबल रूप में विद्यमान है। वह बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे जिन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक, संस्मरण, लेख आदि अनेक साहित्यिक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने जब साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय भारत अपनी आजादी की बाहरवीं वर्षगाँठ मना रहा था। यह वह काल था जिसमें कवि ने अपने जनपद के ग्रामीण अंचल को बहुत करीब से देखा और महसूस किया। यही कारण है कि ग्रामीण अंचल का प्रभाव उनके साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकट हुआ है।

सर्वेश्वर का साहित्य भी उस काल की त्रासद परिस्थितियों की उपज है। कविता लिखना उनकी लाचारी या विवशता थी। कवि स्वयं कहता है कि यदि यह लाचारी न होती तो वह कुछ और ही होता। इस सन्दर्भ में सर्वेश्वर लिखते हैं– "आज की परिस्थितियों में कविता लिखने से सुखकर और प्रीतिकर कई काम हो सकते हैं। मैं कविता न लिखता यदि हिन्दी में आज के प्रतिष्ठित कवियों में एक भी ऐसा होता जिसकी कविताओं में कवि का एक व्यापक जीवन दर्शन मिलता, यदि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे अधिकतर साहित्यकारों ने वजीफे खाने, कुर्सियों के लिए गोटें बैठाने और पदों के लिए साहित्यकार का सम्मान बेचने का धन्धा न अपनाया होता।"[48]

सर्वेश्वर के साहित्य का परिवेशगत अध्ययन करने के लिए उनके परिवेश को विविध सन्दर्भों में विभाजित कर लेना समीचीन होगा। अध्ययन की सुविधा के लिए उनके परिवेश को साहित्यिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, आर्थिक परिवेश और सांस्कृतिक परिवेश; शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है।

साहित्यिक परिवेश

जिन दिनों सर्वेश्वर साहित्य के क्षेत्र में आए उस समय कुछ नया और अच्छा लिखने की चुनौतियाँ उनके सामने थीं। साहित्य की प्रयोगवादी धारा अपने अवसान की ओर थी जिसके कारण अनेक प्रयोगवादी साहित्यकार नई कविता अथवा कहानी से अपने-आप को जोड़ रहे थे। कविता के 'नये प्रतिमान' विषय को लेकर साहित्यकारों में एक प्रतिस्पर्धा-सी देखने को मिल रही थी। प्रगतिवादी विचारधारा के अनेक साहित्यकार यथा- रामविलास शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल और मुक्तिबोध जैसे कई प्रबुद्ध साहित्यकार प्रयोगवादी ध्वज के नीचे आ गये थे। दिल्ली से 'आलोचना' पत्रिका निकलने लगी थी जिसे कभी मार्क्सवादी साहित्यकार शिवदान सिंह चौहान तो कभी तथाकथित 'लघुमानव चेतना' के प्रणेता साहित्यकार अपने-अपने कब्जे में ले रहे थे। इस पूरे साहित्यिक परिवेश के निर्माण में डॉ. राममनोहर लोहिया का महत्वपूर्ण योगदान था। उसी समय 'धरातल', 'अपनी-पीढ़ी', 'निकष', 'संकेत', 'कल्पना', कहानी', 'नई कहानियाँ जैसी पत्रिकाएँ एक नये परिवेश का निर्माण कर रही थीं। उन दिनों की साहित्यिक टिप्पणियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि समाजवादी लोहिया विचारधारा तत्कालीन रचनाकारों के लिए एक खास आकर्षण का केन्द्र थी। उस समय के अधिकतर लेखक लोहिया से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे। इसी क्रम में प्रयाग शुक्ल, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा और शिवप्रसाद सिंह आदि भी लोहिया की इसी धारा में बह रहे थे। इसके इतर धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, डॉ. रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी और ठाकुर प्रसाद सिंह आदि भी यद्यपि लोहियावादी विचारधारा से सम्बन्धित थे तथापि उनका साहित्यिक अन्दाज थोड़ा स्वतन्त्र और भिन्न था। प्रगतिशील आन्दोलन के नायक यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत और मारकण्डेय जैसे लोग थे। उस समय के सभी नए लेखक किसी भी अन्य पीढ़ी के खड़ी बोली आन्दोलन कर्ताओं में सबसे ज्यादा सक्रिय, मुखर और सृजनशील थे। इन सब में रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना निश्चित रूप से अधिक मुखर थे। दोनों की अन्तिम पहचान पत्रकार के रूप में बनी। अज्ञेय के मन लायक पत्रकाारिता की भाषा गढ़ने में रघुवीर एवं सर्वेश्वर ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। दोनों में ही व्यंग्य

और विनोद के साथ-साथ अच्छी वाक्पटुता भी थी। दोनों का साहित्य परंपरागत रीति से थोड़ा हटकर था। दोनों ने ही साहित्य सृजन के साथ-साथ पत्रकारिता में समान रूप से अपनी सशक्त पहचान बनाए रखी। “साहित्य का यह काल तीव्र परिवर्तन का काल था। प्रगतिवादी काव्यधारा से जो हिन्दी काव्य की नवीन परिपाटी विभाजित हुई थी वह अब प्रयोगवाद से चलते हुए नई कविता तक पँहुच चुकी थी। दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद ‘नए पत्ते’ नामक पत्रिका में सबसे पहले ‘नई कविता’ नामक संज्ञा दी गई। लेकिन उस समय यह नाम सर्वमान्य नहीं हुआ। सन् 1954 में डॉ. जगदीश गुप्त के संपादन में ‘नई कविता’ नाम से कविताओं के अर्ध-वार्षिक संकलन का प्रकाशन हुआ तब से यह नाम सर्वमान्य हो गया। ‘नई कविता’ ने साहस के साथ इस सत्य की स्थापना की कि मनुष्य को केवल मानवीय परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जा सकता है, उसे मानवेत्तर काव्य में बंद कर कविता से दूर नहीं किया जा सकता।”[49]

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि “नई कविता की पहचान जहाँ से बननी शुरू होती है, वहाँ सर्वेश्वर की कविताएँ हैं।”[50] वास्तव में भावबोध और शिल्प के स्तर पर यदि देखा जाए तो सर्वेश्वर की कविताओं को नई कविताओं की श्रेणी में रखना उचित जान पड़ता है। “सर्वेश्वर समसामयिक होकर भी युग-जीवन की श्रेणी में सम्पृक्ति को गहन अनुभव के स्तर पर ग्रहण कर सके हैं। उनके अनुभव में व्यक्ति और युग-जीवन इस प्रकार सम्पृक्त हैं कि चरम संवेदना में भी युग का यथार्थ व्यंजित हुआ है। (ताँबे के फूल, नीला अजगर, काठ की घण्टी) कवि अपनी आत्मचेतना में व्यक्तित्व की समष्टि की व्यापक चेतना का माध्यम स्वीकार करता है।”[51]

यह नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है कि वह अतीत की स्वच्छन्दतावादी और काल्पनिक वृत्तियों को जोड़ती प्रतीत होती है। लेकिन फिर भी उस काल के कुछ कवियों ने इन तत्वों का कुशल प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। जैसे अतीत के प्रति मोह स्थिर भावुकता को जन्म देता है। इसे सर्वेश्वर की रचनाओं में देखा जा सकता है-

“आह! स्मृति की अंजानी राह-

दर्द अजगर–सा
निगलकर उगल देता है–
शेष हैं तारे,
पार का वह घना झुरमुट,
दूर सिमटी नदी,
खुले स्वर के पाल,
गीत की वह कड़ी तिरती है
हिल गई है एक सूखी डाल।"[52]

नई कविता की विकृतियाँ, विसंगतियाँ और विरोधाभास के सारे भावबोध सर्वेश्वर की रचनाओं में सघनता से विद्यमान हैं। इस के साथ ही युगीन समस्याओं के प्रति साहसिक जागरूकता भी उनके काव्य में दृष्टिगोचर होती है। "अनेक कविताओं में उन्होंने युद्ध, शान्ति, स्वतन्त्रता व साम्यवाद आदि ज्वलंत समस्याओं को गहरे बोध के स्तर पर उठाया है और वह उनको बिल्कुल साधारण तथा नये प्रतीकों के माध्यम से सर्जनात्मक सघन अनुभव के रूप में संगठित और संयोजित करने में सफल हुए हैं।"[53]

उपर्युक्त साहित्यिक परिवेश के विश्लेषणोंपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सर्वेश्वर 'नई कविता' के एक प्रमुख कवि हैं जिन्हें नए भावबोध और नए मुहावरों की तलाश जीवन पर्यन्त रही है। सर्वेश्वर सीमित भावबोध के कवि न होकर विस्तृत और अनन्त भावबोध के कवि हैं।

यह उनके साहित्यिक परिवेश का ही परिणाम है कि जहाँ एक ओर सर्वेश्वर 'काठ की घण्टियाँ', 'बाँस का पुल' और 'एक सूनी नाव' जैसी रोमानी भावबोध की कविताएं लिखते हैं वहीं उनका दूसरा वैचारिक फलक 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी', 'जंगल का दर्द', 'खूँटियों पर टंगे लोग' और 'कोई मेरे साथ चले' जैसी विद्रोहात्मक और वैचारिक कविताओं में प्रतिबिम्बित हुआ है।

सामाजिक परिवेश

प्रत्येक व्यक्ति परिस्थितियों की उपज होता है और समाज परिस्थितियों का बिम्ब। भौगोलिक अवधारणा के अनुसार परिस्थिति तथा जलवायु समूचे जगत को

आकार प्रदान करती है। वहीं सामाजिक परिस्थिति व्यक्तित्व निर्माण का कार्य करती है। अनुकूल परिस्थितियाँ जहाँ व्यक्ति को सम्बल तथा शक्ति प्रदान करती हैं वहीं प्रतिकूल परिस्थितियाँ व्यक्ति को निर्बल तथा कमजोर कर देती हैं।

अभाव व्यक्तित्व में वरदान तथा अभिशाप दोनों की ही भूमिका निभाता है। समाज में ऐसे कई उदाहरण देखे जा सकते हैं जिनमें अभाव उत्थान का कारण बना। उदाहरण के लिए यदि तुलसीदास को पत्नी प्रताड़ना न मिली होती तो शायद ही वे इतने श्रेष्ठ कवि बन पाते।

सर्वेश्वर के व्यक्तित्व और कृतित्व को गढ़ने में भी उनकी सामाजिक परिस्थितियाँ और उनका अभावपूर्ण जीवन बहुत हद तक जिम्मेदार है। सर्वेश्वर की रचनाओं का कालखण्ड सन् 1959 से सन् 1983 तक फैला हुआ है। सामाजिक नजरिए से देखने पर यह कालखण्ड भारतीय इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का साक्षी रहा है। उदाहरण के लिए भारत-चीन युद्ध, भारत-पाकिस्तान का द्वितीय युद्ध, भारत में आपातकाल या तथाकथित दूसरी आजादी की लड़ाई, पोखरण परमाणु विस्फोट, इन्दिरा गांधी का गरीबी हटाओ का नारा और कांग्रेस से जनता का मोहभंग आदि ऐसी उल्लेखनीय घटनाएँ हैं जिन्होंने तत्कालीन समाज को बहुत गहराई तक प्रभावित किया।

भारत को आजादी मिलने के बाद और देश में औद्योगिक प्रगति के साथ जीविका के लिए लोगों का पलायन भी शहरों की ओर बढ़ा जो आज तक अनवरत जारी है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण अधिकांश संयुक्त परिवार टूटकर बिखर गए और आर्थिक स्वार्थ समाज पर निरन्तर हावी होते गए। नारी शिक्षा ने महिलाओं को आर्थिक संघर्ष की ओर प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप जीवन के क्षेत्र में महिलाएँ पुरूषों के निकट आती गयीं। पुरूषों के साथ सतत् बढ़ते हुए नारी-सम्पर्क से सामाजिक स्तर पर स्वच्छन्द प्रेम जैसी सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ। इस बदले सामाजिक परिवेश में प्रेम और विवाह के क्षेत्र में स्वतन्त्रता और यौन-नैतिकता के क्षेत्र में नए मानदण्डों का निर्माण हुआ। सामाजिक स्तर पर स्त्री और पुरूष दोनों ने ही विवाह सम्बन्धी प्रचलित मन्यताओं का तीव्र विरोध किया।

तेजी से बदलती इस सामाजिक व्यवस्था से हमारे विवेचित कवि सर्वेश्वर भी अछूते नहीं रह सके। इसलिए उनकी अधिकतर रचनाओं में बदले सामाजिक समीकरणों की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है। "आज के जमाने में आदमी से ज्यादा लोग पोस्टरों को पहचानते हैं। वे आदमी से बड़े सत्य हैं। पोस्टर जो दूसरे की बात कहते हैं। जिनमें आकर्षण है लेकिन जान नहीं।"[54] अजनबीपन, कुण्ठा और संत्रास जैसी भावनाएँ उनकी कविताओं में स्पष्ट नजर आती हैं यथा–

"अजनबी देश है यह, जी यहाँ घबराता है–
कोई आता है यहाँ पर न कोई जाता है,
जागिए तो यहाँ मिलती नहीं आहट कोई,
नींद में जैसे कोई लौट–लौट जाता है।"[55]

ऐसी अनेक मारक अनुभूतियाँ कवि को अपने जीवन में अनुभव हुई हैं।

जिस प्रकार सर्वेश्वर का परिवेश उनकी कविताओं में प्रतिबिंबित होता है उसी प्रकार उनके सम्पूर्ण गद्य–साहित्य जैसे– कहानी, नाटक और उपन्यास आदि में भी उनका परिवेश उभरकर सामने आया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'लड़ाई' ऐसे ही सामाजिक परिवेश की उपज है।

निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर के साहित्य को उनके सामाजिक परिवेश ने न सिर्फ प्रभावित किया है अपितु विविध रूपों में उनकी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त भी हुआ है। इस सम्बन्ध में उनके समकालीन साहित्यकार डॉ. रघुवंश का कथन है–"कोशिश तो यही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाए और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाए।"[56]

राजनीतिक परिवेश

सर्वेश्वर ने इस धरती पर जब जन्म लिया तब देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। देश को आजादी मिलने के बाद लोगों ने सुराज और रामराज्य के सपने देखे थे। आजादी केवल राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकृत नहीं की गई थी, बल्कि विचारों की एक नवक्रान्ति का सपना भी उससे जुड़ा हुआ था। भारतीय संविधान के माध्यम से एक नए समाज की सरंचना की नींव डाली गयी। स्वाधीनता पूर्व भारतीय राजनीति को प्रेरित करने वाला काँग्रेस समाजवादी दल अपनी सम्पूर्ण

शक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन में लगा रहा था वहीं मार्क्सवादी विचारधारा से अधिक प्रभावित साम्यवादी दलों का प्रयास पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध था। साम्यवादियों को लगता था कि काँग्रेस पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली है क्योंकि उसका नेतृत्व पूँजीपतियों के हाथ में था। इस प्रकार काँग्रेस समाजवादी दल और साम्यवादी दल के बीच एक विरोध सा निर्मित होता चला गया। मार्क्सवादी विचारधारा में शोषक और शोषित– इन दो वर्गों को मान्यता प्रदान की गई है और उसका स्पष्ट मत है कि दोनों वर्गों के अपने–अपने स्वार्थ हैं। अतः वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। इस प्रकार साम्यवादी दल वर्ग संघर्ष में क्रान्ति या हिंसा के प्रयोग को अनुचित नहीं मानते। परन्तु काँग्रेस समाजवादी दल ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए हिंसा को अस्वीकार किया था।

सर्वेश्वर ने अपने जीवन काल में राजनीति में व्याप्त अमानवीयता और विद्रूपता को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया। उनके अनुसार आजादी के बाद इस व्यवहार का सबसे दुखद पहलू यह है कि कुर्सी पर बैठी हुई राजनीतिक जमात विज्ञापनबाजी में ही अधिक विश्वास करती है–

"मुकुट धारण किए
घूम रहा है विज्ञापनबाज शासक
और योद्धाओं की पोशाक
बाजे वालों ने पहन रखी है।"[57]

ऐसे नेताओं के सामने अपनी कुर्सी के अस्तित्व का प्रश्न ही सबसे गम्भीर विषय है।

सर्वेश्वर द्वारा रचित उनके अधिकांश साहित्य में राजनीतिक धोखेबाजी और 'वादों' पर गम्भीर चोट की गई है–

"साम्यवाद या पूँजीवाद
मैं दोनों पर थूकता हूँ।
और पूछता हूँ
जिसके पैर में जूते नहीं दे सकते,
उसके हाथ में तुम्हें

बंदूक देने का क्या अधिकार है।"[58]

राजनीति के इसी स्वरूप से विचलित सर्वेश्वर पूछते हैं कि यह राजनीति है या सूखे की स्थिति पैदा करने का जाल। देश की यह राजनीति अनेक संकट की स्थितियों में सहायता कोष खोलने का भी ऐलान करती है परन्तु कोष कहीं और चला जाता है और सहायता कहीं और दम तोड़ देती है। सर्वेश्वर ने 'शरणार्थी' शीर्षक कविता में ऐसी व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह् लगाए हैं। क्या गांधी जी ने ऐसी ही राजनीति का सपना देखा था? आज गांधी और गांधीवाद के नाम पर हर कोई अपना रोजगार चमका रहा है। उनकी समाधि पर फूल चढ़ा सब फूलों की सेज सजाते हैं। गांधीवादी विचारधारा का यह दुरूपयोग 'पंचधातु' शीर्षक कविता में बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है–

"मैं जानता हूँ क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का,
उत्सवों में अधिकारियों के बिल्ले बनाने के काम आ गयी,
भीड़ से बचकर एक सम्मानित विशेष द्वार से,
आखिर वे उसके सहारे ही तो जा सकते थे,
और तुम्हारी लाठी,
उसी को टेककर चल रही,
एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता।
और तुम्हारा चश्मा---------
तुम्हारी चप्पल-------------
और घड़ी--------अच्छा हुआ,
तुम चले गए,
अन्यथा तुम्हारे तन का ये जननायक क्या करते पता नहीं।"[59]

सर्वेश्वर का सम्पूर्ण साहित्य गरीब और वंचित लोगों से गहरा सरोकार रखता है। लोकतांत्रिक मूल्य और नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा उनकी रचना धर्मिता के आधार हैं। उनका विश्वास है कि राजनीतिक बदलाव के लिए रचनाकारों को संगठित होना चाहिए–"यदि साहित्यकार, पत्रकार, रंगकर्मी, कलाकार सामाजिक बदलाव चाहता है तो उसे राजनीतिक आन्दोलन व संगठन से जुड़ना होगा।"[60]

सर्वेश्वर की अधिकांश रचनाएँ विकृत राजनीतिक व्यवस्था पर तीव्र व्यंग्य करती हुई उसे बेनकाब करती प्रतीत होती हैं। इनमें आपातकाल के काले कानूनों, दंगे-फसादों को प्रोत्साहित करने वाले षड्यन्त्रों, चुनावी दाँवपेंचों, अवसरवादिता और भ्रष्टाचार के अनेकानेक रूपों की चर्चा की गई है। सर्वेश्वर की निगाह में अधिकांश राजनीतिज्ञ काले तेंदुए हैं जो अपने शिकार को झिंझोड़ते रहते हैं। प्रजातन्त्र के इस स्वरूप को देखकर क्रान्तिकुमार ने ठीक ही लिखा है-"सर्वेश्वर समसामयिक जीवन के राजनीतिक दारिद्र्य कवि हैं और प्रजातन्त्र की विद्रूपताओं को दिखाकर उन्होंने सामान्य व्यक्ति की सामान्य चिंताओं को ही अधिक अंकित किया है।"[61] सर्वेश्वर के समकालीन कवि रघुवंश के विचार भी कुछ ऐसे ही हैं- "कविता में समसामयिकता का दायित्व तथा लोक-सम्पृक्ति का भाव आधुनिक कवियों में सबसे अधिक सर्वेश्वर में अभिव्यक्ति पा सका है।"[62]

नक्सलवाद, सत्ता का मनमाने ढंग से दुरुपयोग और राजनीतिक अवसरवादिता पर सर्वेश्वर ने अपनी रचनाओं में तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है-

"एक थे हाँ-हाँ, एक थे नहीं-नहीं।
जहाँ कहीं गया मैं, मिले मुझे वहीं-वहीं।"[63]

ये व्यंग्य देश के उन कर्णधारों पर किया गया है जिनकी बाह्य अभिव्यक्ति और अन्तस् की स्वीकारोक्ति में जमीन आसमान का अन्तर है। 'वे हमारे मसीहा नहीं हो सकते' शीर्षक कविता में कवि लोगों को ऐसी ही राजनीति की अमानवीयता से सावधान करता है। 'लोकतन्त्र का गाना' शीर्षक कविता में कवि लोकछन्दों के सहारे भारत के आम आदमी को आगाह करता है कि वे इस राजनीतिक दुकानदारी को समझें और हर ऐरे-गैरे को अपना प्रतिनिधि न बनाएं-

"बोर्ड समाजवाद का टाँगे
दुःशासन की खुली दुकान,
दुर्योधन सब शान से बैठे
हाथ में लबनी मुँह में पान।"[64]

यह समकालीन राजनीतिक परिवेश का यर्थाथ है जहाँ पूँजीपतियों के पैसे से जन-प्रतिनिधि अपना वोट खरीदते हैं, और फिर भी सत्ता में आने के बाद उनके

कर्णधार बनकर दोनों ही वर्ग आम आदमी के शोषण में जुट जाते हैं। यहाँ राजनीतिज्ञ अपनी कुर्सियाँ अपने खानदानों में हस्तान्तरित करते हैं, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता छीनी जाती है और विरोध करने पर लोगों को पुलिस द्वारा पिटवाया जाता है। यह राजनीतिक यथार्थ का स्याह पक्ष ही है कि हमारे राजनेता बड़ी तेजी से पूँजीपति बन जाते हैं जबकि देश की आम जनता के जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं होता। यह सम्पूर्ण समस्याएँ आज के राजनीतिक परिवेश में भी व्याप्त हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि सर्वेश्वर की राजनीतिक चेतना बड़ी तीक्ष्ण थी। उन्होंने अपने राजनीतिक परिवेश का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन और विश्लेषण किया था।

इस प्रकार सर्वेश्वर का एक प्रखरतम् रूप राजनीतिक कवि के रूप में भी हम सबके सामने आता है। सर्वेश्वर मानवता के प्रबल समर्थक हैं और उनके राजनीतिक परिवेश का अध्ययन समाजोन्मुख और मानव-हितैषी है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर के साहित्य में उनका राजनीतिक परिवेश अपने प्रबतम् रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

आर्थिक परिवेश

किसी भी देश की राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने में वहाँ की आर्थिक व्यवस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आर्थिक स्थिति-"मनुष्य का भौतिक व सामाजिक परिवेश है और इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह स्थिति मनुष्य की इच्छा उसकी अपेक्षाओं और आशाओं आदि के 'फ्रेमवर्क' से बाहर अपनी स्वतन्त्र सत्ता लिए रहती है।"[65]

सर्वेश्वर के आर्थिक परिवेश को समझने के लिए भी तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन व विवेचन किया जाना आवश्यक है।

स्वतन्त्रता से पूर्व देश अंग्रेजों के अधीन था जिनका मुख्य उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। वस्तुतः देश में अंग्रेजी राज की आधारशिला ही आर्थिक नीतियों पर आधारित थी। इस काल के दौरान अंग्रेजों ने देश को खूब लूटा और लगभग कंगाली की स्थिति में ला खड़ा किया। रही-सही कसर देश के बँटवारे ने

पूरी कर दी। इस प्रकार सर्वेश्वर के बाल–मानस पर देश की छवि एक ऐसे राष्ट्र के रूप में उभरी जो विपन्नता और बदहाली से जूझ रहा था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में आर्थिक नीतियाँ तो बहुत बनीं परन्तु वे अपने वास्तविक स्वरूप में क्रियान्वित नहीं हो सकी। इन नीतियों के अंतर्गत पूँजी पर सरकार का स्वामित्व हो गया, अनेक पंचवर्षीय योजनाएं बनीं और श्रम का मूल्य निर्धारित किया गया परन्तु फिर भी देश की सामान्य जनता आर्थिक विपन्नता से मुक्त न हो सकी। इस प्रकार देश की आर्थिक स्थिति पर भी कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। इस अवधि में यद्यपि देश की सामान्य जनता तंग और बदहाल रही परन्तु देश के पूँजीपतियों की पूँजी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। काले धन की सामान्तर चलने वाली इस अर्थव्यवस्था ने जन–साधारण में क्षोभ और आक्रोश को जन्म दिया– "असल में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत का सच यही था कि एक तरफ तो वह सामन्तवादी सामाजिक सरंचना और भीषण आर्थिक संकट की गिरफ्त में था, दूसरी तरफ इसके नेतृत्व वर्ग के पास इस गिरफ्त से निकलने के लिए भारत की ठोस वास्तविकताओं की पहचान पर आधारित कोई कार्ययोजना नहीं थी।"[66]

प्रो. विपिनचन्द्र के अनुसार–"मन्दी के कारण कृषि–उपजों की कीमतें काफी गिर गईं। जिसके कारण भारी करों और लगान से बदहाल किसानों की हालत और खराब हो गई। अतः कुल मिलाकर किसानों ही स्थिति यह हो गई कि उन्हें टैक्सों, लगानों और ऋणों का भुगतान तो मन्दी के पहले की दरों पर करना पड़ रहा था, लेकिन उनकी आय लगातार कम होती जा रही थी।"[67]

वास्तव में हमारे नीति नियंताओं ने कभी इस तथ्य पर विचार ही नहीं किया कि औद्योगिक विकास का स्वरूप यदि सामाजिक ढांचे की आधारभूत विसंगतियों से नहीं जूझता है तो विकास के साथ–साथ गरीबों और अमीरों के बीच की खाई भी कम होने के बजाए क्रमशः बढ़ती ही जाती है।

फिर भी स्वतन्त्र भारत के पक्ष में एक अच्छी बात यह थी कि आजादी के बाद आगे विकास के सम्बन्ध में देश में एक आम सामाजिक सहमति थी। इस सहमति के फलस्वरूप देश की कृषि और औद्योगिक अवस्थाओं में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ और देश में आर्थिक आधार पर तीन नए वर्ग अस्तित्व में आए।

जिनमें पहला वर्ग जमींदारों और पूँजीपतियों से सम्बन्धित था। दूसरे वर्ग में सामान्य नौकरीपेशा से सम्बन्धित लोग थे जिन्हें मध्यम वर्ग का नाम दिया गया और तीसरा वर्ग गरीब किसान और मजदूरों का था जिन्हें निम्न वर्ग के अंतर्गत रखा गया।

वास्तव में भारतीय सामाज की आर्थिक अवधारणा को गहराई से समझने के लिए यह आवश्यक है कि मध्यमवर्ग के उपवर्गों का भी अध्ययन किया जाए। वस्तुतः मध्यम वर्ग के तीन उपभेद किए जा सकते हैं जिनमें पहला उच्च मध्य वर्ग है। यह समाज का वह हिस्सा है जो आर्थिक दृष्टि से मजबूत है और अपने आप को उच्च वर्ग के अंतर्गत माने जाने का अभिलाषी है।

दूसरे मध्यम-मध्यवर्ग के अंतर्गत उन लोगों को शामिल किया जा सकता है जो किसी प्रकार अपनी मर्यादा का निर्वाह कर रहे हैं। इस वर्ग के अंतर्गत सामान्य नौकरीपेशा व्यक्तियों को रखा जा सकता है।

मध्यवर्ग के अंतर्गत ही तीसरा वर्ग उन लोगों का है जिनकी स्थिति श्रमिकों व किसानों से बहुत अच्छी नहीं है। इस वर्ग को निम्न वर्ग कहा जा सकता है।

सर्वेश्वर की रचनाओं में मध्यम वर्ग के यह तीनों ही रूप विद्यामान है।

वास्तव में सर्वेश्वर इस विचार के समर्थक प्रतीत होते हैं कि “समाज में मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार अर्थ की धुरी पर घूम रहा है। इसलिए जहाँ आर्थिक विपन्नता होगी वहाँ मानवीय सम्बन्धों में भी चारों तरफ टूटन और बिखराव होगा।”[68]

मानवीय सम्बन्धों की यह वेदना विवेचित कवि की अनेक रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है-

> “आओ दोस्त-
> जलती दोपहरों में
> चौराहे पर खड़े होकर चिल्लायें
> ‘लाए हैं हम
> खाली जेबें
> पागल कुत्ते
> और बासी कविताएँ।’------

फर्क इतना ही था
कि छल और फरेब की,
झूठे हिसाब किताब की
हमने इल्लत नहीं पाली थी,
इसलिए तुमसे अपनी जेब कटवा ली थी।"[69]

आर्थिक स्थिति में सुधार के उद्देश्य से गाँव के नौजवान शहरों की ओर पलायन करने लगे क्योंकि पूँजीपति वर्ग इन सब को सुनहरे भविष्य के सपने दिखा रहा था। इस नीति के सम्बन्ध में पूँजीपतियों के स्वार्थ को उद्घाटित करते हुए धर्मवीर भारती कहते हैं–"चूँकि उसे मशीन और नए आविष्कारों की जरूरत थी अतः वह विज्ञान का हामी था, चूँकि अपने कारखानों में स्वतन्त्र मजदूरों की आवश्यकता थी, अतः वह सामन्तवादी गुलामी के खिलाफ वैयक्तिक स्वतन्त्रता का पक्षपाती था। उसे पढ़े-लिखे मजदूरों की जरूरत थी अतः वह शिक्षा के प्रसार में संलग्न था।"[70]

गाँवों से शहरों की ओर पलायन की इस विवशता का वर्णन सर्वेश्वर ने अपनी रचनाओं में बड़े मार्मिक ढंग से किया है–

"घन्त-मन्त दुई कौड़ी पावा
कौड़ी लै के दिल्ली आवा,
दिल्ली हम का चाकर कीन्ह
दिल-दिमाग भूसा भर दीन्ह"[71]

देश में व्याप्त अथाह गरीबी के ऐसे अनगिनत दृश्य सर्वेश्वर की कविताओं में भरे पड़े हैं। ये दृश्य सर्वेश्वर के उस आर्थिक परिवेश की ही उपज हैं जिसे सर्वेश्वर ने स्वयं देखा और भोगा था।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर का समकालीन आर्थिक परिवेश आर्थिक असमानता और बदहाली का परिवेश था। आर्थिक सन्तुलन का ये परिवेश आज भी हमारे समाज में विद्यमान है जिसे हमारे विवेचित कवि ने अपनी अनुभवी दृष्टि से बहुत पहले देख और समझ लिया था और फिर अपनी लेखनी के माध्यम से उस पर सशक्त प्रहार भी किया।

सांस्कृतिक परिवेश

साहित्य और संस्कृति का अटूट नाता है। वस्तुतः दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं। संस्कृति की अन्तःसरिता का जल साहित्य की भावभूमि को उर्वरा बनाने के साथ-साथ साहित्यकार की दृष्टि को विशेष भंगिमा एवं गति भी प्रदान करता है। परिवेश के प्रति साहित्यिक दृष्टि का नियन्त्रण बहुत कुछ संस्कृति के द्वारा होता है। व्यक्ति स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की उन्मुक्तता के वर्तमान युग में भी समर्थ से समर्थ व्यक्तित्व के लिए भी संस्कृति की सर्वथा उपेक्षा करना सम्भव नहीं है।

"व्याकरण की दृष्टि से 'सम् उपसर्ग पूर्वक' 'कृ' धातु से 'सुट्' आगम करके 'लिन' प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निर्मित हुआ है।"[72] संस्कृति का अर्थ अलंकृत सम्यक चेष्टा है। मनुष्य ने परंपरा से प्राप्त अनुभव के आधार पर अपने जीवन को अधिकाधिक सुखी और शान्त बनाने के लिए जो नियम निश्चित किए हैं, जिनके पालन द्वारा वह अपने को अधिक उदात्त और भव्य बनाने का प्रयत्न करता है, उन नियमों और मान्यताओं को ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृति का अर्थ अन्तःकरण की उदात्त वृत्तियों से होता है। सत्य, अहिंसा, त्याग, क्षमा, तपश्चर्या आदि भारतीय संस्कृति के उपकरण रहे हैं। प्राचीन हिन्दू धर्म क्षेम एवं पारलौकिकता को महत्व देता था किन्तु इस युग में ये मान्यताएं परिवर्तित हो गयीं। धर्म में भारतीय उदात्त तत्व इस युग तक आते-आते अपना स्वरूप खो बैठे और उनके स्थान पर अंधविश्वास, आडम्बर, मिथ्याचार और पाखण्ड आसीन हो गए।

वास्तव में किसी भी देश की संस्कृति के स्वरूप का निर्धारण उस देश विशेष की सामाजिक और मानवीय आवश्यकताओं तथा विधि और निषेध के नियमों के अनुसार होता है। सामाजिक, राजनीतिक व मानवीय अनुशासन हमारी वृत्तियों का संशोधन व परिष्कार करता है। फलस्वरूप मनुष्य में जीवन की त्रुटियों को दूर कर अभावों पर विजय पाने की भावना उसके जीवन-पथ का निर्देशन करने लगती है और सहयोग, सद्भाव, शील, सौन्दर्य आदि की प्रेरणा संस्कृति का निर्माण करती है।

संस्कृति के मुख्यतः दो पक्ष हैं- भौतिक व सूक्ष्म रूप। भौतिक संस्कृति का आशय सम्पूर्णता से है वहीं संस्कृति के सूक्ष्म रूप के अंतर्गत आत्मा, धर्म, दर्शन,

कला व संस्कार आदि को समाहित किया जा सकता है। "स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अन्य परिवर्तन के समान सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। किन्तु इस युग के सांस्कृतिक परिवेश में मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया अन्य परिवर्तनों की अपेक्षा अति अल्प है।"[73]

मूल्य परिवर्तन की इस प्रक्रिया की गति मन्द होते हुए भी शताब्दियों की भारतीय परंपराओं में पली और पोषित हुई तथा ब्रिटिश शासन काल में यूरोपीय जीवन पद्धति से प्रभावित हुई इस भारतीय जीवन पद्धति में संघर्ष और समय का एक विचित्र क्रम चल रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का विचार है– "आज मनुष्य में अनेक मानसिक वृत्तियाँ और अंहकार पैदा हो गए हैं, वह स्वायत्त हो गया, उसके मन में अस्वीकार है, 'ईश्वर' और 'धर्म' के प्रति विद्रोह कर वह नई मानव संस्कृति का निर्माण करना चाहता है।"[74]

इस नई मानव संस्कृति ने सर्वेश्वर के विचारों को भी उद्धेलित किया। इसलिए उनका सम्पूर्ण साहित्य सांस्कृतिक चेतना और मूल्य बोधों को प्रभावित करने का कार्य करता है। कविता में यद्यपि उन्होंने संस्कृति शब्द का प्रयोग कम किया है तथापि गद्य के सम्बन्ध में उनका विचार है–"संस्कृति क्या है? आत्मा की मुक्त स्वाधीन आवाज। इसलिए जो स्वाधीनता से डरते हैं, उससे खतरा महसूस करते हैं, वे सबसे पहले इस आवाज को दबाने और कुचलने की कोशिश करते हैं, सदियों से करते आ रहे हैं क्योंकि सत्ता इस आवाज को दबाकर ही बनाए रखी जा सकती है।"[75]

सर्वेश्वर के काव्य में भारतीय सांस्कृतिक परिवेश के अनेकानेक रूपों के दर्शन होते हैं। ग्रामीण भारतीय संस्कृति का एक ऐसा ही उदाहरण दृष्टव्य है–

"मेघ आए बड़े बन–ठन के संवर के.........
बूढ़े पीपल ने आगे बढ़ कर जुहार की,
'बरस बाद सुधि लीन्हीं'–
बोली अकुलाई लता ओट हो किंवार की।
हरषाया ताल लाया पानी परात कर के--------"[76]

सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति के उस पतन पर भी कटाक्ष किया है जिसमें भैंस की तरह मस्तिष्क शून्य होकर हमारे कर्णधारों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को खतरे में डाल दिया है–

"तेरी भैंस है प्रज्ञा पारमिता
उसने मेरी खेती खाई थी–––
तेरी भैंस ने खाया कामसूत्र
तेरी भैंस ने खा डाली गीता
तेरी भैंस से अब का शेष रहा
तेरी भैंस से ही यह युग बीता।"[77]

आज का मनुष्य अपनी संस्कृति से कटकर कहीं भी जुड़ नहीं पा रहा है। वह दूसरों के विचारों को ओढ़कर क्रान्तिकारी बनने का ढोंग कर रहा है अर्थात बाहर से ओढ़ी हुई कृत्रिम आधुनिकता से अपने को ढकने का प्रयास कर रहा है। 'दूसरों के कपड़े पहनकर' शीर्षक कविता में कवि ने ऐसी ही स्थिति पर व्यंग्य किया है।

सर्वेश्वर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के पतन का कारण सांस्कृतिक ह्रास को ही मानते हैं। उनका विचार है–"यह समाज संस्कृति उपासकों का नहीं है। संस्कृति के नाम पर सब झूठी दुहाइयाँ देते हैं। मौका पड़ने पर सत्ता के पीछे भागते हैं।"[78]

वास्तव में प्रत्येक साहित्यकार अपने सांस्कृतिक आधार से ही अपनी चेतना की दिशा प्राप्त करता है। उसके साहित्य में उस युग की मान्य संस्कृति दिशा–निर्देश करती है और चिन्तन के विशिष्ट आयामों का निर्माण करती है।

सर्वेश्वर के काव्य और अन्य साहित्य में भी यही युगीन सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है।

1.2 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जीवन–परिचय, शिक्षा एवं कार्यक्षेत्र

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न सर्वेश्वर दयाल सक्सेना छोटे से परिवार और कस्बे से निकलकर दिल्ली में आए लेकिन दिल्ली की तड़क–भड़क में उनका मन कभी रमा नहीं और जीवनपर्यंत वे कुआनों के ही बने रहे। साहित्य में उन्हें जो कुछ भी

जहाँ से भी मिला उसे ग्रहण करने में उन्होंने कोताही नहीं बरती। इसीलिए भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही जीवन दर्शन उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

(क) जीवन-वृत्त व स्वभावगत विशेषताएं

भारतवर्ष में कायस्थ जाति सदैव से कलम की धनी रही है। इन लोगों में कृषि या अन्य व्यवसायों की अपेक्षा कोर्ट-कचहरियों से अधिक लगाव देखा गया है। ऐसे ही एक परिवार में 15 सितम्बर, 1927 को पिकौरा ग्राम, जिला बस्ती, उत्तर प्रदेश में हमारे विवेचित कवि ने जन्म लिया। उनके पिता का नाम विश्वेश्वर दयाल सक्सेना और माता का नाम सौभाग्यवती था। पिता विश्वेश्वर दयाल अपनी धुन के पक्के और प्रगतिशील विचारधारा के थे। ये बात तब स्पष्ट हो गयी जब उन्होंने अपना विवाह आर्यसमाजी ढंग से किया। उनकी एक जिद थी कि वे कभी भी सरकारी नौकरी नहीं करेंगे और उन्होंने इसे जीवन भर निभाया भी। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने वैदिक पुस्तकालय की दुकान खोली लेकिन कुछ समय बाद ही वो फोटोग्राफी की दुकान में बदल गयी। इसी प्रकार वे अपना पेशा बदलते रहे। वास्तविकता यह थी कि वे किसी काम को अधिक दिनों तक नहीं कर सकते थे। जब उनके प्रतिद्वंद्वी तैयार हो जाते थे तो वे पुराना धन्धा छोड़कर नये में शामिल हो जाते थे। जीविका का उनका ये क्रम निरंतर चलता रहा। इस प्रकार पिता ने बस्ती में बड़ी मेहनत से मालवीय रोड से सटे, अनाथालय के बगल में एक छोटा-सा घर बना लिया। इसी नए घर में सर्वेश्वर के छोटे भाई श्रद्धेश्वर तथा बहन सुशीला का जन्म हुआ।

माँ सौभाग्यवती सरकारी स्कूल में अध्यापिका थीं लेकिन नाम के अनुरूप वे सौभाग्यवती सिद्ध नहीं हुईं और जीवन भर आर्थिक संकटों से जूझती रहीं। माता-पिता के आर्थिक संकटों का ये प्रभाव सर्वेश्वर के बाल-मन पर भी अंकित हुआ है। "जिस भूमि पर मैं जन्मा, जहाँ बचपन बिताया अब वहाँ कोई चिन्ह नहीं है, खंडहर भी नहीं। उस मकान के बगल की विशाल इमली के पेड़ों की बगिया उजड़ गयी है। पीछे जिस तालाब में घंटों कंकड़ फेंका करता था, वह सूख गया है। जिस ठाकुरद्वारे में प्रसाद पाता था, अब वहाँ दिया भी नहीं जलता। वहाँ अब मुझे कोई भी नहीं पहचानता। मैंने कभी इसकी जरूरत भी नहीं समझी, क्योंकि वह छोटा-सा

गाँव मैं हमेशा अपने साथ लिए घूमता हूँ। वह गाँव जो मेरा है, मेरे साथ रहता है; वह अब इस धरती पर नहीं है।"[79]

आर्थिक तंगी में जन्म लेने वाले सर्वेश्वर का इस विपन्नता से जीवन भर अटूट नाता रहा। बचपन से ही वे ट्यूशन करते थे। किसी से लेने में उन्हें सदैव संकोच रहा। अपनी पढ़ाई का खर्च वे स्वयं निकालते थे। बचपन से ही कठोर परिश्रम की आदत धीरे-धीरे उनका स्वभाव बन गया। गरीबी से अनवरत संघर्ष करने के कारण गरीबों के प्रति दिनों-दिन सहृदय होते चले गए। दिनमान में उनके इसी स्वाभिमान युक्त स्वभाव के बारे में लिखा गया- "सर्वेश्वर ने जीविका को अपनी सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बड़े कौशल से बनाया। रोटी और सुविधाओं के लिए उन्होंने न तो कहीं नाक रगड़ी और न कहीं समझौता किया।"[80]

अपने जन्म, बचपन, माता-पिता, परिवार, मित्र, इलाहाबाद, पहली रचना की चर्चा करना उन्हें अच्छा लगता था। डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा दिल्ली मे लिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने बड़े ही स्पष्ट तरीके से अपने बारे में बताया है- "पिता जीविका कमाने के लिए जी-तोड़ काम करते थे, जो भी सामने आ जाता था- दुकानदारी से रंगसाजी तक उन्होंने की। माँ स्कूल में पढ़ाती थी। मनोरंजन के नाम पर आर्य समाज के जलसे थे या गाँव के लोकगीत, नाट्य आदि।"[81]

सर्वेश्वर अपने जीवन के महत्वपूर्ण पड़ावों बस्ती, काशी और इलाहाबाद को कभी भूल नहीं पाए। वे दिल्ली में आकर रहे जरूर लेकिन महानगरीय सभ्यता का अजनबीपन उन्हें ताउम्र सालता रहा-

"इस मृत नगर में
हर तरफ दरवाजे
या तो बंद मिलते हैं
या मृत पुतलियों की तरह खुले
हर यात्रा शुरू होने से पहले ही
समाप्त हो जाती है।"[82]

सर्वेश्वर को देश-विदेश की यात्रा करने का भी शौक था। उन्होंने देश-विदेश के राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन कर उसकी अनुभूति अपने पाठकों को भी प्रदान की।

सर्वेश्वर जन चेतना के कवि हैं। आज का सामन्य जीवन समस्त अच्छाइयों और कमियों के साथ उनकी कविताओं में उभरा है। उनकी कविता में निजता और आत्मीयता दिखाई देती है जो नयी कविता की विशेषता है। अज्ञेय ने सर्वेश्वर के विषय में इसी बात को स्पष्ट किया है-"समकालीन कवि सत्य और यथार्थ का जो नए कवि सफल और सबल हाथों से पकड़ सके हैं- जो सच्चे अर्थ में समकालीन जीवन में सम्पृक्त हैं- उनमें सर्वेश्वर का विशेष स्थान है- वह मूल गुण जो कवि को कवि बनाता है और जो कवि को रवि दृष्टि से अधिक गहरे पहुँचाता है वह गुण इनमें है।"[83]

सर्वेश्वर अपने जीवन में किसी राजनीतिक मतवाद से नहीं जुड़े। उनकी अपनी सामाजिक मान्यताएँ थीं जिनसे उन्होंने कोई समझौता नहीं किया। वे विद्रोही व्यक्तित्व के साहित्यकार थे और ये बीज उनमें बचपन से ही पड़ गए थे। उनका यह विद्रोह वर्तमान व्यवस्था में निहित मौकापरस्ती को देखकर पनपता रहा। साहित्य की सभी विधाओं में वे प्रयोग के हिमायती रहे। उनकी कविता तथा नाटकों में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे में परिवर्तन के लिए विद्रोह है। उनके बाल नाटक यथार्थवादी मनोवृत्ति को उभारने वाले हैं। इन रचनाओं में सर्वेश्वर का बहुआयामी व्यक्तित्व सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए लोकतंत्र और राजतंत्र की उन व्यवस्थाओं पर भी चोट करता है जहाँ मानवीय अस्मिता अन्याय और शोषण का शिकार हुई है। उनकी रचनाओं का प्रमुख स्रोत आज का समाज है जहाँ उनकी रचनाओं में अन्याय, पाखण्ड, शोषण और आडम्बर का विरोध तीव्र रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

(ख) शिक्षा एवं कार्यक्षेत्र

सर्वेश्वर की प्रारम्भिक शिक्षा बस्ती में हुई। यहीं के ऐंग्लो संस्कृत हाईस्कूल से सन् 1941 में उन्होंनें हाईस्कूल की परीक्षा पास की। कुछ समय बाद उनकी माँ का तबादला बनारस हो गया जिसके कारण अपनी माँ के साथ सर्वेश्वर भी

बनारस आ गए। सन् 1943 में यहीं के क्वींस कॉलेज से उन्होंने इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1944-45 में आर्थिक कठिनाइयों और बहन के विवाह हेतु पैसे इकट्ठा करने के उद्देश्य से उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी और बस्ती के एक इंटर कॉलेज में 60/– प्रतिमाह की नौकरी शुरू कर दी। यहाँ भी सर्वेश्वर अधिक दिन तक टिक न सके और उनके हृदय की कुछ आगे बढ़ने की उत्कट अभिलाषा उन्हें इलाहाबाद खींच लायी। यहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.ए. और सन् 1949 में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। एम. ए. में विजयदेव नारायण साही उनके सहपाठी थे। अपने शिक्षकों में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' और डॉ. राम कुमार वर्मा के प्रति उनके मन में अत्यधिक सम्मान था। यह वही समय था जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय उत्तर भारत की प्रतिभाओं का केन्द्र था। यहाँ का साहित्यिक वातावरण इतना विशिष्ट था कि सर्वेश्वर यहीं रहना चाहते थे। ऐसे में यहाँ का ए. जी. ऑफिस सर्वेश्वर के लिये वरदान सिद्ध हुआ और वे वहाँ प्रमुख डिस्पैचर पद पर कार्य करने लगे। यहाँ का प्रमुख अधिकारी सहृदय था और उनकी साहित्यिक गतिविधियों से प्रसन्न रहा करता था। यही कारण था कि वहाँ उन्हें बड़ी स्वतंत्रता मिली और यह स्वतंत्रता उनके साहित्यिक क्रियाकलापों के लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। वे वहाँ सन् 1955 तक रहे। इसके पश्चात सर्वेश्वर की ऑल इंडिया रेडियो के हिन्दी समाचार विभाग में सहायक सम्पादक के पद पर नियुक्ति हो गई। यहाँ वे 1960 तक कार्य करते रहे। सन् 1960 के बाद वे दिल्ली से लखनऊ रेडियो स्टेशन पर आ गए। यहाँ वे 1964 तक रहे। इसी बीच कुछ समय के लिए वे इन्दौर और भोपाल में भी रहे। सन् 1964 में जब 'दिनमान' पत्रिका निकली तो अज्ञेय के आग्रह पर अपने पद से इस्तीफा देकर वे पुनः दिल्ली आ गए और अज्ञेय के साथ 'दिनमान' में काम करने लगे। यहाँ कुछ दिन सहायक सम्पादक रहे और बाद में वे उसके उप-प्रमुख सम्पादक हो गए। नवम्बर 1982 में वे बाल-पत्रिका 'पराग' के सम्पादक हो गए और मृत्युपर्यन्त इसी पद पर कार्य करते रहे।

सर्वेश्वर ने साहित्य, पत्रकारिता और एक सम्पादक के रूप में देश की जो सेवा की उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे अपने ढंग के अनूठे शैलीकार,

निष्ठावान देशभक्त तथा सदियों से पीढ़ित मानवता के सच्चे पैरोकार थे। उनके इन्हीं गुणों के लिए जो सम्मान तथा उपाधियाँ उन्हें मिलनी चाहिए थीं वे नहीं मिलीं। प्रसिद्धि के लिए अपने सिद्धान्तों से उन्होंनें कभी कोई समझौता नहीं किया।

सर्वेश्वर के 'खूँटियों पर टंगे लोग' काव्य संग्रह को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी अन्य रचनाओं को भी सराहा गया जो किसी पुरस्कार से कम नहीं है।

उनकी 'गर्म हवाएँ' और 'एक सूनी नाव' काव्य संग्रह का अनुवाद रूसी कवि 'अलेक्शान्द्र शेंक्याविच' ने किया। उनकी कहानियाँ अनेक भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, इतालवी, पोल, रूसी तथा सोवियत संघ की बहुत सी भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं और देश तथा विदेश दोनों में अपनी पहचान बनाए हुए हैं।

सर्वेश्वर अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अर्थात् सितम्बर सन् 1982 से बाल पत्रिका 'पराग' का सम्पादन करने लगे थे। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि 15 सितम्बर, 1983 को उन्होंने अपना 57वाँ जन्म दिवस मनाया और इसी माह 23 सितम्बर को रात्रि में दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया। कैसी विडम्बना है कि उनका जन्म सितम्बर माह में हुआ, सितम्बर में ही उन्होंने 'दिनमान' में प्रवेश किया, सितम्बर में ही दिनमान छोड़कर पराग के सम्पादक बने और अंततः इस संसार से उनकी अंतिम विदाई भी सितम्बर माह में ही हुई।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. नाटककार सर्वेश्वर : धीरेन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-24

2. कवयित्री महादेवी वर्मा : डॉ.शोभानाथ यादव, पृष्ठ-29

3. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा : डॉ.मालती सारस्वत, पृष्ठ-542

4. प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोश : संपादक-डॉ.धर्मेन्द्र वर्मा, खण्ड-2, पृष्ठ-1309

5. बृहत् हिन्दी कोश : संपादक-कालिका प्रसाद, पृष्ठ-1095

6. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा : डॉ.मालती सारस्वत, पृष्ठ-542

7. वही, पृष्ठ-543

8. वही, पृष्ठ-543

9. तीसरा सप्तक (वक्तव्य), पृष्ठ–220

10. वही, पृष्ठ–220

11. क्षितिज के पार : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–155

12. भाषा त्रैमासिक : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–90

13. नई कविता–कथ्य एवं विमर्श : डॉ.अरुण कुमार, पृष्ठ–73

14. एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ– 31

15. प्रतिनिधि कविताएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–44-45

16. कविताएं एक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–242

17. कुआनों नदी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–24

18. सम्पूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–11

19. वही, पृष्ठ–11

20. प्रतिनिधि कविताएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–59

21. सर्वेश्वर का कवितालोक : डॉ महेश दिवाकर, पृष्ठ–4

22. दिनमान : संपादक–नेमिचन्द्र जैन, 2-8अक्टूबर, 1983, पृष्ठ–25

23. सम्पूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, खंड–3, पृष्ठ–13

24. अंतरंग साक्षात्कार : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–47,

25. सम्पूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, खण्ड–1, पृष्ठ–20

26. वही, पृष्ठ–23

27. सर्वेश्वर का रचना संसार : संपादक–प्रदीप सौरभ, पृष्ठ–109

28. भाषा त्रैमासिक : डॉ कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–94

29. प्रतिनिधि कविताएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–18

30. सर्वेश्वर का काव्य–संवेदना और संप्रेषण : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–91-92

31. गर्म हवाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–13

32. सम्पूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, खंड–3, पृष्ठ–10

33. नई कविता स्वरूप और समस्याएँ : जगदीश गुप्त, पृष्ठ–271

34. इतिहास और आलोचना : नामवर सिंह, पृष्ठ–43

35. हंस : अप्रैल, 1934, पृष्ठ–40

36. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश : संपादक–पं.रामचन्द्र पाठक, पृष्ठ–472

37. मानक हिन्दी कोश, पृष्ठ–428

38. नालंदा अद्यतन कोश : संपादक–पुरूषोत्तम नारायण अग्रवाल, पृष्ठ– 501

39. वृहद हिन्दी कोशः संपादक–कालिका प्रसाद, पृष्ठ–656

40. मधुमालती (परिचर्चा अंक) : वर्ष 1975, पृष्ठ–110

41. प्रभात् वृहद् हिन्दी शब्दकोश : संपादक–डॉ.धर्मेन्द्र वर्मा, खण्ड–2, पृष्ठ–1510

42. इतिहास और आलोचनाः नामवर सिंह, पृष्ठ– 36

43. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासः संपादक–डॉ.रामदरश मिश्र, ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृष्ठ–90

44. मधुमालती (परिचर्चा अंक) : वर्ष 1975, पृष्ठ–111

45. अज्ञेय और उनके उपन्यास : गोपाल राय, पृष्ठ–18

46. कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह, पृष्ठ–40

47. परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य : हेतु भारद्वाज, पृष्ठ–12

48. तीसरा तारसप्तक की टीका : प्रो.सतीश कुमार, पृष्ठ–15

49. नई कविता : डॉ.देवराज, पृष्ठ–107

50. नई कविताएँ: एक साक्ष्य : डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ–17

51. वही, पृष्ठ–271

52. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–25

53. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता : डॉ.रघुवंश, पृष्ठ–31

54. काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–382-83

55. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–27

56. दूसरा सप्तक : रघुवीर सहाय, पृष्ठ–151

57. कविताएँ दो : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–97

58. वही, पृष्ठ–60-61

59. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–139-140

60. सर्वेश्वर का रचना संसार : संपादक–प्रदीप सौरभ, पृष्ठ–109

61. नई कविता : क्रान्तिकुमार, पृष्ठ–108-9

62. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता : डॉ.रघुवंश, पृष्ठ–30

63. गर्म हवाएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–32

64. कोई मेरे साथ चले : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–32

65. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र : आनन्द प्रकाश, पृष्ठ–88

66. सत्ता, समाज और सर्वेश्वर की कविताएँ : डॉ.रसाल सिंह, पृष्ठ–11

67. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष : प्रो.विपिन चन्द्र, पृष्ठ–321

68. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य (मानवीय सरोकारों के दर्पण में) : डॉ.विजय शर्मा, पृष्ठ–118

69. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली, संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–1, पृष्ठ–117-18

70. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृष्ठ–40

71. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–71-72

72. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : डॉ.चन्द्रभूषण सिन्हा, पृष्ठ–6

73. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना : डॉ.इफ्फत असगर, पृष्ठ–67

74. हिन्दी साहित्य का विकास : डॉ.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ–76

75. सांस्कृतिक दबाब और रचना व्यापकता–सर्वेश्वर, संपादक–प्रदीप सौरभ, अंक–जुलाई 1989, पृष्ठ–131

76. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–1, पृष्ठ–205

77. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–81

78. दिनमान : वर्ष 1974, पृष्ठ–10-11

79. सम्पूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, खंड–3, पृष्ठ–11

80. दिनमान, 2-8 अक्टूबर, वर्ष–1983, पृष्ठ–24

81. अंतरंग साक्षात्कार : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–46

82. प्रतिनिधि कविताएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–67

83. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता : डॉ.रघुवंश, पृष्ठ–31

अध्याय

2

सृजन के विविध आयाम

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हिन्दी साहित्य जगत के एक ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनकी लेखनी से साहित्य की कोई भी विधा अछूती नहीं है। उनके व्यक्तित्व के समान उनका रचना जगत भी विशाल है। इस संबंध में नेमिचंद जैन ने लिखा है–"कारण जो भी हो, सर्वेश्वर उन इने गिने साहित्यकारों में से थे जिन्हें विभिन्न कलाओं से सिर्फ लगाव ही नहीं हुआ, उनके भीतरी रिश्ते, उनकी आपसी निर्भरता का भी गहरा अहसास होता गया। इस लगाव और अहसास की छाप इनके व्यक्तित्व और साहित्य दोनों पर दिखाई पड़ने लगी थी। जो उनकी रचना यात्रा में एक नए और उत्तेजक मोड़ की संभावना को रेखांकित करती थी।"[1]

2. काव्य परिचय

सर्वेश्वर ने काव्य से लेकर नाटक, कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि साहित्य की लगभग हर विधा पर लिखा है तथापि साहित्य में उनकी पहचान एक कवि के रूप में ही की जाती है। उनका काव्य केवल भावों का मात्र उच्छलन नहीं वरन् बौद्धिकता की परिणति भी है। इसलिए उनकी रचना के आयाम व्यापक हैं। उनके बारह काव्य संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं– तीसरा सप्तक (सं–अज्ञेय), काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएं, कुआनो नदी, जंगल का दर्द, खूँटियों पर टँगे लोग, क्या कहकर पुकारूँ, कविताएँ–भाग–एक (काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल का संग्रह), कविताएँ–भाग–दो (एक सूनी नाव, गर्म हवाएं का संग्रह) और कोई मेरे साथ चले। 'काठ की घंटियाँ' संकलन में 'तीसरा सप्तक' की कविताएँ भी समाहित की गयी हैं। वस्तुतः उनके आठ काव्य संग्रह ही

हैं। यहाँ पर मैं उनके इन्हीं आठ काव्य-संग्रहों पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ।

2.1. काठ की घंटियाँ

काठ की घंटियाँ, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का प्रथम काव्य-संग्रह है। यह संग्रह सन् 1959 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की सन् 1949 से लेकर 1958 तक की रचनाएं संग्रहित हैं। इसी में 'तीसरा सप्तक' की भी रचनाएं सम्मिलित हैं। इस संग्रह में कुल छाछठ कविताएं हैं जोकि भाव एवं कथ्य की दृष्टि से भिन्न हैं। संग्रह की अधिकांश कविताएं व्यंग्यात्मक तथा प्रतीकात्मक हैं। इसका शीर्षक 'काठ की घंटियां' ही प्रतीकात्मक है, जो आज के कुण्ठाग्रस्त मानव का प्रतीक है। जैसे काठ की घंटियां बजकर, एक अनाकर्षक और बेसुरी ध्वनि उत्पन्न करके भी न तो किसी को चेतावनी दे पाती हैं और न ही किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं। ठीक उसी प्रकार आज की मध्यवर्गीय चेतना कुण्ठित हो कर जड़वत हो गई है। वह बहुत कुछ कहना चाह कर भी अपनी अभिव्यक्ति दे पाने में असमर्थ है। वस्तुतः इस संग्रह में ऐसी ही मनः स्थिति की कविताएं संग्रहित हैं, फिर भी वे विविध संदर्भों से जुड़ी हुई हैं। कवि इन मनः स्थितियों में डूबकर उनके आन्तरिक पक्षों को उभारने का प्रयास करता है। इस विषय में अज्ञेय ने उनके बारे में लिखा है, "सर्वेश्वर जो दीखता है, उसके पीछे जो है, उसमें व्यस्त हैं और उसे उभार अथवा उघाड़कर सामने लाना चाहते हैं।"[2]

अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर इस संग्रह की कविताओं को व्यंग्यात्मक, प्राकृतिक, प्रेमपरक और विविध शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। इस संग्रह के शीर्षक भले ही अलग-अलग हों किन्तु व्यंग्य इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। 'तीसरा सप्तक' में सर्वेश्वर ने वक्तव्य दिया है- "जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बाँधे हों कि वे आपकी बात नहीं समझेंगे, तब आपके सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं, या तो चुप रहें- अपनी बात न कहें, या फिर उसे इस ढंग से कहें कि सुनने वाले तिलमिला उठें, उनकी कलई उतर जाए।"[3] कवि ने दूसरा रास्ता ही चुनना श्रेष्ठ समझा। उन्होंने अपने व्यंग्य में

इतनी शक्ति पैदा कर ली कि सुनने वाले के दिमाग की खिड़कियाँ खुल जाएँ। इस संदर्भ में उनकी कविता 'पीस पैगोडा' की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"क्योंकि राम का नाम लेने से यदि पापी तर जाते हैं/
तो क्या शांति का नाम रटने से युद्ध नहीं रुकेंगे?/
जरूर मेरे दोस्त/मेरी बधाई स्वीकार करो,/और
इस बार यदि फिर 'पीस पैगोडा' बनाना पड़े/
तो बौद्ध भिक्षुओं के गैरिक वसनों को न भूलना/
क्योंकि उन ढीले चोगों के नीचे/
बड़ी-बड़ी आटोमेटिक राइफलें तक/
आसानी से छिपाई जा सकती हैं।"[4]

इस प्रकार की कविताओं में पीस पैगोडा, लिपटा रजाई में, कलाकार और सिपाही, घास काटने की मशीन, नीला अजगर, बेबी का टैंक, खाली जेबें, आटे की चिड़िया, पागल कुत्ते और बासी कविताएँ, थर्मस, पोस्टर और आदमी, सरकण्डे की गाड़ी, सौन्दर्य बोध और काठ की घंटियाँ प्रमुख हैं।

'थरमस' शीर्षक कविता भी आज की स्थितियों पर करारा व्यंग्य है। डॉ. हरिचरण शर्मा के शब्दों में यहाँ सत्य व्यंजित है। "बाहर से भड़कीला रंग रखते हुए भी 'थरमस' भीतर से असहाय और रिक्त होता है, फिर भी दूसरों की प्यास बुझाता है। काँच-सा दुर्बल मन लेकर भी तृप्ति-शमन के निमित्त इतनी आस्था निश्चय ही अभिनन्दनीय है।"[5]

"बाहर तो महज शोख भड़कीला रंग है
सामर्थ्य का प्रदर्शन है, बेलौस काया है।
भीतर असहाय रिक्तता है–
शून्य है, निर्वात है,
काँच-सा नाजुक दुर्बल मन है।"[6]

'पोस्टर और आदमी' नामक कविता में आज की उस स्थिति पर तीखा व्यंग्य किया गया है, जिसमें आदमी को पोस्टरों से भी हीनतर और लघुतर समझा जाने लगा है–

“लेकिन मैं देखता हूँ/ कि आज के जमाने में/
आदमी से ज्यादा लोग पोस्टरों को पहचानते हैं/
वे आदमी से बड़े सत्य हैं।
पोस्टर जो दूसरे की बात करते हैं/
जिनमें आकर्षण है लेकिन जान नहीं।”[7]

इस संबंध में हरिचरण शर्मा ने लिखा है कि–“आज की दुनिया में रक्त मांस के जीवित आदमी की अपेक्षा पोस्टरों का महत्व बढ़ गया है। मनुष्य कृत्रिम सौन्दर्य के पीछे दौड़ लगा रहा है। इसी प्रवृत्ति पर कवि ने व्यंग्य किया है।”[8]

आज की राजनीति पर सबसे तीखा प्रहार करने वाली कविता ‘सरकण्डे की गाड़ी’ है। यह कविता वर्तमान राजनीतिक यथार्थ को बेनकाब करने में सक्षम है जिसमें राजनीति सरकण्डे की गाड़ी की तरह शक्तिहीन, खोखली और सारहीन हो चुकी है। इसके कर्णधार भी इसी के अनुकूल हैं। कोई केवल मेढकों की तरह टर्र-टर्र करता है तो किसी के काले कारनामे जमते-जमते पीले तथा लिजलिजी परत में बदल जाते हैं। लाल चींटी-सा संग्रही और स्वार्थी व्यक्त्वि रखने वाले इसके सवार हैं–

“एक सरकण्डे की गाड़ी है/ जिसमें मेढ़क जुते हैं/
मच्छर शहनाइयाँ बजा रहे हैं/ लाल चींटे सवार हैं/
ओ, अरे ओ! अपना शीश झुकाओ/
आज के युग की सवारी निकल रही है।”[9]

व्यंग्यों के इस क्रम में, ‘आत्मसाक्षात्कार’, ‘प्लेटफार्म’ और ‘काठ की घंटियाँ’ शीर्षक कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं।

सर्वेश्वर के इस काव्य-संग्रह में कुछ कविताएँ प्रेम की पृष्ठभूमि पर भी आधारित हैं जिनमें ‘यह भी क्या रात’, ‘सुहागिन का गीत’, ‘एक प्यासी आत्मा का गीत’, ‘एक शांत ज्वालामुखी तुम’, ‘विगत प्यार’, ‘अहं से मेरे बड़ी हो तुम’, ‘आज पहली बार’, ‘प्रेम नदी के तीरा’ आदि प्रमुख हैं। चूँकि ‘काठ की घंटियाँ’

उनका प्रथम काव्य-संग्रह है अतः स्वाभाविक है कि इस संग्रह की कविताओं में विविधता है –

"यह भी क्या रात कहीं प्यार का अफसाना नहीं,
यों ही जलता है दिया एक भी परवाना नहीं,
एक तस्वीर-सी यह सारा का सारा आलम
इस तरह देखता है, गोया कि पहचाना नहीं।"[10]

इसी संग्रह की उनकी कविता 'विगत प्यार' में प्रेम की विरहानुभूति का बड़ा ही सजीव चित्रण दिखाई पड़ता है –

"मैं तो अजनबी हूँ/ पहली बार शायद यहाँ आया हूँ/
मैं तो इस घर को पहचानता तक नहीं/
सच मानों जानता तक नहीं,/ लेकिन लगता है जैसे/
कभी कुछ हुआ था/ अच्छा अब जाता हूँ/
कमबख्त आँखें भर आती हैं/ यद्यपि जानता हूँ/
यह गहरा धुआँ था।"[11]

इसी तरह 'तुम कहो' शीर्षक कविता में भी सर्वेश्वर मध्यवर्गीय नारी का चित्रण करने में सफल दिखाई देते हैं-

"तुम/ जिसके बालों में बनावटी 'कर्ल' नहीं है/
जिसकी आँखों में न गहरी चटख शोखी है/
थर्मामीटर के पारे-सी/
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढ़ती-उतरती हैं।"[12]

सर्वेश्वर की इसी मध्यवर्गीय नारी के चित्रण के सन्दर्भ में डा. हरिचरण शर्मा का वक्तव्य प्रासंगिक होगा- "इसमें प्रतिक्षण परिवार के काम-काज में व्यस्त नारी का चित्र है। यह नारी अपने यौवन के उफान को व हृदय के ज्वार को दबाए जिंदगी की विवशताओं को भोग रही है। प्यार का नाम इसके चेहरे पर क्रोध ला देता है। क्योंकि ऑपरेशन थियेटर की भाँति कार्य व्यस्त नारी का प्यार थककर सो गया है। सर्वेश्वर की नारी परवशा नहीं है। वह परिवार की संचालिका है, उसे प्यार नहीं मिला। उसके यौवन को समादर नहीं मिला है। फलतः वह प्यार

के नाम पर 'गर्म' (क्रुद्ध) हो जाती है। सर्वेश्वर की नारी में यह विद्रोह बना हुआ है।"[13]

'सुहागिन का गीत' शीर्षक कविता में एक हिन्दू नारी की तमाम आस्थाओं का चित्र उतारा गया है। इस गीत में सुहागिन एक ओर प्रियतम से ठहरने का निवेदन करती है, तो दूसरी ओर उसके निष्ठुर व्यवहार को भी पहचानती है। उसके पास तर्क भी है और अपने प्रिय को रोकने के लिए समर्पण भरा निवेदन भी।

सर्वेश्वर ने अपने इस काव्य-संग्रह में प्रकृति से संबंधित अनेक कविताएँ भी रची हैं। 'यह साँझ', 'चाँद की नींद', 'चाँदनी से कहो', 'कल रात', 'भोर', 'संध्या का श्रम', 'सावन का गीत', 'आँधी-पानी आया', 'झूले का गीत' और 'सुबह हुई' आदि प्रकृति से संबंधित प्रमुख कविताएँ हैं। 'यह साँझ' कविता में कवि ने संध्या के दृश्य का कितना सटीक चित्रण किया है –

"मरी परछाईं तक/ यह साँझ निगल जाएगी-
दूर पश्चिम में/ ढलते हुए सूरज के करीब,
आज यह जल रहा है किसका गुलाबी आँचल?
आँख में खून के आँसू-भरे पहाड़ी यह
देखती है उसे, बेहोश-सी अपलक एकटक,
पेड़-पौधे-सभी मुर्दों से भी ज्यादा खामोश,
हैं खड़े खून से लथपथ यहाँ वीराने में,
एक पत्ते में भी जुंबिश का सार्मथ्य नहीं,
जिन्दगी चूस ली किसने यहाँ अनजाने में।"[14]

इसी प्रकार 'चाँद की नींद' और 'चाँदनी से कहो' कविताओं की ये पक्तियाँ भी प्रकृति का सजीव चित्रण करने में समर्थ हैं-

"चाँद गीले बादलों में सो रहा है/
चाँदनी को कुछ नशा-सा हो रहा है/
नींद में फेंके गये पाँसे झकोरे/
होश किसको क्या मिला क्या खो रहा है।"[15]

'सुबह हुई' शीर्षक कविता में बिम्बों के माध्यम से सुबह और शाम को साकार रूप देने का प्रयास किया गया है–

"सुबह हुई–/ धरती के सुनहरे चिकने फर्श पर/
हरी मटर का गोल बड़ा दाना लुढ़कने लगा/
और उसके पीछे–पीछे भूरे पंख फड़फड़ाता/
गौरैये का एक बच्चा/
अपनी नन्हीं–सी सुर्ख चोंच खोलकर उसे/
बार–बार पकड़ने का असफल प्रयास करता फुदकने लगा।"[16]

इसी प्रकार से उनकी अन्य प्रकृति प्रधान कविताओं में भी प्रकृति को बड़े ही सुन्दर और मनोरम तथा नवीन बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है–

"सलमें सितारों की काम वाली
नीली मखमल का खोल चढ़ा
अम्बर का बड़ा सिदोंरा उलटा
धरती पर/ नदियों के जल में/
गिरि–तरु के शिखरों से ढर–ढरकर/
सब सेन्दुर फैल गया।"[17]

'संध्या का श्रम' कविता में संध्या को बड़े ही सुन्दर ढंग से एक ग्रामीण युवती के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार सर्वेश्वर की अन्य प्रकृति से सम्बन्धित कविताएं भी जहाँ एक ओर प्रकृति के नजदीक ले जाती हैं, वहीं मध्यवर्गीय जीवन का भी सामना कराती हैं।

'काठ की घंटियाँ' काव्य–संग्रह में लोक संस्कृति, प्रकृति चित्रण, प्रेम, व्यंग्यात्मकता आदि से भिन्न विषयों की कविताएं भी देखने को मिलती हैं। जैसे इसी काव्य सग्रह की पहली कविता– 'जब कलम उठाता हूँ' है। इसमें कवि ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मध्यवर्गीय जीवन इतना उबाऊ और नीरस हो चुका है कि कवि को कोई विषय ही नहीं सूझता। लम्बी चोंच वाली चिड़िया हमारे रोजमर्रा के मन का प्रतीक है जिससे हमारे जीवन की निरर्थकता और सारहीनता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है –

"यों ही-बस यों ही/ दिन डूब जाता है/
मन ऊब जाता है/ रात घिर आती है/
बात फिर जाती है।"[18]

इसी काव्य संग्रह में 'मैनें आवाज दी है'- शीर्षक कविता की बाह्य औपचारिकता, जिसका मानव के अंतर्मन से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर बड़ा करारा व्यंग्य है-

"खुदगरज जमाना इतना नहीं हो जाएगा,
लाश सिरहाने किसी की बिना कफन हो पड़ी,
ओढ़ के मखमली चादर नहीं सो पाएगा।"[19]

इसी तरह 'अजनबी देश है' शीर्षक कविता भी आज के मानव की मानसिक स्थिति का सटीक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यह वह स्थिति है जहाँ मानव सब के बीच रहकर भी स्वयं को अकेला महसूस करता है-

"अजनबी देश है यह, जी यहाँ घबराता है-
कोई आता है यहाँ पर न कोई जाता है।"[20]

इस अजनबीपन का विश्लेषण करते हुए शम्भुनाथ सिंह ने कहा है-"संसार एक जंगल है जहाँ बलशाली पशु, निर्बल पशु को मारकर खा जाता है। ऐसे पशुओं की दुनियाँ में तत्व दर्शन झूठा होता है, प्रेम और सत्य सब झूठे होते हैं, और सच होता है केवल झूठ, केवल घृणा, केवल हिंसा, केवल अत्याचार और अनाचार। अतः यदि सचेत और विद्रोही कवि के मन में अजनबीपन की भावना उठती है तो आश्चर्य क्या है।"[21]

वर्तमान मानव जीवन की उबाऊ और मशीनी जीवन शैली पर कटाक्ष करते हुए सर्वेश्वर यह मानते हैं कि आज अधिकतर संबंध बौने और सारहीन हैं। जिस तरह से 'छिलके के अंदर' की असलियत बाहर नहीं आ पाती उसी प्रकार आज का मानव एक दोहरी जिन्दगी जी रहा है-

"कितनी चुप-चुप नई रोशनी छिप-छिप आयी रात,
कितनी सिहर-सिहरकर अधरों से फूटी दो बात
चार नयन मुस्काए, खोए, भीगे, फिर पथराए-
कितनी बड़ी विवशता जीवन की कितनी कह पाए !"[22]

संग्रह की कविता 'बीसवीं शताब्दी के एक कवि की समाधि पर' में आज के मानव जीवन की स्वार्थपरायणता और आत्मकेन्द्रीयता का अच्छा विश्लेषण किया गया है। एक कवि जो जिन्दगीभर समाज की अनुभूतियों को अपने काव्य के माध्यम से व्यक्त करता रहता है, समाज के लिए वह एक अजनबी और उपेक्षित व्यक्ति है–

"सुनते हैं जब वह मरा
तो उस पर नहीं किसी ने ध्यान दिया–
अपने को स्वयं समझता था वह बहुत बड़ा
पर दुनिया को क्या था उससे लेना–देना।"[23]

इस तरह से देखा जाए तो सर्वेश्वर का यह पहला काव्य–संग्रह विविध विषयों को समेटे हुए है। इस काव्य–संग्रह में घर, परिवार, समाज, प्रकृति, प्रेम, व्यंग्य आदि अनेक विषयों की सच्ची और व्यावहारिक तस्वीर प्रस्तुत की गयी है। यदि सही अर्थों में देखा जाए तो वे सारे विषय जो नयी कविता के महत्वपूर्ण विषय हैं, सर्वेश्वर के इस काव्य–संग्रह में देखे जा सकते हैं। इस संबंध में डॉ. हरिचरण शर्मा का कथन प्रासंगिक है– "वास्तव में नयी कविता में घर, परिवार, शहर, गलियाँ, चौराहे, रेस्तराँ, विश्रामालय, फुटपाथ, प्लेटफार्म, क्लब आदि की सच्ची और व्यावहारिक तस्वीर मिलती है। यह जन समाज का चित्र ही नहीं एक्सरे भी है।"[24]

अन्य में 'माँ की याद', 'आत्म–साक्षात्कार', 'उत्तर', 'सिपाहियों का गीत', 'कौन है?' आदि भिन्न विषयों पर लिखी गयी कविताएँ हैं।

कवि का संपूर्ण काव्य संग्रह पढ़ने से लगता है कि 'काठ की घंटियाँ' मुख्यतः निराशा का, विवशता का, उदासी, सूनेपन और अंधकार का प्रतीक हैं। कवि की उदासी इतनी गहरी है कि वह अपने को शव से अधिक नहीं समझता। यहाँ तक कि समस्त प्रकृति उसे मुर्दा प्रतीत होती है। इस संग्रह की कविताओं पर तत्कालीन प्रयोगवादी दृष्टि और आन्दोलन का प्रभाव भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

‘काठ की घंटियाँ’ यद्यपि सर्वेश्वर की प्रथम काव्य-कृति है फिर भी इसमें काव्योपयोगी वे सभी तत्व मौजूद हैं जो उनके समर्थ रचनाकार होने का प्रमाण देते हैं। अज्ञेय ने इस संबंध में लिखा है कि-“ मेरा विश्वास है कि ‘काठ की घंटियाँ’ एक नए साहित्य द्रष्टा की नई सृष्टि होने के नाते ही सम्मानित न होगी बल्कि लेखक और उनकी रचनाओं के पुराने पड़ जाने पर अपनी ताजगी और शक्ति से पाठकों को प्रभावित करती रहेगी।”[25]

2.2. बाँस का पुल

सर्वेश्वर का दूसरा काव्य-संग्रह ‘बांस का पुल’ है। ये संग्रह सन् 1963 में समवाय प्रकाशन, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में सन् 1958 से लेकर सन् 1963 तक की चालीस कविताएँ संकलित हैं। इनका यह काव्य संग्रह पहले की अपेक्षा नयापन लिये हुए और बदलती हुई परिस्थितियों की मांग के अनुकूल है। इसमें वर्तमान मध्यवर्गीय जीवन के अजनबीपन और संत्रास को अभिव्यक्ति देने की कोशिश की गयी है। “‘बाँस का पुल’ काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताओं में सर्वेश्वर की राग तंत्री में फूटने वाली झनकार, विवशता और असफल प्रतीक्षा की ध्वनि सुनाई पड़ती है। वे स्वीकार करते हैं कि उनके लिए यात्रा अब धर्म नहीं विवशता है। वह विवशता सर्वेश्वर की कविताओं में मुद्रा बन नहीं प्रकट हुई, उसे वे एक निष्ठा की तरह जीते से लगते हैं। विवशता की यह निष्ठा ही उन्हें व्यापक मानवता से जोड़ती है और यही उनके काव्य की आत्मीयता का कारण भी है।”[26]

इस संग्रह का शीर्षक ‘बांस का पुल’ एक ऐसे व्यक्तित्व का प्रतीक है जो अपने अन्दर अदम्य उत्साह रखे है और विपरीत परिस्थितियों को भी झेल सकता है। ये व्यक्तित्व लचीला है। जिस प्रकार बांस का पुल अधिक भार पड़ने पर भी लचक तो सकता है लेकिन टूट नहीं सकता उसी प्रकार कवि भी लोगों को निर्भय होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। अज्ञेय को समर्पित उसकी ये पक्तियाँ आशा को नवीन अभिव्यक्ति देती हैं-

“निडर आगे बढ़ो
तुम्हारी राह में यह एक छोटा-सा
बांस का पुल है।”[27]

ऐसे ही लचीले माध्यम की बात या पुल की बात नरेश मेहता भी करते हैं–

"उस पर जाला लगा है,
पर अपने सेतु से ही
वहाँ जाया जाता है
तुम्हारा अपना सेतु है
यहाँ विनम्रियों के ही सेतु हुआ करते हैं।"[28]

विनम्रियों के अर्थात् उनके जो लचकें, चरमराएँ लेकिन टूटे नहीं जिनमें अनूठी शक्ति हो। इस स्तर पर सर्वेश्वर और नरेश में एक साम्य-सा दिखाई देता है।

इस संग्रह की कविताएं भी विभिन्न विषयों पर आधरित हैं। कुछ कविताएं नैराश्य प्रधान, कुछ प्रेम पर आधारित, कुछ प्रकृति प्रधान और कुछ मध्यवर्गीय जीवन को अभिव्यक्ति देने वाली हैं।

संग्रह की अधिकांश कविताओं में मध्यवर्गीय विसंगतियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। आज का मानव भीड़ में अपना अस्तित्व खो बैठा है इसलिए वह एक ऐसे घुटन भरे चौराहे पर खड़ा है जहाँ उसे कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा है। "असल में कवि तो बराबर यह अनुभव करता रहा है कि व्यक्ति समाज में रहकर भी अकेला हो गया है।"[29]

"मुझसे कहती हैं–
कि मैं भी एकाकी हूँ/ मैं भी असहाय हूँ
टूटे वायलिन-सा एक कोने में पड़ा
बजता साज सुनता रहा
अपने ही मन के अथाह सूनेपन में
मकड़ी-सा जाला बुनता रहा।"[30]

इस संग्रह की 'राह पर' शीर्षक कविता भी ऐसे ही व्यक्ति की मनःस्थिति को उजागर करती है–

"कभी-कभी
पैरों की आवाज पूछती है

किधर जा रहे हैं हम?"[31]

कवि ऐसे समाज को अभिव्यक्त करते हुए कहना चाहता है कि हम अक्सर वैसा नहीं कर पाते जैसा करना चाहते हैं–

"मैं देना चाहता हूँ
वह ही नहीं जो मेरे पास है
बल्कि वह भी जो आने वाली
शताब्दियों में मेरे पास होगा
लेकिन होंठ काटकर रह जाता हूँ।"[32]

'पूर्णिया प्यार', 'नया वर्ष फिर आया', 'मैं अपने ही वन से निर्वासित हूँ', 'कभी–कभी लगता है', और 'कैसी विचित्र है ये जिन्दगी' आदि कविताएं भी मानव मन की इसी विडम्बना को व्यक्त करती हैं।

'दिवंगत पिता के लिए' शीर्षक कविता में आदर्शों पर चलने वाले मनुष्य की तबाही का वर्णन किया गया है–

"पिता! इन मूल्यों ने तो तुम्हें
अनाथ, निराश्रित और विपन्न ही बनाया
तुमसे नहीं, मुझसे कहती है,
मृत्यु के समय तुम्हारे
निस्तेज मुख पर पड़ती यह क्रूर दारुण छाया।"[33]

डॉ. हरिचरण शर्मा के अनुसार– "'काठ की घंटियाँ' में जो स्वर निनादित थे वे निराशा, दर्द, अहं, विवशता और जिन्दगी के विविध पहलुओं पर व्यंग्य करते थे। इस संग्रह में यह सब है। निराशा दर्द बन गयी है क्योंकि यह अपने को घुटन भरा और मुर्दा महसूस करती है। दर्द का कारण 'बाँस का पुल' में स्पष्ट हो गया है। 'दर्द यह किससे कहूँ' रचना पहले काव्य संग्रह के संदर्भ में ही देखी जा सकती है। अनुभूति की गहराई और परिवेश का गहन संदर्भ इस कविता को महत्ता प्रदान करता है। सर्वेश्वर की अनुभूति ट्रैजिडिक है, ठीक उस आदमी की तरह जो अपनी लाश स्वयं लिए घूम रहा है। यही कारण है कि संग्रह की अधिकांश कविताओं में आज के मानव की ट्रेजेडी व्यक्त हुई है।"[34]

इस संग्रह में कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जो सर्वेश्वर के अपने गांव तथा समाज के प्रति लगाव को व्यक्त करती हैं। नगरीकरण और सामाजिक प्रगति कहीं न कहीं अधूरापन लिये हुए है। जिसने सभ्यता और संस्कृति के मूल तत्वों को बदल दिया है। जीवन की सहजता, आत्मीयता और सम्बन्धों का जुड़ाव आज की जिन्दगी में खोखले से प्रतीत हो रहे हैं–

"खेतों की मेड़ों की ओस नमी मिट्टी
जितनी देर मेरे इन पाँवों में लगी रही,
उतनी देर जैसे मेरे सब अपने रहे
उतनी देर जैसे सारी दुनिया सगी रही,
किन्तु मैंनें ज्यों ही मोजे–जूते पहन लिए
जेब का, पर्स का ख्याल आने लगा,
मेरे आत्मीयों का रुका हुआ काफिला
एक–एक करके शीश झुका जाने लगा।"[35]

इस संग्रह की भी कुछ कविताएं प्रकृति चित्रण पर आधारित हैं जिनमें नवीन उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से प्रकृति को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। 'स्मृति', 'पूर्णिमा प्यार', 'बसन्त स्मृति', 'सूरज नट', 'हेमन्त सन्ध्या', 'सांझ–एक चित्र', 'बसन्त की शाम,' 'आए महन्त वसन्त,' 'दस्तकारी की दुकान' आदि कविताएं प्रकृति पर आधारित हैं। 'अपनी बिटिया के लिए', 'बसन्त की एक शाम' तथा 'मेघ आए' शीर्षक कविताएं भी प्रकृति प्रधान कविताएं हैं। इनमें बड़ी ही सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ प्रकृति को मानवीकृत रूप में चित्रित किया गया है–

"बूढ़े पीपल ने आगे बढ़कर जुहार की
बरस बाद सुधि लीन्ही–
बोली अकुलाई लता ओट हो किंवार की।"[36]

इसी संग्रह की 'दिवंगत पिता के लिए' शीर्षक कविता में आज के सारहीन, थोथे मूल्यों की प्रभावशीलता और प्राचीन मानवीय मूल्यों की निष्क्रियता पर करारा व्यंग्य किया गया है–

"पिता!
इन मूल्यों ने तो तुम्हें
अनाथ, निराश्रित और विपन्न ही बनाया
तुमसे नहीं, मुझसे कहती है/
मृत्यु के समय तुम्हारे
निस्तेज मुख पर पड़ती यह क्रूर दारुण छाया।"[37]

इस संग्रह में यद्यपि प्रेम पर आधारित कविताएं कम ही हैं फिर भी 'पूर्णिमा प्यार' नामक कविता में प्रेम की एक झलक देखी जा सकती है। यद्यपि यह प्रेम जनित अन्तर्द्वन्द की एक ट्रेजडी ही है–

"धन्य है तुम्हारा प्यार!
एक पीला सागर–
मौन निश्चल, अलौलिक, अपार।"[38]

सारांश रूप में यदि देखा जाए तो इस संग्रह की कविताएं मध्यवर्गीय जीवन की कटुताओं, विसंगतियों, विवशताओं, यंत्रणाओं और आधुनिकता में बलात् पीसी जाती हुई मानवता की आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। यह काव्य–संग्रह अनुभूति और शिल्प दोनों ही स्तरों से महत्वपूर्ण है। इस संकलन की भाषा पहले संग्रहों की तुलना में अधिक समृद्ध कही जा सकती है। उपमान, बिम्ब और प्रतीक आदि सभी दृष्टियों से यह संग्रह पढ़ने वाले को प्रभावित करता है।

2.3. एक सूनी नाव

'एक सूनी नाव' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की तृतीय काव्य–कृति है। इसमें कवि की 1963 से 1966 तक की लिखी इकतालीस रचनाएँ संकलित हैं। प्रस्तुत काव्य–संकलन में कवि ने अपने समग्र व्यक्तित्व के बहु–आयामी पक्षों को अभिव्यक्त किया है। इस काव्य–संग्रह में पहले की अपेक्षा अधिक तीखापन व नयापन है। वास्तव में ये तीखापन तात्कालिक परिस्थितियों की माँग भी है। आज का मध्यवर्गीय जीवन जिस आतंक, त्रास और अजनबीपन की जिन्दगी जी रहा है उसी को अभिव्यक्ति देने के लिए ये काव्य–संग्रह रचा गया है। यह पहला काव्य संग्रह है जिसमें कवि व्यंग्य–वक्रोक्ति की कला को विकसित करने के साथ नई

राहों की ओर बहुत तेजी से बढ़ता है। दिनमान में प्रकाशित एक समीक्षात्मक टिप्पणी इस बात को पुष्ट कर देती है–"प्रतिभा की पहचान के कई तरीके हैं। समकालीन कविता की एक कसौटी यह हो सकती है कि उसे किसी बने बनाए खाने में न रखा जा सके, जिन बिल्लों को लेकर गर्मागर्म बहसें होती हों, उनमें से कोई भी बिल्ला उस पर न टाँका जा सके। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नया कविता संग्रह 'एक सूनी नाव' न केवल इस कसौटी पर खरा उतरता है वरन् उनके पहले संग्रहों की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्टता से इस कसौटी के ही महत्व को पुष्ट करता है; यह व्यक्तित्व के विकास की नाप है।"[39]

अभिव्यक्ति की इस प्रक्रिया में कवि बहुत तल्लीन, समाजवादी चिन्तक, जनता का पक्षधर और आक्रामक व्यंग्य की मुद्राएँ लिए हुए है–

"लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बनें
ऐसे अनिर्मित पन्थ प्यारे हैं।"[40]

इस संग्रह तक पहुँचते–पहुँचते कवि आत्मरति के स्तर तक पहुँच गया है। आज की दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस स्तर तक पहुँचना अनिवार्य है। पर किसी व्यक्ति की आत्मरति और किसी कलाकार की आत्मरति में जमीन–आसमान का अंतर होता है। तुलसीदास ने भी स्पष्ट कहा है–

"स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबन्ध मति मन्जुल मातनोति।"[41]

पर यह स्वान्तः सुखाय कितना स्वान्तः रह गया उनकी कृति में, यह तो सर्वविदित ही है। इसी प्रकार सर्वेश्वर का यह काव्य संग्रह भी उनकी अपनी निजी अनुभूतियों का ही संकलन है लेकिन यह निजी अनुभूतियाँ विशाल समाज की अनुभूतियों का प्रतिबिम्ब बन गयी हैं। इस संबंध में हरिचरण शर्मा कहते हैं–"भीड़ से अलग होकर अपने अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने वाला कवि सहज ही ऐसी–ऐसी अनुभूतियाँ दे गया है कि यदि भीड़ इसे देखे तो कवि को अपनी

जिन्दगी के भीतरी पहलू का चुपचाप एक्सरे लेने का अपराधी ठहरा दे और सहम जाए अपनी ही तस्वीरें दूसरे के पास देखकर।"[42]

सर्वेश्वर मुख्यतः व्यंग्य के कवि हैं। प्रस्तुत संग्रह की—'पढ़ी-लिखी मुर्गियाँ,' 'व्यंग्य मत बोलो,' 'किड़-किड़ कियाँ-कियाँ' शीर्षक कविताएँ व्यंग्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'घन्त मन्त' तथा 'तर्कयोग' शीर्षक कविताओं को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इन कविताओं में व्यंग्य की धार अत्यंत मार्मिक प्रतीत होती है जिसका अंतःकरण पर तत्काल प्रभाव पड़ता है।

इस संकलन की कविताएँ रचनाकार के युग परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं। उनमें उसकी परिस्थितियाँ और समाज की विकृतियों की अभिव्यक्ति अनुभव के कई स्तरों पर हुई है। एक जुझारू कवि के रूप में सर्वेश्वर व्यंग्यकार की तेज धार अपनाते हुए परिवर्तन और विद्रोह की ठेठ भंगिमाएँ प्रस्तुत करते हैं। उनकी 'व्यंग्य मत बोलो' कविता में आज की बाजारवादी संस्कृति पर भी प्रहार किया गया है-

"भीतर कौन देखता है
बाहर रहो चिकने
यह मत भूलो
यह बाजार है
सभी आए हैं बिकने
राम-राम कहो
और माखन मिश्री घोलो।
व्यंग्य मत बोलो।"[43]

समसामयिकता की दृष्टि के आधार पर यह कविताएँ महत्वपूर्ण भी हैं। 'इस मृत नगर में' शीर्षक कविता में कवि ने महानगर की एकरस और अमानवीय जिंदगी को शब्दों के सहारे बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है-

"दृष्टियाँ असंख्य मिलती है
लेकिन किसी भी पुतली में
मुझे अपना अक्स नहीं दीखता
हर संबंध की सीढ़ी से

उतरने के बाद

मैं और अकेला छूट जाता हूँ

इस मृत नगर में।"[44]

इस संग्रह मे कवि ने नए छंदों को पुरानी लयात्मकता में ढालने का काम शुरू किया है। भाषा और छंद की कसावट के कारण व्यंग्य गहराई तक उतर गया है। 'धंत-मंत' शीर्षक कविता का एक नमूना दृष्टव्य है-

"घन्त-मन्त दुई कौड़ी पावा

कौड़ी लै के दिल्ली आवा,

दिल्ली हमका चाकर कीन्ह

दिल-दिमाग भूसा भरि दीन्ह"[45]

कवि ने इस प्रकार की कविताओं में समसामयिक यथार्थ के साथ व्यंग्य कला में बिम्बों और प्रतीकों को संयोजित कर अपने अनुभव को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस अनुभूति में आज के उच्चवर्गीय जीवन की विद्रूपताओं और विकृतियों की आहटें साफ सुनाई देती हैं। इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में कवि ने नगरीय जीवन में मानवीय संवेदनाओं के ह्रास पर गहरी चिंता व्यक्त की है।

प्रस्तुत संग्रह में कविताओं के विषय में पर्याप्त विविधता है लेकिन कवि की प्रधान वृत्ति यहाँ भी प्रधान ही रही है। पिछली काव्य परम्पराओं से भी कवि अंशतः जुड़ा हुआ है जिनसे जुड़े रहकर वह आधुनिक परिवेश से सामंजस्य करना चाहता है। 'इस अपरिचित नगर में,' 'लीक पर वे चलें', 'जाता हूँ', 'युद्ध स्थिति', 'एक सूनी नाव', 'एक शहर', 'अभिशाप', पढ़ी-लिखी मुर्गियाँ', 'व्यंग्य मत बोलो', 'दुर्घटना' आदि शीर्षक कविताएँ कवि की इस मनःस्थिति का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं।

इस संग्रह की कविताएँ आज की उस विषम स्थिति को अभिव्यक्ति देती हैं जिसमें मानव लोगों के बीच, भीड़ के बीच रहकर भी अपने को अकेला महसूस करता है, लोगों के आचरण के नियमों को अनिच्छापूर्वक मानता चलता है, सभी संबंधों की निरर्थकता जानते हुए भी उन्हें बनाए रखने को विवश होता है। ऐसी स्थिति में कवि अपने अकेलेपन को ही अपना सर्वस्व मान लेता है। इस संबंध में

डॉ.हरिचरण शर्मा का वक्तव्य प्रासंगिक है, "सर्वेश्वर की कविताओं में सूनेपन और अकेलेपन का जो बोध है उसके मूल में अस्तित्ववादी दृष्टि है। उसमें वह चिंतन है जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा करता है और भौतिक व यथार्थ परिस्थितियों का एकदम निराकरण करके शून्यता को महत्व देता है।"[46] इस अपरिचित नगर में केवल एकांत ही तो है जो केवल कवि का है और उसे उस पर गर्व है-

"मेरा एकान्त ही
मेरा विजय-स्थल है
जहाँ मैं हर दौड़ के बाद
गर्व से जाकर खड़ा हो जाता हूँ
और चारों ओर की गहन निस्तब्धता के प्रति
आत्मीयता से भर जाता हूँ।"[47]

इस संग्रह में लघु कविताएँ या क्षणिकाएँ भी हैं जिनमें प्रेम और सौन्दर्य की स्थितियों के बिम्ब हैं। प्रेम और सौन्दर्य भी कवि के प्रिय विषय हैं। छोटी कविताओं में 'समर्पण', 'प्यार एक छाता', 'आश्रय', 'वसन्त राग', 'ईर्ष्या' आदि प्रमुख हैं। प्रेम और सौन्दर्य की कविताओं में 'रात में वर्षा', 'पूर्णिमा कथा', 'तुम्हारे साथ रहकर', 'यह इमारत प्यार की', तुम एक यात्रा', 'तुमसे अलग रहकर', 'काठमाण्डू में भोर', 'चंचल हवाएँ' आदि महत्वपूर्ण हैं। अजित कुमार के शब्दों में- "सर्वेश्वर की खोज प्रेम, अपनेपन और सहारे की खोज है जिसके न मिल पाने के कारण उन्हें सब कुछ खाली-खाली और मृत मालूम होता है- पूरे का पूरा नगर तक- क्योंकि वे सब कुछ पाना ही पाना चाहते हैं। अपनी ओर से देना कुछ भी नहीं चाहते, न वे अपने से उबर पाते हैं न अपनी पिछली काव्य परिपाटियों से।"[48]

अधिकांशतः सर्वेश्वर की प्रेमपरक कविताएँ विगत प्रेम से ही सम्बद्ध दिखाई पड़ती है -

"जाने कैसा तनोवा है स्मृतियों का/
जिसमें समाता ही नहीं सूना आसमान"[49]

इसमें कुछ कविताएँ अंतरंगता की भी हैं जिनमें अनुभूतियों का सुन्दर चित्रण हुआ है–

"तुम्हारे साथ रहकर
अक्सर मुझे ऐसा महसूस हुआ है
कि दिशाएं पास आ गयी हैं
हर रास्ता छोटा हो गया है
दुनिया सिमटकर एक आँगन हो गयी है।"[50]

कवि ने इसी संग्रह में प्रसिद्ध कवि मुक्तिबोध की स्मृति में भी काव्य रचना की है जिसमें कवि की गहरी श्रद्धा व्यक्त हुई है।

इस संग्रह की कुछ कविताओं में प्रकृति चित्रण भी उल्लेखनीय है। 'काठमांडू में भोर' कविता में कवि ने प्रकृति का अद्‌भुत चित्र खींचा है–

"बर्फ की सफेद चोटियों पर
खिली हुई आग
घने कोहरे ने छिपा रखी है
सारा शहर
एक बहुत बड़ी मच्छरदानी
लगाकर सो रहा है।"[51]

यहाँ सुन्दर किरणों के लिए खिली हुई आग का उपमान और घने कोहरे का मानवीकरण प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'एक सूनी नाव' काव्य-संग्रह मात्र दर्द और अवसाद का चित्रण नहीं है बल्कि इसमें आस्था, संकल्प और जिजीविषा भी है। कवि अपने सूनेपन में भी अपनी अकेली नाव को खेने में सफल हुआ है। उसके शब्दों में स्नेह भी है, विद्रोह भी। शैली में स्निग्धता भी है और गत्वरता भी है। कुल मिलाकर यह कहना उचित होगा कि यहां न प्रतीक और उपमान घिसे-पिटे हैं और न ही मुलम्मा उतरे हुए हैं। बिम्ब-विधान भी यहां बासी नहीं है।

2.4. गर्म हवाएँ

'गर्म हवाएं' सर्वेश्वर का चौथा लघुतम काव्य-संग्रह है जिसमें पैंतीस कविताएँ संकलित हैं। ये संग्रह सन् 1969 में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की सन् 1966 से 1969 तक की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इस संग्रह की कविताएं तीन खण्डों में-'धीरे-धीरे', 'सूखा' और 'वे हाथ' शीर्षकों में विभक्त हैं। ये कविताएं क्रमशः विजयदेव नारायण साही, स्वर्गीया पत्नी बिमला और सूर्या को समर्पित हैं। प्रथम खण्ड में सर्वेश्वर की सर्वाधिक मुखर चेतना, दूसरे खण्ड में जीवन की दैनन्दिन समस्याएं, प्रार्थना भाव, एवं आत्मान्वेषण तथा तीसरे खण्ड में अनेकानेक मानसिक अनुभूतियों को उजागर किया गया है। इस संग्रह की कविताओं में आक्रोश का स्वर प्रधान रूप से दृष्टिगत होता है।

'धीरे-धीरे' भाग की लगभग सभी कविताओं में सर्वेश्वर ने सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों पर व्यंग्य किए हैं। "एक बृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य से कवि अपने को 'गर्म हवाएँ' की तमाम कविताओं से जोड़ लेता है। समसामयिक राजनीति की उखड़ी साँसों और काली खाँसियों की बेदमी हालत कविता के अनुभव चक्र में रचाव पाती है। आजादी के टूटते स्वप्नों से यह तथ्य तय हो जाता है कि धीरे-धीरे कुछ नहीं होता सिर्फ मौत होती है।"[52]

अन्य संग्रहों की भाँति इसका नामकरण भी प्रतीकात्मक ढंग से हुआ है। 'पत्नी की मृत्यु' नामक कविता में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है-

"एक द्वार की तरह
मैं रेगिस्तान में खड़ा हूँ
एक टूटी दीवार का अकेलापन भी
अब कहाँ है जो रोक सके।
गर्म हवाएँ सनसनाती हुई
मुझमें से गुजर जाती हैं।"[53]

कैसी विडम्बना है! रेगिस्तान में द्वार का अस्तित्व, जो बिना किसी दीवार के हो, बनाए रखना आसान नहीं है, जबकि गर्म हवाओं का झोंका भी बराबर आ रहा हो। वस्तुतः आज के समाज में मानव की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है।

सन् 1960 के बाद हिन्दी कविता में युग यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों से सीधी टकराहट व्यक्त हो रही थी। नेताओं के लम्बे-चौड़े नारे, योजनाएँ और वक्तव्य जगजाहिर थे। ऐसे में सर्वेश्वर भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके-

"लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाए
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए।"[54]

आजादी के बाद जो 'स्वतंत्रता' लोगों को मिली है वह कितनी सारहीन और खोखली है, कवि ने इस तथ्य को 'धीरे-धीरे' शीर्षक कविता में बड़े सहज ढंग से व्यक्त किया है-

"मेरे दोस्तों/मैं उस देश का क्या करूँ
जो धीरे-धीरे खाली होता जा रहा है/
धीरे-धीरे/अब मैं ईश्वर भी नहीं पाना चाहता/
क्योंकि-मेरे दोस्तों/धीरे-धीरे कुछ नहीं होता/
सिर्फ मौत होती है/
धीरे-धीरे क्रान्ति यात्रा/
शव यात्रा में बदल रही है।"[55]

क्या विडम्बना है कि आज ईश्वर को भी अपनी स्थिति में सुधार पा सकने में नितान्त असमर्थ जान कर मानव किंकर्तव्यविमूढ़ हो चला है। राष्ट्र तथा समाज की दुर्दशा को वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से व्यंग्य के सहारे बड़ी कुशलता से व्यक्त किया गया है-

"अब मैं कवि नहीं रहा
एक काला झंडा हूँ।
तिरपन करोड़ भौहों के बीच मातम में
खड़ी है मेरी कविता।"[56]

देश के साथ गहरे तादात्म्य को अभिव्यक्ति देने वाली सर्वेश्वर जी की यह कविता उनके कलात्मक कौशल के साथ उनकी मनःस्थिति को भी सहज रूप में अभिव्यक्ति देती है। काला झंडा स्पष्टतः प्रतिवादी का ही प्रतीक है। यही कारण है

कि वह अब असमर्थ देश और असमर्थ प्यार से नमस्कार कर लेता है। 'यह खिड़की' शीर्षक कविता में इस सत्य को अच्छी तरह स्पष्ट किया गया है–

"असमर्थ देश/असमर्थ प्यार
दोनों को ही मेरा नमस्कार,
आग न तो बँधी हवा से फैलती है
न बँधे हाथों से
धुँएँ में ही सही कुछ देर
यह उदासीनता डुबो लूँगा
अब मैं यह खिड़की नहीं खोलूँगा।"[57]

यह खिड़की वास्तविकता की है जिसमें झाँकने पर कवि को चारों ओर अत्याचार, उत्पीड़न और निरंकुशता ही दिखाई पड़ती है। डॉ. जगदीश गुप्त को इस कविता के एक शब्द पर आपत्ति है, "तीव्र और अभेद्य निराशा के लिए उदासीनता शब्द अवश्य कमजोर लगता है और अंत में कविता को उठते-उठते गिरा देता है।"[58] वे आगे लिखते हैं, पर ऊपर की शेष पंक्तियाँ बहुत सशक्त हैं।

वास्तव में समाज की दुर्दशा को तथा संबंधों की निरर्थकता को कवि बर्दाश्त नहीं कर पाता और उसके उन्मूलन के लिए प्रत्येक उपयोगी पथ को अपनाने के लिए तैयार हो जाता है। जिस तरह कबीर को न किसी जाति या संप्रदाय विशेष से मोह है और न ही उसके दोषों का भंडाफोड़ करने में किसी तरह की झिझक है, ठीक वही स्थिति सर्वेश्वर की है।

दूसरे खण्ड की कविताओं में विगत प्रेम, प्रार्थनाभाव और आत्मान्वेषण की स्थितियों का कुशलतापूर्वक अंकन हुआ है–

"नहीं-नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूगा।
अर्जित करूँगा उसे मरकर बिखरकर
आज नहीं कल सही आऊँगा उबरकर
कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
रोकूँगा पहाड़ गिरता

शरण नहीं मागूँगा।"[59]

उपर्युक्त पंक्तियाँ गुरुवर रवीन्द्रनाथ की 'आत्मत्राण' कविता की स्मृतियाँ दिलाती हैं जिनमें कवि ईश्वर से प्रत्यक्ष सहायता न माँगकर विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति माँगता है।

तीसरे खण्ड की कविताओं में कवि की विभिन्न मानसिक स्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। वैसे भी सर्वेश्वर आधुनिक मनोजगत का सटीक विश्लेषण करके उसे अपनी कविता में उतारने वाले कवि हैं। इस खण्ड की विगत प्रेम की स्मृतियाँ दिलाती प्रेमपरक कविताएँ भी अच्छी हैं। इसके लिए अपेक्षित दृष्टिकोण का खुलापन भी उनमें पर्याप्त मात्रा में है। इस खण्ड की प्रकृति प्रधान कविताओं को भी सराहनीय कहा जा सकता है। इनमें कहीं-कहीं तो पूरा का पूरा रूपक ही बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया गया है। एक उदाहरण देखिए-

"आकाश का साफा बाँधकर
सूरज की चिलम खींचता
बैठा है पहाड़,
घुटनों पर पड़ी है नदी चादर-सी,
पास ही दहक रही है
पलाश के जंगल की अँगीठी
अन्धकार दूर पूर्व में
सिमटा बैठा है भेड़ों के गल्ले-सा"[60]

प्रस्तुत पंक्तियों में शाम का बड़ा ही सजीव और सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी संग्रह की 'उड़ने दो मन को' शीर्षक कविता भी प्राकृतिक दृश्यों के चित्रांकन का सफल उदाहरण है। 'वह चुम्बन', 'रेत में छलछलायी नदी', तथा 'रेत की नदी' शीर्षक कविताएँ भी अच्छी कविताओं की श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह काव्य संग्रह संवेदना और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।"विचार-दृष्टि तथा कथ्य की प्रौढ़ता पर ध्यान दें तो यह उनका श्रेष्ठ संकलन है। यहाँ कवि कविता के 'फ्राड' में नहीं, कविता के संघर्ष में जीता है। उन कवियों की तरह नहीं रहता है- जो जीवन में

जीते न हों, उसी पर लिखते हों। यहाँ तो जीने और लिखने, सोचने-समझने में आंतरिक रिश्ता सघनता पाता है।"[61]

इस संग्रह में आंचलिक शब्दों तथा मुहावरों के कारण जहाँ लोक संम्पृक्ति का भाव बढ़ा है, वहीं ताजे उपमानों, सटीक बिम्बों और प्रतीकों के प्रयोग से भाषा में चार चाँद लग गया है।

2.5. कुआनो नदी

सर्वेश्वर का पाँचवां काव्य संग्रह 'कुआनों नदी' सन् 1973 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की सन् 1969 से 1973 तक की कविताएँ संग्रहित हैं जिसे कवि ने अपने छोटे भाई श्रद्धेश्वर को समर्पित किया है। यह संग्रह दो भागों-'कुआनो नदी' और 'गरीबी हटाओ' में विभक्त है। 'कुआनो नदी' खण्ड में केवल तीन कविताएँ हैं-'कुआनो नदी', 'कुआनो नदी के पार', 'कुआनो नदी खतरे का निशान' और दूसरे खण्ड 'गरीबी हटाओ' में सोलह कविताएँ हैं। इस काव्य संग्रह में कवि ने ग्रामीण और शहरी यथार्थ के शोषण परक संदर्भों को सामने रखकर 'कुआनो' की प्रतीक धर्मिता को दोनों स्तरों पर बड़ी ही सफलता से प्रस्तुत किया है। पूँजीवादी व्यवस्था ने आम जनता का शोषण किस हद तक किया है, इसका वर्णन ही कविता की विषय-वस्तु है। कविता के इन तीनों चरणों में आम आदमी की त्रासदी को शब्द मिले हैं। "मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' तथा 'कुआनो नदी' जन जीवन का सामाजिक इतिहास प्रस्तुत कर पाने के कारण बहुत तुलनीय कविताएँ हैं। एक प्रकार से यह कविता सर्वेश्वर की पूरी कवि-दृष्टि को समझने का प्रमाणिक आधार है।"[62]

संग्रह की प्रथम तीन कविताएँ 'कुआनो नदी को ही प्रतीक बनाकर लिखी गयी हैं। ये प्रतीक समसामयिक वातावरण को व्यंजित करते हैं, इसीलिए कवि को दिल्ली की सड़कें 'कुआनो नदी' जैसी दिखाई देती हैं। डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल ने कुआनो नदी की व्याख्या करते हुए लिखा है-" नदी भारतीय ग्रामीण चेतना की वह मन्द धारा है, जिसमें सब कुछ सहने पर भी विद्रोह की शक्ति नहीं आ सकी है। कवि चाहता है कि जनचेतना में एक जनक्रांति का स्वर बुलंद हो, नीला दर्द, रक्त

की लालिमा में फूट पड़े।"[63] वास्तव में यह नदी जीवन की तमाम विसंगतियों से ऊबे हुए के लिए मानों एकमात्र त्राण स्थल है–

"मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गए थे
जिन्दगी से ऊबकर मर नहीं सके।"[64]

यहाँ कवि कहना चाहता है कि उसके नाना आर्थिक संघर्षों से मजबूर होकर नदी में कूदे थे लेकिन बार–बार तड़पकर मरने के लिए निकाल लिए गए। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने सत्तारूढ़ सरकारें, जो अभी भी गरीबों को आर्थिक मदद नहीं दे पाई हैं उन पर करारा व्यंग्य किया है। वस्तुतः देखा जाए तो वर्तमान स्थिति में भी कोई विशेष बदलाव नहीं आया है।

कुआनो नदी मुर्दाघाट के लिए मशहूर है। यहाँ जलाए जाने वाले मुर्दों की लकड़ियाँ गीली होने की वजह से नहीं जलतीं और उसी प्रकार दिल्ली की सड़कों पर घूमती–फिरती जीवित लाशों की समस्याओं की लकड़ियाँ भी आज के क्षुब्ध जीवन में अनेक प्रयत्नों के बावजूद नहीं जल पातीं। वस्तुतः गाँवों और उनके निवासियों की वर्तमान स्थिति में आज भी कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। वे आज भी अभाव और अभागों की जिंदगी जीने के लिए विवश हैं–

"मेरे पिता को हर शवयात्रा में जाने का शौक था।
अक्सर वह आधी–आधी रात लौटते
और लकड़ियाँ गीली होने की शिकायत करते
माँ से कहते 'कुछ लोग अभागे होते हैं
उनकी चिता ठीक से नहीं जलती'
और हर अभागे की यही आखिरी कहानी
मैं आज भी सुनता हूँ।"[65]

स्वतंत्र देश में शासन के साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, और अधिनायकवादी चरित्र ने अमानवीय, पाशविक और असंस्कृति को एक साथ बढ़ावा दिया है। समाजवाद के नाम पर यहां जनता को मूर्ख बनाकर पूँजीवाद को बढ़ावा दिया गया। इस प्रकार शासन की कथनी–करनी से जनता का मोहभंग हुआ और परिणामस्वरूप

विभिन्न जन आंदोलनों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी। आज अन्ना हजारे और अरविंद केजरीवाल के आंदोलन शासन के इसी चरित्र का परिणाम हैं। नयी पीढ़ी की प्रबुद्ध चेतना ने जब शासन के इन काले-कारनामों के खिलाफ विद्रोह किया तो कारणों पर विचार न करके उन्हें गोलियों से भुनवाया जाने लगा-

"यह बच्चा है इसका कटा हुआ धड़
बस्ता लिए स्कूल के फाटक पर पड़ा है
इसके हाथ में पत्थर है
जिसे वह पुलिस पर फेंक रहा था,
यह बूढ़ा अपनी सूखती फसल के लिए
रात में बरहा काट रहा था,
यह जवान जब कुछ नहीं बना
छर्रों की बन्दूक लिए हवेलियाँ लूटने की
सोच रहा था।"[66]

इस काव्य-संग्रह के द्वितीय खण्ड में देश में चारों ओर फैली हुई हिंसात्मक स्थितियों के अनेकानेक दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे कवि का मन निरन्तर विद्रोही बनता गया है। मध्यवर्गीय जीवन की संत्रास, कुंठा, हताशा एवं भयावहता से भरी तमाम स्थितियाँ बड़ी कुशलतापूर्वक यहाँ उकेरी गयी हैं।

सत्य के कटु यथार्थ को झेल सकने में मानों कवि अपने आप को असमर्थ पाता है और परिणामतः उसे नकार देना चाहता है। पर मात्र नकारने से समस्याओं का हल कहां निकलता है। इसलिए सर्वेश्वर का कवि हृदय पूछ बैठता है-

"गिरगिट खड़खड़ाता रेंगता है
सूखी डालियों में
इन रगों में खून दौड़ता क्यों नहीं?
और इन हजारों आँखों की चमक से
कल्ले क्यों नहीं फूटते।"[67]

गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले कुछ अवसरवादी तो हर जगह पहुँच कर अपनी स्वार्थ पूर्ति कर लेते हैं, पर बहुसंख्यक निम्नवर्गीय लोगों के जोश-खरोश की

गरमी लावा बनकर क्यों नहीं फूट पड़ती। ऐसी स्थिति में कवि को क्रांति के सूत्रधार की आवश्यकता प्रतीत होती है, क्योंकि सहने की भी कोई सीमा होती है और वह सीमा अपनी सीमा का आतिक्रमण कर गयी है–

> "कुआनो नदी उतनी ही उथली है
> नाव उतनी ही छोटी कीचड़ में पली हुई
> मुर्दे उतने ही बेशुमार
> कहाँ हो ओ क्रान्ति के सूत्रधार।"[68]

समसामयिक स्थितियों की विडम्बना भी कवि के मन को झझकोर देती है। लोग अहिंसा और गाँधी नीति का प्रचार–प्रसार तो करते हैं पर असलियत कुछ और ही है–

> "घर के पिछवाड़े बँधी
> गाँधी जी की बकरी मिमियाती है
> और कहीं गोली चलने की आवाज आती है।"[69]

इस संग्रह में 'गरीबी हटाओ' खण्ड की कविताएँ देश में फैली गरीबी और भ्रष्टाचार का वास्तविक चित्र पेश करती हैं। इस संदर्भ में सर्वेश्वर जी ने स्वयं लिखा है– "आजादी के पच्चीस साल बाद आम आदमी हर तरह से और विपन्न ही हुआ है। हर तरह से वह टूटा है। सबने अपने–अपने मतलब से उसे छला है, सत्ता और राजनीतिक दल सबसे वह ऊब चुका है, उसका विश्वास सब पर से उठ चुका है। मँहगाई, गरीबी उसे तोड़ चुकी है। उसके लिए जिन्दा रहने और आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं है।"[70]

इस खण्ड में राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करने के लिए कवि मानो मजबूर हो गया है। उसे लगता है कि यदि उसने ऐसा नहीं किया तो जनता के साथ नाइन्साफी होगी। 'गरीबी हटाओ' शीर्षक कविता में ऐसे ही मनोभाव व्यक्त हुए हैं–

> "गरीबी हटाओ सुनते ही
> उन्होंने बड़े–बड़े नक्शे बनाए
> आँकड़े इकट्ठे किए

और उन्हें रटने लगे
नक्शों की वर्दी पहन
जब वे एक कतार में खड़े हुए
और राष्ट्रीय धुन बजने लगी
तब उन्होंने कवायद शुरू की
और एक ही जगह पर पैर पटकने लगे।"[71]

श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार का नारा था–'गरीबी हटाओ' लेकिन जनता देख रही थी कि गरीबी सिर्फ आँकड़ों और नक्शों में ही हट रही थी। गरीबी हटाओ के नाम पर जनता को कितना धोखा दिया गया, यह कविता उसका जीता-जागता प्रमाण है। गरीबी हटाओ के नाम पर नेता लोग पंचवर्षीय योजनाओं के पेड़ों पर चढ़ते-उतरते रहे। धीरे-धीरे सारी व्यवस्था ही बिगड़ गयी और ये राजनीतिक गोबरैले बड़े आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ते गए–

"गोबरैले–
काली चमकदार पीठ लिए
गंदगी से अपनी-अपनी दुनिया रचते
ढकेलते आगे बढ़ रहे हैं
कितने आत्मविश्वास के साथ।"[72]

सर्वेश्वर के इस काव्य-खण्ड में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदना को भी देखा जा सकता है। भूख, गरीबी, अन्याय, अत्याचार और युद्ध से जूझते 'वियतनाम' और 'कम्बोडिया' के लिए भी कवि के मन में गहरी सहानुभूति है। ऐसे में सर्वेश्वर की मानवीय संवेदना सीमित न रहकर सार्वभौमिक हो गयी है।

इस काव्य संग्रह में कवि का सामाजिक दायित्व अधिक बढ़ गया है। काव्य शिल्प की दृष्टि से यह काव्य संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भाषा-शैली में अपेक्षाकृत नयापन है। इसके उपमान, बिम्ब, प्रतीक एवं भाषा एक कसाव और चुस्ती लिए हुए हैं। उपमानों में घोड़े-सा मुँह लटकाए, ठंडी खुर्पी-सी जिन्दगी, सारा देश एक ठंडे भाड़-सा आदि प्रमुख हैं। शब्दों का संदूक, हर चेहरा मोम का, आदमी गुप्ती है आदि रूपक के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। बादल बरसने के लिए

घिघिया रहे हैं, शाम थके मुसाफिर सी बस अड्डे पर उतरती है आदि मानवीकरण के श्रेष्ठ उदाहरण कहे जा सकते हैं। प्रतीकों में 'गोबरैले' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बिम्ब विधान की दृष्टि से भी यह काव्य संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग से लोक सम्पृक्ति का भाव बढ़ा है। इस काव्य संग्रह के संदर्भ में यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है कि इस संग्रह में व्यक्तिगत अनुभूतियों से संबंधित कविताएँ अन्य पूर्ववर्ती संग्रहों की अपेक्षा नहीं के बराबर हैं। कुल मिलाकर यह काव्य संग्रह कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से लोकजीवन के अधिक निकट है।

2.6. जंगल का दर्द

सर्वेश्वर जी का छठा काव्य-संग्रह 'जंगल का दर्द' है जो सन् 1976 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल अट्ठावन कविताएँ संग्रहित हैं। इस संग्रह में भी दो उपखण्ड हैं- प्रथम खण्ड की तीस कविताएं श्री लता के लिए और द्वितीय खण्ड की 28 कविताएं कवि अपने रूसी कवि मित्र अलेक्सांद्र सेंक्याविच को समर्पित करता है। इसमें से अधिकतर कविताएँ उस समय लिखी गयी हैं जब देश आपातकाल के दौर से गुजर रहा था। इन कविताओं में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का कुशल अंकन किया गया है। इस संग्रह में कवि की वैचारिक बेचैनी अनेक स्तरों पर देखने को मिलती है। गरीबी, भुखमरी और शोषण की स्थितियों ने कवि को बेचैन कर दिया है। कवि की यह वैचारिक बेचैनी और इससे विकसित संवेदना ही इस काव्य-संग्रह की रचना का आधार है। कवि अव्यवस्था, अराजकता, सामाजिक विकृति और विश्रृंखलता को समाप्त करके एक स्वस्थ जीवन मूल्य स्थापित करना चाहता है। वास्तव में इस संग्रह की कविताओं में सामाजिक परिवर्तन का खुला आह्वान है। 'भेड़ियाः एक' 'भेड़ियाः दो', 'भेड़ियाः तीन', 'कुत्ताः एक', 'कुत्ताः दो', 'कुत्ताः तीन', इस संग्रह की चर्चित कविताएँ हैं। यहाँ 'भेड़िया' सत्ता पर आसीन पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक है और 'तुम' के माध्यम से कवि ने आम जनता को संबोधित किया है। 'कुत्ता' यहां उस बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक है जो पूंजीपतियों के टुकड़ों पर पलता है।

यह काव्य-संग्रह उस जंगल की अभिव्यक्ति है जिसमें हम और आप रहते हैं, जिसमें सत्य, न्याय, प्रेम सब कुछ पैसों के तराजू पर तौला जाता है। जिसकी नैतिकता जंगल की नैतिकता है और जिसकी प्रधान वृत्ति है- 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' यहाँ हर नेता, अधिकारी और पूँजीपति अपने अधीनस्थों के अधिकार हड़पने को लालायित है और समाज का निरीह और असमर्थ वर्ग चुपचाप इस स्थिति को ढोते रहने को विवश है। ऐसी विवशता की अभिव्यक्ति 'जंगल का दर्द' शीर्षक कविता में बड़े मार्मिक ढंग से हुई है-

"ताकतवर ने सब खा लिया
कमजोर ने उच्छिष्ट से
संतोष कर, दर्द से मुँह छिपा लिया।"[73]

इस पूँजीवादी प्रजातंत्र में शासक वर्ग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए सारे देश को काले तेंदुए में बदल रहा है-

"एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है।"[74]

"पूँजीवादी-सामन्तवादी प्रजातंत्र में सामान्यजन का राजनीतिक शोषण होता है। चालाक नेता और उसके दल का उद्देश्य किसी न किसी प्रकार सत्ता पर अधिकार करना होता है। सत्ता हथियाने के इस खेल में न कोई मूल्य होता है, न आदर्श। मूल्य और आदर्श सिर्फ जनमानस में भ्रम पैदा कर सामान्य जनता को अपने-अपने दलों की ओर खींचने की कार्यवाही के साधन बन जाते हैं।"[75] इस स्थिति को देखकर कवि कहता है-

"भेड़िए फिर आएँगे
अचानक
तुममें से ही कोई एक दिन
भेड़िया बन जाएगा
उसका वंश बढ़ने लगेगा।"[76]

ऐसे में कवि इन भेड़ियों से बचने का रास्ता सुझाते हुए जनता को नई दृष्टि और नये विचारों की प्रेरणा देते हुए कहता है–

"भेड़िया मशाल नहीं जला सकता
अब तुम मशाल उठा
भेड़िए के करीब जाओ
भेड़िया भागेगा।
करोड़ों हाथों में मशाल लेकर
एक-एक झाड़ी की ओर बढ़ो
सब भेड़िए भागेंगे
फिर उन्हें जंगल से बाहर निकाल
बर्फ में छोड़ दो
भूखे भेड़िए आपस में गुर्राएंगे
एक दूसरे को चीथ खाएँगे।"[77]

'कुत्ताः एक', 'कुत्ताः दो', और 'कुत्ताः तीन', शीर्षक कविताओं में देश के शिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग पर क्रोध मिश्रित व्यंग्य किया गया है। कवि यह कहना चाहता है कि आज का शिक्षित वर्ग टुकड़खोर कुत्ते की तरह हो गया है और उसका चिन्तन पूँजीवर्ग की आकाक्षांओं और आवश्यकताओं से नियंत्रित हो गया है। अगर वह शोषक वर्ग की इस जकड़ या पट्टे से मुक्त हो जाए तो वह सामाजिक परिवर्तन के लिए होने वाले किसी भी संघर्ष में अपनी भागीदारी निभा सकता है–

"कुत्ते का पट्टा खोल
जंगल में छोड़ दो
वह भेड़िया बन जाएगा।
उसके साथ
उसकी जमात जोड़ दो
वह शेर से लड़ जाएगा।
वह पट्टा है
जिसके कारण
कुत्ता निखट्टा है।"[78]

यद्यपि इस संग्रह का उद्देश्य मानव को अंदर और बाहर से निर्भीक बनाना है फिर भी कुछ प्रेमपरक कविताएँ इस संग्रह में विद्यमान हैं। 'दरवाजे बंद हैं', 'तुम्हारे हाथों में', 'नीली चिड़ियाँ', 'कितना अच्छा होता', 'सुर्ख हथेलियाँ', 'देह का संगीत', 'अलग होने का ख्याल', 'रिश्ते की खोज', और 'तुम्हारी मुस्कान' आदि इसी श्रेणी की कविताएँ हैं। इन कविताओं में प्रेम का चित्रण अत्यंत सांकेतिक और मनोवैज्ञानिक रूप से हुआ है-

"तुम्हारी मुस्कान
कोहरे से छनकर नहीं
सीधी धूप-सी आती है
जैसे सुबह-सुबह चिड़ियों का गान।"[79]

'अलग होने का ख्याल' कविता में उस स्थान और स्थिति का अत्यन्त मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया गया है जिसमें कवि की प्रियतमा उससे विदा ले रही थी-

"तुमने अपने सुन्दर चेहरे को
लपेट रखा था
मेरे बाल उड़ रहे थे।
बहुत छोटा अंतर-
यही कि लौटने पर
तुम्हें अपने घर में रोशनी मिलेगी
मुझे अँधेरा।"[80]

इस संगह की कुछ कविताएँ कवि की दार्शनिक मान्यताओं को भी आधुनिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्ति देती हैं। 'मुक्ति की आकांक्षा', 'खरोंच', और 'चुपचाप' शीर्षक कविताएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

बिम्ब और प्रतीकों की दृष्टि से भी यह संग्रह महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"कितनी ठंड है
कपोलों पर ढुलके आँसू
जम गए।

फिर भी स्मृतियाँ
आग की तरह धधक रही हैं
जैसे बर्फ में मशाल लेकर
कोई जा रहा हो।"[81]

उपर्युक्त कविता में आज की विषम परिस्थितियों से निष्क्रिय बन गए जीवन का सजीव चित्रण है। आज के जीवन में यदि चेतना है तो मात्र स्मृतियों की। इसी तरह रेंगता साँप, भेड़िया, इन्तजार, कुत्ताः दो, संतवाणी, निश्चय की घड़ी, काला तेंदुआ, मुक्ति की आकांक्षा, नीली चिड़िया, सुर्ख हथेलियाँ, सिगरेट पीती हुई औरत, अकेलापन, टीन पर ओले आदि शीर्षक कविताएँ भी बिम्बांकन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रतीकों की दृष्टि से यह काव्य-संग्रह पिछले समस्त संग्रहों से आगे है। यहां जंगल स्वयं समाज का और दर्द सामाजिक यातना का प्रतीक है। संग्रह की समस्त कविताएँ इस सामाजिक यातना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। इस संग्रह की कविताओं में भाषा के साथ एक नए रिश्ते की पहचान दृष्टिगत होती है। इसमें भाषा छिपने की आड़ नहीं देती बल्कि परतों को छीलकर नंगा कर देती है। "अभिव्यक्ति की सजावटी झालरें और झंडियाँ नोच फेंकने के बाद कवि ने भाषा को तराश कर शब्दों को उस अल्पमत तक पहुँचा दिया है जहाँ एक-एक शब्द अनिवार्य है, एक-एक ध्वनि आवश्यक है।"[82]

कुल मिलाकर 'जंगल का दर्द' काव्य-संग्रह कवि के निजी और सामाजिक दोनों ही प्रकार के संबंधों में एक नए भाव संसार की तलाश और नई भाषिक रचना के विन्यास को रेखांकित करता है।

2.7. खूँटियों पर टँगे लोग

सर्वेश्वर का सातवां काव्य संग्रह 'खूँटियों पर टँगे लोग' है। यह संग्रह सन् 1982 में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि की 1976 से 1981 तक की लिखी कविताएँ संग्रहित हैं। यह कृति तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में चौंतीस, द्वितीय भाग में अट्ठाईस और तृतीय भाग में मात्र दो कविताएँ हैं। इस संग्रह को कवि ने अपने चित्रकार मित्र ज. स्वामीनाथन को समर्पित किया है। संग्रह की कविताएँ

आकार की दृष्टि से छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की हैं। इसमें कुछ लघु कविताएँ भी समाहित हैं। संभवतः यह कवि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है क्योंकि इसमें युगीन समस्याओं के साथ-साथ कवि की बढ़ी हुई लोक सम्पृक्ति को भी बल मिला है। कोट, स्वेटर, मोजा, पोस्टर, दस्ताने, मछली, चश्मा, सपेरा जैसे माध्यमों से कवि ने देश के आम आदमी के संघर्ष को स्वर दिया है। संवेदनाओं की गहनता की दृष्टि से भी यह संग्रह महत्वपूर्ण है। संग्रह के प्रथम खण्ड की कविताएँ सामाजिक प्रतिबद्धता एवं जनचेतना से संबंधित हैं। सर्वेश्वर समय की इस माँग को स्वीकार करते हुए कहते हैं-"जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाये रहने भर से काम नहीं चलेगा। बल्कि जो असत्य है उसका विरोध करना पड़ेगा और मुँह खोलकर कहना पड़ेगा कि वह गलत है।"[83] द्वितीय खण्ड की रचनाएँ प्रेम व प्रकृतिपरक हैं और तीसरे खण्ड की रचनाएँ सामाजिक प्रतिबद्धता से जुड़ी हैं। इस संग्रह की कविताओं को पढ़कर कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति के विविध स्तरों का पता चलता है। खूँटियों पर टँगे कपड़े की तरह आज का विवश और निरर्थक आदमी हर प्रकार की सक्रियता से अलग है। अपनी इस स्थिति को वह अपना नहीं दूसरे का दोष समझता है। इसी सोंच से वह अपनी असफलता को बड़ी सरलता से दूसरे के मत्थे मढ़कर स्वयं को निर्दोष साबित करना चाहता है-

"प्रश्न जितने बढ़ रहे हैं
घट रहे उतने जवाब
होश में भी एक पूरा देश यह बेहोश है
खूँटियों पर ही टँगा
रह जाएगा क्या आदमी?
सोचता उसका नहीं यह खूँटियों का दोष है।"[84]

'खूँटियों पर टँगे लोग' काव्य-संग्रह पर जब सर्वेश्वर को मरणोपरान्त साहित्य-अकादमी पुरस्कार मिला तब कुलदीप कुमार ने अंग्रेजी में इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था-"खूँटियों पर टँगे लोग' सर्वेश्वर की अंतिम काव्य-कृति है, जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है और जिसमें सर्वेश्वर ने एक बार फिर उन छोटी-छोटी बातों को केन्द्र में रखा है जोकि हमारे दैनिक अस्तित्व

का स्थायी हिस्सा हैं। इस संग्रह की कविताएँ जूतों, जुराबों, स्वेटरों, खूँटियों आदि के विषय में हैं, जिनके माध्यम से हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी के रहस्यों की अन्वेषणा की गयी है। सर्वेश्वर ने इन छोटी वस्तुओं को मानवीय चेहरा प्रदान किया है और इन्हें ऐसे संकेतों में रूपान्तरित किया है जिनसे समसामयिक जीवन के अर्थ खुलते हैं।"[85] इस संग्रह में सर्वेश्वर की तलाश की सार्थकता इसी मानवीय बिन्दु पर है कि–

"खूँटी पर कोट की तरह
एक अरसे से टँगा हूँ
कहाँ चला गया
मुझे पहन कर सार्थक करने वाला?"[86]

सर्वेश्वर ने अपनी कविता में सौन्दर्य की नयी परिभाषा गढ़ी है। कवि मुक्तिबोध भी इससे सहमति जताते हुए कहते हैं–"ये सौन्दर्यवादी लोग यह भूल गए कि बंजर काले स्याह पहाड़ में भी एक अजीब भव्यता होती है, गली के अँधेरे में उगे छोटे से जंगली पौधे में भी एक विचित्र संकेत होता है। विशाल व्यापक मानव जीवन में पाए जाने वाले भयंकर संघर्ष के रौद्र रूप तो उनकी सौन्दर्याभिरुचि के फ्रेम के बाहर थे।"[87]

सर्वेश्वर का सौन्दर्यबोध सामूहिकता के उदात्त और व्यापक हृदय की स्वीकृति से जन्म लेता है–

"अँधेरे में संघर्षरत लहरें ही
नहीं चमकती
निराशा से लड़ता आदमी भी
रोशनी देता है।"[88]

आदमी और जूते का रिश्ता तो धूमिल ने भी पहचाना था लेकिन सर्वेश्वर की दृष्टि भोक्ता की न होकर एक चिन्तन प्रधान कवि की है। उदाहरणार्थ 'जूता चार' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं–

"तारकोल और बजरी से सना
सड़क पर पड़ा है

एक ऐंठा, दुमड़ा, बेडौल
जूता।
मैं उन पैरों के बारे में
सोचता हूँ
जिनकी इसने रक्षा की है
और
श्रद्धा से नत हो जाता हूँ।"[89]

इन पक्तियों में कवि जूते के माध्यम से समाज के सबसे निचले पायदान के व्यक्ति को पहचानता है और श्रद्धानत् हो जाता है। साधारण जन की असहायता उन्हें गहरे तक छू गयी थी। उन्हें यह अहसास था कि धर्म या राजनीति के पास इनको देने को कुछ नहीं है। धर्म साधारण जन को केवल थोड़ी देर के लिए शान्ति दे सकता है और राजनीति केवल नारों के सिवाय कुछ नहीं देती। ये बात आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। उनकी 'पोस्टमार्टम की रिपोर्ट' कविता में कितना तीखा व्यंग्य है–

"गोली खाकर
एक के मुँह से निकला
राम।
दूसरे के मुँह से निकला–
'माओ'
लेकिन तीसरे के मुँह से निकला–
'आलू'।
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे।"[90]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने रोज–रोज बदलते सामाजिक यथार्थ अर्थात् वर्तमान शासकों की शोषक संस्कृति, उसके दबाव व उत्पीड़न के साथ–साथ जनता के

व्यापक प्रतिरोध और व्यवस्था परिवर्तन में उसकी सक्रिय हिस्सेदारी पर नजर रखी। शायद इसी कारण वे लिखते हैं–

"लेकिन याद रखो–
अन्याय और यातना की सीमा
जब पार हो जाती है
तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती है।"[91]

एक ओर भाषा की साधारणता और दूसरी ओर भाव की असाधारणता, यह सर्वेश्वर के काव्य की विलक्षणता है। शब्दों से भावानुकूल व विषयानुकूल अर्थ निकाल लेना सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की खासियत है।

इस संग्रह में सामाजिक चेतना के अतिरिक्त प्रेम और प्रकृति से संबंधित रचनाएँ भी हैं। 'पिछली शाम', 'हम तुम', 'चाँदनी की पाँच परतें' और 'एक छोटी सी मुलाकात' आदि कविताओं में प्रकृति और प्रेम को देखा जा सकता है। संग्रह की अधिकांश कविताओं में कवि के गहरे अचेतन मन के उभरे हुए स्वर मिलते हैं–

"यह रेत
मैंने चूर-चूर होकर
तुम्हारी राह में बिछाई है
तुम जितनी दूर चाहना
इस पर चली जाना
और देखना
एक भी कण तुम्हारे
पैरों से लिपटा नहीं रहेगा
स्मृति के लिए भी नहीं।"[92]

नए कवियों की प्रेम-संबंधी कविताओं में समर्पण की ऐसी गहरी भावना अति दुर्लभ है। सहज प्रेम, सहज समर्पण, सहज अभिव्यक्ति, बोलचाल की शैली और भाषा इस कविता का वैशिष्ट्य है।

सर्वेश्वर की प्रकृति से संबंधित कविताओं में ग्राम्य प्रकृति और परिवेश का चित्रांकन बहुतायत मात्रा में हुआ है। नगरीय परिवेश में रहते हुए भी जीवन के आरम्भिक काल की प्रकृति संबंधी स्मृतियाँ न केवल उनके अचेतन में सर्वदा स्थिर रहती हैं बल्कि विभिन्न रूपों में उनकी कविताओं में प्रकट होकर जीवन का बहुआयामी अर्थ खोलती हैं। इनमें सौन्दर्य भी है, यथार्थ भी, कोमलता भी है और कठोरता भी, आकर्षण भी है और विकर्षण भी, आशा भी है और निराशा भी, भावुकता भी ही और यथार्थ भी। पर सभी रूपों में प्रकृति के प्रति उनकी आत्मीयता में लेशमात्र भी कमी नहीं आने पायी है। एक उदाहरण देखिए-

"यह कैसा अनिंद्य वन है !
एक सुनहरा उजास
थिरक रहा है
हर वृक्ष पर,
हर पत्ती आहिस्ता-आहिस्ता गुनगुना रही है।
किरनें एक दूसरे से गुंथकर
नाच रही हैं
सारा जंगल झूम रहा है मेरे भीतर।"[93]

इस संग्रह की भाषा में काव्य भाषा और लोकभाषा का ऐसा अद्‌भुत मेल है कि मामूली प्रसंग, वाक्य और संवाद भी संवेदनशील हो उठते हैं।

सर्वेश्वर का स्वर उनके इस काव्य-संग्रह में भी आशावादी ही रहा है। 'अब मैं सूरज को नहीं डूबने दूँगा' शीर्षक कविता इस बात का प्रमाण है-

"तुम उदास मत होओ
अब मैं किसी भी सूरज को
नहीं डूबने दूँगा।
जूते की कील नहीं होगी
शामें
जो तुम्हें चुभें।
मैंने यात्रा बड़ी कर ली है

कन्धे चौड़े कर लिए हैं।"[94]

साठोत्तरी कविता में ऐसा आशावादी स्वर मुश्किल से ही मिलता है। वस्तुतः सर्वेश्वर की काव्य संवेदना मानवीय धरातल से अपना संस्पर्श बनाए रखती है, जिससे वस्तु, हृदय तथा परिस्थितियाँ घनीभूत मानवीय संवेदना से युक्त हो जाती हैं। यह काव्य-संवेदना सामान्य जनजीवन से जुड़ी होने के कारण साधारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा रखती है, इसीलिए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना काव्य भाषा को लोक भाषा में परिवर्तित करते दिखाई देते हैं। वास्तव में सर्वेश्वर की भाषा दृष्टि उनकी जीवन दृष्टि से जुड़ी हुई है।

2.8 कोई मेरे साथ चले

'कोई मेरे साथ चले' सर्वेश्वर की आठवीं और अंतिम काव्य-कृति है, जो उनके मरणोपरांत सन् 1985 में प्रकाशित हुई थी। इसमें उनकी सन् 1980 से 1983 के मध्य लिखी गयी कविताएँ संग्रहित हैं। इस संग्रह में कुल उनसठ कविताएँ शामिल हैं। अन्त की दो कविताएँ-'ठाकुर का भूत' और 'भारत भाग्य विधाता' नाटकों के लिए लिखे गए गीत हैं। इस संकलन में कवि की छह गजलों का भी समावेश किया गया है। दुनिया को बेहतर बनाने की चिन्ता के साथ दुखी और शोषित मानव जाति के प्रति उनकी सहानुभूति की विवृत्ति इसमें मौजूद है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ दी गयी हैं-

"यह जानते हुए भी
निरंतर कुछ खोते जाना
और अकेले होते जाना है।
मैं यहाँ तक आ गया हूँ
जहाँ दरख्तों की लम्बी शाखाएँ
मुझे घेरे हुए हैं।"[95]

सर्वेश्वर ने प्रेम और अवसाद को भी यथार्थ और मूर्त रूप में स्वीकार किया है। बिना किसी आवरण के वे इसे स्वीकार करते हैं। आज व्यक्ति समूह में रहकर भी अकेलेपन से जूझ रहा है।

इस काव्य–संग्रह में 'पाकिस्तानी दोस्त से' शीर्षक कविता में देश के नेताओं पर व्यंग्य किया गया है जो धर्म के नाम पर लोगों को युद्ध में धकेल रहे हैं। इसमें 'घास' सन्देहों की नफरत की घास है और 'साँप' अर्थात् सत्ता के लोग इस घास में सुरक्षित बैठे हैं–

"आओ हम उसे जल्दी साफ करें
घास में इन साँपों को
छिपने में आसानी रहती है।"[96]

'वे हमारे मसीहा नहीं हो सकते' शीर्षक कविता में कवि राजनीतिज्ञों पर करारा व्यंग्य करता है। मार्क्सवादी विचारधारा को भी नकारते हुए कवि कह उठता है–

"जो विचारधारा
आदमी की लाशें खाए हुए
कौओं के द्वारा फैलाई जाती है
वह इंसानियत को आगे नहीं ले जाती
सड़ाती है, दफनाती है।"[97]

कवि यह स्वीकार करता है कि सामाजिक परिवर्तन किसी क्रान्ति या विचारधारा से नहीं होता बल्कि नये विचारों के आगाज से होता है और हमें इसके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए–

"विचारों को आने दो
कोई भी बूँद यह सोचकर
नहीं गिरती कि उसे
ठीक उस जगह गिरना है
न कोई पत्ती यह सोचकर हिलती है
न उसे ठीक ऐसा ही हिलना है
न बादल
न धूप
कुछ भी सोचकर निकलते हैं।
यही मुक्ति है ,मोर जानता है

और अपने साथ
पूरे जंगल को मुक्त करता है,
नाचता है।"[98]

मनुष्य प्रकृति का अमूल्य वरदान है। ईश्वर ने उसे अनन्त सामर्थ्य संपन्न बनाया है। समाज परिवर्तन के लिए यदि एक भी व्यक्ति में चेतना आ जाती है तो रंगों की बरसात शुरू होती है और एक परिवर्तन की नदी मानो बह निकलती है। इंसान की नियति की अनन्त संभावनाएँ जगमगा उठती हैं–

"किसी एक की भी चेतना में
जब रंगों की बरसात शुरू होती है
तो एक दरिया जैसा बह निकलता है
इंसान की नियति की
अनन्त संभावनाएँ जगमगा उठती हैं।"[99]

लेकिन कवि दुनिया के स्वभाव से वाकिफ है। वह इस खुशफहमी में नहीं जीता कि सब कुछ उसकी सोच के अनुकूल होगा। उसकी यथार्थ की दृष्टि बड़ी पैनी है जिसमें वह देखता है कि अपने हक की लड़ाई लड़ने वालों के प्रति यह दुनिया क्या करती है। वह यह भी जानता है कि इसका पूरा असर उसकी रचनात्मकता पर पड़ता है–

"इस बारिश में
मेरी कविता को लकवा-सा मार गया है
क्योंकि अभी-अभी
क्रान्तिकारियों को
झूठी मुठभेड़ में
गोली मारे जाने की खबर
कोई दे गया है।"[100]

आपातकाल में भी और वैसे भी हमारे देश में शोषक वर्ग अपना खूनी पंजा और मजबूत करने के लिए सामाजिक परिवर्तन चाहने वाले क्रान्तिकारियों को झूठी मुठभेड़ में गोली से भुनवा देते हैं। कवि ने अभी क्रान्तिकारियों के मारे जाने की

खबर सुनी है जिसे सुनकर उसे लगता है कि पहाड़ रो रहा है, पेड़ थरथरा रहे हैं, नदियाँ छटपटा रही हैं, धरती फफोलों से भर गयी है और कवि की कविता को लकवा-सा मार गया है। ये क्रान्तिकारी कौन थे और क्या चाहते थे ? इसे स्पष्ट करते हुए कवि कहता है कि ये वही लोग थे जो पहाड़ी वनों और जंगलों के काटे जाने का विरोध करते थे, नदियों में मछली मारने का हक चाहते थे और धरती पर उगाई गई फसल को काटना चाहते थे। इसीलिए उन्हें मार दिया गया। इस खबर को सुनकर वह कहता है-

"मेरी कविता
दुख और गुस्से से भरी है
बारिश का सौन्दर्य
नहीं देख पा रही।"[101]

कवि का विश्वास है कि यदि एक क्रान्तिकारियों मरता है तो अनेक क्रान्तिकारी पैदा हो जाते हैं। मुर्दा कौमें जिन्दा हो जाती हैं। उसकी धमनियों का रक्त रुकते ही करोड़ों धमनियों में रुका हुआ रक्त प्रवाहित होने लगता है। क्रान्तिकारी की मौत से खेत झूमते और विस्तार पाते हैं। वस्तुतः समाज में सबसे ज्यादा शोषित-पीड़ित वर्ग को ही परवर्तन की सबसे ज्यादा ज्रूरत होती है। वर्तमान समय में मेहनतकश जनता ही समाज का सबसे अधिक शोषित-उत्पीड़ित वर्ग है। अतः वही क्रान्ति द्वारा समाज को बदलने के लिए सबसे अथिक उतावली रहती है। कवि की सहानुभूति ऐसे ही क्रान्तिकारियों के प्रति है-

"जब क्रान्तिकारी मरता है
तो न जाने कितने मुर्दे जिन्दा हो जाते हैं,
मुर्दा कौमें उठ खड़ी होती हैं
उसकी धमनियों का रक्त रुकते ही
करोड़ों धमनियों में रुका हुआ रक्त
प्रवाहित होने लगता है।"[102]

पर आज समाज में एक ऐसे वर्ग का भी उदय हो गया है जो घर के एक कमरे में आग लगने पर दूसरे कमरे में निश्चिन्तता के साथ सो सकता है। एक

कमरे में लाश पड़ी हो तो दूसरे में जा सकता है। एक कमरे में लाशें सड़ रही हों तो दूसरे कमरे में बैठकर शांत भाव से प्रार्थना कर सकता है। ऐसे लोगों से कवि न चाहते हुए भी कहता है–

"आखिर बात
बिल्कुल साफ
किसी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार
चाहे लोकतंत्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।"[103]

'ठाकुर का भूत' नामक कविता में कवि बता रहा है कि आजादी के तीस–पैंतीस वर्ष बाद भी लोगों में सामन्तवादी सत्ता के संस्कार मौजूद हैं। जनता उनके सामने नतमस्तक होती है और चुनावों में उन्हें ही संसद भेजती है–

"फिर भी बनकर भूत रहा था
वह धरती पर डोल
खाई, पर्वत, बीहड़, बंजर
फिर से रहा टटोल।"[104]

इस संकलन में केवल सामाजिक चेतना की ही कविताएँ नहीं हैं बल्कि इस संग्रह में भी पूर्व की भाँति प्रेम और प्रकृति से संबंधित कविताएँ मौजूद हैं। खिड़की से हवाएँ जाती हैं, हवा पर सवार नन्हीं बूँदे आती हैं और इन बूँदों में प्रिया का स्पर्श लिपटा हुआ है। इस स्पर्श में प्रिया की महकती स्मृतियाँ इतना कुछ दे जाती हैं कि बेमौसम बरसात हो जाती है। कवि कहता है कि यदि मैं उछलकर इस फूलों भरी डाल को नहीं छू पाता तो वह ही क्यों नहीं उछलकर मेरे पास आ जाती? क्योंकि–

"आखिर उसे पाने के लिए
जितना प्रयास मेरे लिए जरूरी है

मुझ तक आने के लिए
उतना ही उसका भी तो हो।
कुछ मैं उछलूँ
कुछ वह झुके।"[105]

इसी प्रकार के कोमल और सूक्ष्म भाव 'केली का एक खत', 'दो क्षण का वह साथ', 'मेरा प्यार', 'बारिश', 'झरना' आदि कविताओं में भी दिखाई देते हैं।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चाहें प्रसंग कोई भी हो, सर्वेश्वर की बेबाकी और सहजता, उनकी तल्खी, व्यंग्य और सरलता बड़ी ही मर्मस्पर्शी है। प्रकृति भी कवि के इन भावों में अपना पूरा योगदान देती है। सर्वेश्वर के काव्य में लोकजीवन से सम्पृक्ति के बोधक ऐसे अनगिनत शब्द हैं जो उनकी काव्यभाषा के सृजन में सहायक हैं और कवि की जीवनदृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय देते हैं। सर्वेश्वर जैसे स्वयं निर्भीक और स्पष्टवादी थे वैसे ही उनकी काव्यभाषा भी सीधी, बेलाग और स्पष्टवादी है। कवि की इस भाषा के विषय में डॉ.परमानन्द का विचार है–"यह कविता का सरलीकरण नहीं है। कवि और कविता दोनों के लिए कठिन चुनौती है। कविता के संप्रेषण की समस्या भाषा के कविता बनने की पूरी प्रक्रिया से संबंधित है।"[106] कवि ने अपने नवीन मौलिक बिंबों के द्वारा अपनी भाषा को धारदार बनाया है जो अभिव्यक्ति में पूर्णता सक्षम है।

अंततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर के इस काव्य संग्रह में उनकी दिशा और दृष्टि साफ झलकती है। स्वतंत्र भारत के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य की पड़ताल यह संग्रह सूक्ष्मता से करता है। इसमें कवि की वैचारिकता मुखरित हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वेश्वर की 'कोई मेरे साथ चले' काव्य-संग्रह की कविताओं में जीवन का ऐसा तीव्र राग मिलता है जो जड़भूत सौन्दर्याभिरुचियों को तोड़कर संवेदना के क्षितिज का इस प्रकार विस्तार करता है कि उसकी व्याख्या के लिए आलोचना के पारम्परिक प्रतिमान बौने साबित होते से दिखाई देते हैं।

2.9 अन्य काव्य-साहित्य

यद्यपि सर्वेश्वर का अधिकतर काव्य साहित्य उपर्युक्त काव्य रचनाओं में सम्मिलित है फिर भी उनकी ऐसी अनेक काव्य रचनाएँ हैं जो किन्हीं कारणों से

असंकलित ही रह गयीं हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली के सम्पादक वीरेन्द्र जैन ने उनकी ऐसी कविताओं को ग्रन्थावली के भाग पाँच में प्रकाशित किया है। निश्चय ही संपादक इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। इन कविताओं मे भी कवि ने अपने विविध मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उदाहरण के लिए स्मृति, रंगभरिया सूरज, हथेली पर चुंबन और एक विश्वास शीर्षक कविताएँ जहाँ प्रकृति पर आधारित हैं वहीं हम तुम, तुम्हारे साथ कविता की खोज, देहयात्रा, सरोवर और तप्त जल शीषर्क कविताओं में सहज मानवीय प्रेम को अभिव्यक्ति दी गयी है। व्यंग्य का स्वर सर्वेश्वर की कविता की विशेष पहचान है जो यहाँ भी दिखाई देता है। यथा– लोकतंत्र का गाना, दुख अगर सूर्य होता, युद्ध, चुनावः यथा स्थिति आदि कविताओं में व्यंग्य को आधार बनाया गया है। अजनबीपन और संत्रास की भावना नई कविता में प्रमुखता से व्यक्त हुई है। सर्वेश्वर की कविताओं ‘इस लोहे के नगर में’, ‘विद्रोह शीशे के जार में’, ‘वह’ और ‘प्यार!’ आदि कविताओं में भी अजनबीपन की ये भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

कवि सर्वेश्वर ने अनेक बाल कविताओं की भी रचना की है। जिस समय उन्होंने काव्य सृजन आरंभ किया उस समय हिन्दी साहित्य में सचमुच बाल कविताओं का अभाव था। उनका विचार है कि “चलना सीखते ही जैसे बच्चे गेंद से खेलना चाहते हैं वैसे ही बोलना सीखते ही शब्दों से।”[107] उन्होंने खुद स्वीकार किया है कि जब उनके बच्चे खेलने और दौड़ने लायक हुए उस समय हिन्दी में ऐसी कविताओं का अभाव था। इस अभाव की पूर्ति में ही उन्होंने ऐसी अनेक कविताएँ रचीं जिन्हें आज भी बच्चे बड़े मनोयोग से पढ़ते और गुनगुनाते हैं। सर्वेश्वर ने अपनी दोनों बच्चियों शुभा और विभा के लिए भी ऐसी अनेक कविताएँ लिखीं। ‘बतूता का जूता’ शीर्षक के अंतर्गत बतूता का जूता, नाच, पकौड़ी, चिड़िया, बंदूक, शेखचिल्ली, कुत्ता, खरगोश, हाथी, दिल्ली–दर्शन, चक्कर, घोड़ा, ई बुढ़ऊ, बा–बा आदि तथा ‘महँगू की टाई’ शीर्षक के अंतर्गत महँगू की टाई, टोपीलाल, अक्की–बक्की, नेता और गदहा, लाला का ताला, काजू और मूँगफली, कवि का परिचय आदि और ‘बिल्ली के बच्चे’ तथा ‘नन्हा ध्रुवतारा’ शीर्षक के अंतर्गत घोड़ा और बच्चे, पेड़, नए वर्ष पर, मोटा और लोटा, नानी का गुलकंद,

थोड़ी धरती पाऊँ, चालाक लोमड़ी, घोड़े का गीत, आग और सरदी, चोट, मेले में लल्ला, बूझ बुझक्कड़, एक प्रार्थना, चूहेदानी और टोपी आदि उनकी प्रसिद्ध बाल कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि ने बड़ी ही सूक्ष्मता से बालकों के कोमल मन को छूने का प्रयास किया है साथ ही इस बात का भी प्रयास किया है कि उन्हें कोई न कोई शिक्षा मिल सके। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

> "हवा से मेरा घोड़ा
> बात करता है,
> सभी को दौड़ने में,
> मात करता है।
> थका कोई मिला
> तो पीठ हाजिर की,
> सफर सबके लिए
> दिन रात करता है।
> न चाबुक इसको मारो
> आदमी हो कर,
> बड़ी यह जानवर की
> जात करता है।"[108]

प्रस्तुत कविता में कवि ने बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए बड़ी सूझ–बूझ से बालकों को जानवरों के प्रति होने वाले क्रूर व्यवहार से दूर रहने की शिक्षा दी है।

सर्वेश्वर ने रूसी, जर्मन और अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों और लेखकों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद भी किया है। इन अनुवादों में प्रसिद्ध रूसी कवयित्री 'अन्ना आख्मातोवा' की कविता का हिन्दी में 'शाम' शीर्षक से अनुवाद, जर्मनी के प्रसिद्ध उपन्यासकार व कवि 'गुंटर ग्रास' की कविता का 'मुड़वाँ कुर्सियाँ' शीर्षक से अनुवाद, यूनान के प्रसिद्ध कवि 'जार्ज सेफरिस' की कविता का 'पुनश्य' शीर्षक से अनुवाद, यूगोस्लाव कवि 'बास्को पोपा' की कविता का 'कहीं दूर हमारे भीतर' शीर्षक से अनुवाद, वियतनामी कवि 'तो ह्यू' की कविता

का ‘मेरी बात याद रखना’ शीर्षक से अनुवाद, जापानी कवयित्री ‘रूमिको कोरा’ की कविता का ‘बड़े हाथ’, ‘पेड़’ और ‘सागर की गर्जना’ शीर्षक से अनुवाद, चेक कवि ‘एन्तोनिन बार्तूसेक’ की कविता का ‘अकेलापन’ और ‘सीजर की मौत’ शीर्षक से अनुवाद, रूमानिया के कवि ‘स्तीफन पोपेस्कू’ की कविता का ‘देहरियाँ’ शीर्षक से अनुवाद, अल्जीरियाई कवि ‘मलैक हद्‌दाद’ की कविता का ‘सुनो मैं तुम्हें बुला रहा हूँ’ शीर्षक से अनुवाद, रूसी कवि ‘राबर्ट रोज्देस्तवेंस्की’ की कविताओं का ‘सोने की कोशिश करते हुए’, ‘जीवन के प्रति मेरा प्रेम’, ‘मेरा घर’, और ‘इतिहास’ शीर्षक से अनुवाद, क्यूबा के प्रसिद्ध जन कवि ‘एलिसेसो दिएगो’ की कविताओं का ‘गहराइयों का वैभव’, ‘बच्चा और उसका सोने का कमरा’, ‘चेहरा जो दिखाई नहीं देता’, और ‘कौन रात देखता है’, तथा ‘केवल यही’ शीर्षक से अनुवाद, क्यूबा के ही एक अन्य कवि ‘रोलैंदो इस्कार्दो’ की कविताओं का ‘चुनौती’, ‘मृत्यु’, ‘घंटों के साथ मुलाकात’, ‘बाहर निकलने पर’, ‘संतुलन का कमाल’ और ‘रतजगा’ शीर्षकों से अनुवाद, क्यूबा के एक अन्य कवि ‘सैमुअल फेइजो’ की कविताओं का ‘खाइयों का दौरा’, ‘ओषधि’, और ‘क्योंकि हम बहुत हैं’ शीर्षकों से अनुवाद, बेलकिस कूजा माले की कविताओं का ‘मैं तुम्हें भूली नहीं हूँ’, ‘रिबांड और मैं’, ‘एक अभागी औरत’ और ‘चत्रोपम लोग’ शीर्षकों से अनुवाद, लातिन अमेरिकी कवि ‘अर्नेस्तो चे ग्वेरा’ की कविताओं का ‘फिदेल के लिए एक गीत’, ‘ये तानाशाह’ और ‘टी के लिए’ शीर्षकों से अनुवाद, कज्जाक कवि ‘अबाई कुनानबाईव’ की कविताओं का ‘तुषारकाल’ शीर्षक से अनुवाद, रूसी कवि ‘व्लादीमीर मायकोवस्की’ की कविता का ‘बादलों की बाजीगरी’ शीर्षक से अनुवाद और कजाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि ‘ओल्जा उमरअली सुलेमानोव’ की कविता का ‘दुबले उकाव’ शीर्षक से अनुवाद किया गया है। इसके अतिरिक्त सर्वेश्वर ने ‘ह्विटमेन की दुनिया’, ‘शरद की वापसी’, ‘टूटी प्रतिमाओं का विलाप’ और ‘समाचार बुलेटिन’ शीर्षकों से कुछ अन्य कविताओं का भी अनुवाद किया है। इन कविताओं के मूल कवियों के बारे में अब तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

सर्वेश्वर ने आपातकाल के बाद एक संग्रह 'रक्तबीज' शीर्षक से संकलित, अनूदित और सम्पादित किया था जिसमें आपातकाल के विरोध और मौलिक अधिकारों की स्वतंत्रता के पक्ष में लिखी गई कई भाषाओं की कविताएँ संकलित हैं जिसमें तेलुगु भाषा के कवि 'शिवसागर' की 'माँ' शीर्षक कविता, बँगला भाषा के कवि 'ध्रुवसेन गुप्त' की 'अभियोग-राजद्रोह' शीर्षक कविता, मराठी भाषा के कवि 'वसंत आबाजी डहाके' की 'स्वगत' शीर्षक कविता, उड़िया भाषा के कवि 'अग्रगामी की 'संत्रास' शीर्षक कविता, तेलगु भाषा के कवि 'चरबंड राजु' की 'पुनर्जन्म' शीर्षक कविता, अंग्रेजी भाषा के कवि 'नवरोज मोदी' की 'किलवेनमणि' और उड़िया भाषा के कवि 'रवीन्द्रनाथ सिंह की 'शवयात्रा' शीर्षक कविताएँ प्रमुख हैं। इस संग्रह में उनकी स्वयं की कुछ कविताएँ भी शामिल हैं जिनमें आपातकाल और तात्कालिक राजनीतिक व्यवस्था पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी है।

सर्वेश्वर के समस्त काव्य-संग्रहों के अध्ययन के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि नई कविता के कवियों की सूची में सर्वेश्वर का विशिष्ट स्थान होना चाहिए। स्वयं और अपने व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में उनका दृष्टिकोण बहुत पारदर्शी है। सर्वेश्वर अपने चिन्तन में समाजवादी और अभिव्यक्ति में आक्रामक हैं। उनकी कविताएँ अनुभूति की प्रमाणिकता को मुखरित करती हैं। उनकी कविता की भाषा आम आदमी की भाषा है जिसके कारण उनका काव्य संप्रेषण की दृष्टि से बहुत सफल है। 'काठ की घंटियाँ' से कवि की जो काव्य-यात्रा शुरू हुई थी वह 'कोई मेरे साथ चले' तक आते-आते यह भली-भाँति स्पष्ट कर देती है कि इस यात्रा में कोई पड़ाव नहीं है।

(ख) कथा और इतर साहित्य

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मूलतः कवि हैं तथापि कथा साहित्य में उनके योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। विश्वविद्यालय जीवन में ही कहानियों पर उन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ था। सन् 1950 तक वे कहानियाँ ही लिखते रहे। उनकी पहली कहानी 'क्षितिज के पार' 1942 में शंभुनाथ सिंह द्वारा संपादित 'क्षत्रिय मित्र' में छपी थी। उपन्यास के क्षेत्र में सर्वेश्वर की पहचान का प्रमुख कारण उनके द्वारा लिखित तीन लघु उपन्यास-सूने चौखटे, सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का

मसीहा हैं। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से तीनों का विशिष्ट महत्व है। प्रथम उपन्यास 'सोया हुआ जल' सन् 1954 में लिखा गया जो एक मनोविश्लेषणवादी उपन्यास है। दूसरा उपन्यास 'पागल कुत्तों का मसीहा' सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर केन्द्रित है। यह उपन्यास सन् 1959 में लिखा गया। सर्वेश्वर का तीसरा और अन्तिम उपन्यास 'सूने चौखटे' सन् 1957 में पूर्ण हुआ। सन् 1974 में यही उपन्यास 'उड़े हुए रंग' नाम से भी प्रकाशित हुआ लेकिन सन् 1981 में इसे 'सूने चौखटे' नाम से प्रकाशित किया गया। यह उपन्यास औपन्यासिक विन्यास की दृष्टि से अत्यंत सफल माना गया।

2.10 उपन्यास

सर्वेश्वर के उपन्यासों पर चर्चा से पूर्व मैं यह बता देना समीचीन समझता हूँ कि यह वह परिवेश था जब साहित्य की उपन्यास विधा नव्य रोमांस के मुहावरे से रची जा रही थी। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' इसी परिवेश की उपज हैं। किशोर मानसिकता के और भी बहुत से रचनाकार जीवन को एक खास अरमान से रच रहे थे, जिसमें नवबौद्धिकतावादी रुझान और मन की गाँठें खोलने का उत्साह अपने प्रबल रूप में था। इसी दौर में सर्वेश्वर ने अपना पहला उपन्यास 'सोया हुआ जल' लिखा।

1. सोया हुआ जल

सर्वेश्वर का पहला लघु उपन्यास 'सोया हुआ जल' है। इसके उपन्यास रूप को लेकर विभिन्न मत हैं। अज्ञेय इसे 'लम्बी रूप कथा' स्वीकार करते हैं वहीं धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसे उपन्यास की कोटि में रखा है। डॉ.ब्रजविलास श्रीवास्तव का विचार है कि "वस्तु शिल्प, रूप गठन, शैली, उद्देश्य सभी दृष्टियों से 'सोया हुआ जल' बिल्कुल भिन्न कोटि का उपन्यास है। अत्यंत लघु होते हुए भी वह कई दृष्टियों से हिन्दी में बहुत मौलिक और महत्वपूर्ण प्रयोग है।"[109] पश्चिमी उपन्यासकार 'सार्त्र' ने जिस प्रकार 'द चिप्स आर डाउन' में विस्तृत कथानक को छोटे-छोटे कथ्यों में समेटने का प्रयास किया है उसी प्रकार सर्वेश्वर ने भी इस उपन्यास में नवीन शिल्प का सृजन कर विस्तृत कथानक को छोटे-छोटे अंशों में समेटा है। इस उपन्यास में बीसवीं सदी के मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न

विसंगतियों यथा अतृप्ति, मोहभंग, कुण्ठा, तृष्णा, घुटन, मूल्यगत क्षरण, रिश्तों में बिखराव और असंतोष आदि का मनोवैज्ञानिक पद्धति से चित्रण किया गया है। देखा जाए तो इस उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है जो अवचेतन मन को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह उपन्यास फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद पर आधारित है।

ठहरे हुए समाज की पीड़ा का भीतरी साक्षात्कार कराती हुई सूक्ष्म प्रतीकों-संकेतों भरी कथा के कारण यह उपन्यास अपने क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है। इस उपन्यास में रात्रिशाला 'दुनिया' का प्रतीक है और बूढ़ा पहरेदार 'मानवीय चेतना' का प्रतीक है जिसकी अंत में मृत्यु हो जाती है और जिसके माध्यम से सर्वेश्वर किसी गंतव्य को स्पष्ट करना चाहते हैं-"यह मानों दुनिया को बाहर से जागते रहने की प्रयत्नव्यर्थता से विश्वस्त होकर सत्य के निकट पहुँचना और उसे भीतर से जगाने का संकल्प करना है। इसलिए उपन्यास के अंत में पहरेदार मरा हुआ भी अपनी लाश में परंपरागत सुधार प्रयासों की मृत्यु को देख रहा है और साथ ही भीतर की वास्तविकता के आधार पर नयी जिन्दगी के प्रतीक उग रहे सवेरे को भी।"[110] इस उपन्यास में जहाँ एक ओर पैसे वाले वर्ग की खिलखिलाहट है वहीं दूसरी ओर है लेनिन का दर्शन। इन दोनों के बीच जीवन की कराह का अनुभव कराता है यह उपन्यास। किशोर और रत्ना, राजेश और विभा सभी प्यार को बेचैन, प्यासे भटकते पात्र हैं। इस लघु उपन्यास में एक ही दर्द भरी अर्थ ध्वनि उभरती है-"तुम्हारा साम्यवाद बाह्य परिस्थितियों को बदल सकता है लेकिन आदमी जब तक भीतर से नहीं बदलेगा तब तक जिस स्वर्गिक जीवन की हम कल्पना करते हैं वह नहीं प्राप्त हो सकता।"[111]

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम में सर्वेश्वर ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि किस तरह किशोरों के स्वप्न के प्रेम-महल यथार्थ के एक ही पत्थर से चकनाचूर हो जाते हैं-"हाँ, जो राक्षस है उसकी......यह तो मैं पहले से ही जानता था। एक न एक दिन किशोर को राक्षस होना ही था।"[112]

2. पागल कुत्तों का मसीहा

सर्वेश्वर का दूसरा लघु उपन्यास–'पागल कुत्तों का मसीहा' है। इस उपन्यास में लेखक ने हमारी सामाजिक व्यवस्था की सड़ाँध पर करारा व्यंग्य किया है। पागल कुत्तों को पकड़ने वाला पाता है कि पूरा समाज ही पागल कुत्ते में बदल रहा है। उपन्यास की कथा ध्वनि सिर्फ इतनी ही है कि "जिसे हम जन्म नहीं दे सकते, उसे मारने का हमें क्या हक है।" प्रश्नों व चिंताओं तथा समस्याओं में फँसे समाज का पागल दर्द ही इस उपन्यास में विविध कथा-प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। लेखक को लगता है कि प्यार एवं स्वाधीनता के अभाव में बंद कमरे का समाज आदमी को मुक्त नहीं करता- पागल कर देता है। ऐसे में समझदारी की एक आवाज उठती है–"लेकिन जो असुंदर है, अशिव है, हानिकारक है, समाज विरोधी है, उसे मारना धर्म है।"[113]

इस उपन्यास में सर्वेश्वर ने धर्म को आत्मशांति के यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे अंधविश्वासों से अलग रूप देने का भी प्रयास किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र दीनू के आत्मविश्लेषण में उन्होंने भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से की विवशता को निरूपित किया है–"मैं समझ पाता हूँ। जब भी मैंने इस कुत्ते के सामने हाथ जोड़कर शीश झुकाया है, मैंने अपने पर लानत भेजी है। मैं जानता रहा कि वह पागल कुत्ता ही है। फिर भी मैं विवश रहा हूँ। भावी के भय से ग्रस्त होने के कारण ही मेरा शीश अपने आप झुक गया है। शायद आने वाली विपत्ति टल ही जाए। शायद कोई विपत्ति आने वाली हो। तब यह कहने को न रहे कि मैंने वहाँ पर सर नहीं झुकाया था। यह मोह तो नहीं है, यह श्रद्धा भी नहीं है, यह डर है डर। वर्तमान से डर, विपत्तियों से डर। विपती मैं कहता हूँ कहीं न कहीं वह डर ही है जो हमसे किसी की पूजा करवाता है।"[114]

इस उपन्यास में सर्वेश्वर ने मानवीय संवेदना को भी प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही साथ यह उपन्यास सामाजिक व्यवस्था की गंदगी को भी उघाड़ता दिखता है। विपती द्वारा यह प्रश्न पूछने पर कि आजकल इतने ज्यादा कुत्ते क्यों पागल होने लगे हैं? उपन्यास का मुख्य पात्र दीनू जवाब देता है–"आदमी भी तो बहुत ज्यादा पागल होने लगे हैं, यह तू नहीं देखती।

जितनी ही आदमी पर रोक-थाम लगाएगी, उतना ही वह पागल होगा।...यह पाबंदी दूसरा लगाने कौन जाता है। आदमी खुद ही अपने पर लगाता है, अपने को दबाता है। क्या करे? न दबाए तो पागल कहा जाए। समाज के कानून के आगे किसका बस चलता है? मुझको ही देख ले।"[115]

3. सूने चौखटे

सर्वेश्वर द्वारा रचित उनका अंतिम उपन्यास 'सूने चौखटे' किशोर मानसिकता पर आधारित है जो सन् 1974 'उड़े हुए रंग' शीर्षक में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का रचना-संसार बाल-प्रेम से उठान पाता है और अंत में एक गहरी कराह के साथ पाठक को तिलमिलाते हुए समाप्त होता है। उपन्यास में प्रतिभाशाली बालिका कमला छोटे से बालक रामू को अपना नाम ठीक से लिखना सिखाती है। धीरे-धीरे दोनों में राधा-कृष्ण वाला सहज प्रेम पनपता है लेकिन कमला बेहद गरीब बस्ती में रहती है जहाँ सड़ती हुई नालियाँ और मच्छरों का गोदाम है। यहाँ कमला सौतेली माँ के साथ रहती है। कमला के पिता कचहरी के मुहर्रिर और स्वभाव से मस्त आदमी हैं। कमला की सौतेली माँ लड़ाकू और भयंकर क्रोधवाली है। बात-बात में कमला पर बिगड़ने वाली। लेकिन कमला के पिता उसे जी-जान से प्यार करने वाले हैं। इस उपन्यास में रामू के चरित्र में ध्यान से देखने पर हम रचनाकार (सर्वेश्वर) को पाते है। रामू के माध्यम से सर्वेश्वर ने अपना जीवनानुभव प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस उपन्यास का दूसरा अंश 'टूटी आकृतियाँ' है जिसमे कथा फिर नौ वर्ष बाद आरंभ होती है। कमला अब सत्रह वर्ष की हो गई है और सौतेली माँ की चिंता है- "कब तक पढ़ाओगे उसे आखिर? ज्यादा पढ़ जाएगी तो और मुसीबत बढ़ जाएगी।"[116] इधर रामू के कायस्थ पिता की दुकान टूट जाती है। फिर एक दिन अचानक रामू आठ साल बाद कमला से मिलता है लेकिन मिलने-घूमने के बावजूद भी दोनों का प्रेम परवान नहीं चढ़ पाता है। उपन्यास के इसी अंश में मास्टरनी हेम दीदी के विचार उमड़ते हैं- "मान्यताएँ बदलेंगी, परम्पराएँ टूटेंगी, समाज बदलेगा और बदलता जाएगा। यह क्रम अनंतकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा।"[117] पर कमला पुराने मूल्यों को ढोती है और रामू के साथ

भागने का साहस नहीं कर पाती। साहस न कर पाने के पीछे घर की कलह और स्थिति का दबाव है। इधर रामू लेखक बनने की मानसिकता में है–यही सर्वेश्वर का प्रतिरूप है जो कहता है–"गलत सुनती है तू, समाज जैसा चाहे लेखक को बना सकता है। लेखक समाज को नहीं बदल सकता। समाज को बदलती है राजनीति।"[118]

उपन्यास का तीसरा अंश 'उड़े हुए रंग' है जहाँ से बीस वर्ष की कमला की त्रासद कहानी शुरू होती है। कोमल, चमकदार और प्रतिभाशाली कमला घुट-घुट कर क्षय रोग का शिकार हो जाती है। विवाह के लिए चिंतित बाबूजी का रात-रात भर बरामदे में घूमना कमला को तोड़ देता है। आखिरकार एक मोटे व्यापारी लड़के से धूमधाम के साथ कमला का विवाह हो जाता है। विवाह में रामू भी आता है और विदा के बाद स्टेशन पर कमला से मिलता भी है। पर कमला मर्यादा के कारण रामू से दूर हो जाती है और रामू अपनी सीमा में रहकर कमला से वंचित हो जाता है।

हिन्दी के नए यथार्थवादी उपन्यासों में सर्वेश्वर का यह उपन्यास काफी चर्चित रहा है। पूरा उपन्यास हमारी परम्पराओं और हमारी मूल्य व्यवस्था पर एक गहरा सामाजिक व्यंग्य है। यह व्यंग्य उस मूल्य-व्यवस्था के विरोध में है जो बदलाव की शत्रु है और जिसकी अंधी आग में न जाने कितनी कमलाएँ जलकर खाक हो जाती हैं। उपन्यास का अंत पूरी त्रासदी को एक अर्थ-संदर्भ देता प्रतीत होता है– "आखिर हम सब तस्वीरें ही तो हैं। कौन तस्वीर नहीं उड़ती। यह तस्वीर भी उड़ जाएगी। लेकिन वह सूना चौखटा बचा रहेगा जिसमें वह जड़ी थी। उसे तुम्हें सौंपती हूँ, तुम सबको सौंपती हूँ। अपनी सामर्थ्य से जैसा चाहना वैसा चित्र बनाकर उसमें लगा देना। यही मेरा चित्र होगा।"[119] इसी उपन्यास का मुख्य पात्र रामू समाज की मूल्यहीन व्यवस्था पर निराश होकर व्यंग्य करते हुए कहता है–"प्यार...... जिस शब्द के उच्चारण में प्रारम्भ से ही होंठ दबा लेने पड़ते हों उसे कहने से चुपचाप पी लेना कहीं अच्छा है।"[120]

उपर्युक्त उपन्यासों के विश्लेषणोंपरांत मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सर्वेश्वर हिन्दी गद्य साहित्य में विशेषतः कथा साहित्य में एक नए सामाजिक यथार्थ

के सशक्त रचनाकार हैं। ठहरे हुए समाज के दर्द को उनकी कविताओं एवं कहानियों की भाँति यहाँ भी संकेतों-प्रतीकों तथा कथा-अभिप्रायों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। प्रसिद्ध आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल ने सर्वेश्वर के उपन्यास साहित्य पर बड़ी सटीक टिप्पणी की है-"जिस अर्थ में गद्य निराला के लिए जीवन संग्राम की भाषा है उसी अर्थ में सर्वेश्वर के लिए भी है। गाँव की भीतरी पीड़ा को सर्वेश्वर ने जिया भोगा और समझा था-वही पीड़ा और कराह कसकते-दुखते कथानुभावों में यहाँ मौजूद है। सामाजिक पीड़ा का यह यथार्थ-संसार हमारी आँखें खोल देता है। जीवन को देखने-समझने का यथार्थवादी ढंग सर्वेश्वर की खास कला है। दिलचस्प बात यह है कि अँधेरी रात में सर्वेश्वर सवेरे की प्रतीक्षा करते हैं।"[121]

2.11 कहानी साहित्यः कच्ची सड़क और अंधेरे पर अंधेरा

गद्य की समस्त विधाओं में कहानी विधा का विशेष स्थान है। सर्वेश्वर का नाम सशक्त कहानीकार के रूप में गौरव के साथ लिया जा सकता है। यहाँ यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि सर्वेश्वर के सृजनकर्म का आरम्भ कहानियों से ही हुआ है। गद्य लेखन में भी उनका कवि व्यक्तित्व सहयात्री बना रहा है। उनकी कहानियों में 'कच्ची सड़क' और 'अंधेरे पर अंधेरा' कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी साहित्य जगत में सर्वेश्वर प्रथमतः कहानीकार के रूप में ही सामने आए। उन्होंने अपनी पहली कहानी 1943 ई॰ में लिखी जो कि 'क्षत्रियमित्र' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। सन् 1943 से 1950 तक वे केवल कहानियाँ ही लिखते रहे। सन् 1950 से उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया।

सर्वेश्वर की कहानी विधा के प्रति दृष्टि विशिष्ट है। ये कहानियाँ कुछ-कुछ जयशंकर प्रसाद की कहानियों जैसी रोमांटिक संवेदना की निष्पत्ति हैं। प्रकृति राग से भरा सौंदर्यवाद और मानवीय अनुभव का यथार्थवाद, दोनों ही गुण सर्वेश्वर की कहानियों को विशिष्ट बना देते हैं। इन कहानियों में सर्वेश्वर के जीवन सृजन की मनोकामना है और इनमें कवि व्यक्तित्व के बहुत से रचनात्मक अनुभवों के अंतःसूत्र खोजे जा सकते हैं। समर्पण एवं विद्रोह की लयात्मकता से संयुक्त होते हुए ये मानवीय रिश्तों के उतार-चढ़ाव में झूलते हुए पाठक के मन की गहराई में

आसानी से अपना प्रभाव डालते हुए बैठ जाती हैं। सर्वेश्वर के कवि एवं कथाकार के दोहरे व्यक्तित्व पर 'अज्ञेय' ने 'काठ की घंटियाँ' की भूमिका में लिखा है– "कवि और कहानीकार दोनों ही देशकाल से बंधे हैं किन्तु निरपवाद न होने का आग्रह न किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि कहानीकार की दृष्टि देश की ओर अधिक रहती है और कवि के कान काल की झनकार की ओर अधिक लगे रहते हैं। दूसरे शब्दों में कहानीकार का संदर्भ समाज और उसका विस्तार होता है, कवि संदर्भ जीवन और उसकी गहराई।"[122]

'नयी कहानी आन्दोलन को समझते हुए सर्वेश्वर ने कहा है, "नयी कहानी मेरे विचार से उसे कहा जाना चाहिए जो कई स्तरों पर चलती हो। एक स्तर पर कथा, दूसरे स्तर पर वैचारिक निबन्ध और तीसरे स्तर पर भाषा सांकेतिकता और प्रतीकों के माध्यम से काव्य का सुख दे सके, वही नयी कहानी है। इस दृष्टि से निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण और श्रीकांत वर्मा नये लिखने वालों में मेरे प्रिय हैं।"[123] 'स्वातंत्रयोत्तर हिंदी कहानी : पुनर्मूल्यांकन' पर सन् 1976 की त्रिदिवसीय कहानी गोष्ठी में हिस्सेदारी करते हुए उन्होंने जो वक्तव्य दिया वह उनकी रचनागत मानसिकता को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस संगोष्ठी के आरम्भ पर सर्वेश्वर ने कहा, "हिंदी कहानी को कहानी के साहित्यिक आंदोलनों ने सर्वाधिक क्षति पंहुचाई है।"[124] उन्होंने कहानी के लिए एक पाँच सूत्रीय कार्यक्रम भी पेश किया–

(i) "पश्चिमी फैशनपरस्त अंधानुकरण से बचो, **(ii)** शिल्प को आतंक मत बनाओ **(iii)** उनके लिए भी जो अर्धशिक्षित हैं और उनके लिए जो अशिक्षित हैं, जिन्हें आपकी कहानी पढ़कर सुनाई जा सके **(iv)** इस देश की तीन–चौथाई जनता की उस सोच–समझ और चिन्ता को वाणी दो जो वह खुद नहीं कर सकती' **(v)** कहानी को लोककथाओं और फेबुल्स की सादगी की ओर मोड़ो। उसके विन्यास से सीखो और आम आदमी के मन से जोड़ो।"[125]

कहानी लेखन के प्रथम विकास से ही सर्वेश्वर मनुष्य को केन्द्र में रखते हैं और उसके अस्तित्वहीन स्वरूप को नया–नया मुहावरा देने का प्रयत्न भी करते हैं– "प्रारम्भिक दौर में वे जिस मनुष्य को कहानी का विषय बनाते हैं उसे सामाजिक

अंतर्विरोधों के बीच रखकर अधूरा ही छोड़ देते हैं। लेकिन सन् 1970 के बाद की कहानियों में वे ऐसे मनुष्य की कल्पना करते हैं जो जीवन में भी है, शोषण का शिकार भी है और हारकर-टूटकर संघर्षरत भी है। सन् 1967 के बाद देश में नक्सलवादियों की जो वैचारिक दृष्टि साहित्य में विकसित हुई और जिसकी भूमिका तेलंगाना मूवमेंट के साथ विकसित होकर भोजपुर के किसान संघर्ष से निर्मित हुई- उससे भी सर्वेश्वर की वैचारिक दृष्टि का विकास हुआ। इसलिए वैचारिक दृष्टि के ऐसे प्रभाव में लिखी गई कहानियाँ विघटित मूल्यों से मुक्त होने के जद्दोजहद में संघर्षरत मनुष्य की गाथा है। 'तीन लड़कियाँ एक मेंढक' में जिन तीन लड़कियों की यशोगाथा का वर्णन अपने-अपने प्रेमी के माध्यम से व्यक्त किया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की आशाओं-आकाक्षांओं की हार को अपनी जीत की लय में कबूल करने की दृष्टि सर्वेश्वर की अपनी निजी दृष्टि है। इसी तरह 'प्रेमी' कहानी में पति-पत्नी की गोपनचर्या जिस प्यार भरे मादक सुखद स्पर्श का अनुभव कराती है उससे न केवल उसके पुरुष को स्पर्श सुख की अनुभूति मिलती है बल्कि सर्वेश्वर वहाँ भी मनुष्य के प्रेम की गरिमा को विवृत करने में अधिक गर्व का अनुभव अपने आत्मबोधी रूप में करते हैं।"[126]

वस्तुतः सर्वेश्वर को मानवीय संवेदना और सम्बन्धों को गहराई से देखने का अभ्यास है। उनकी 'मृत्युपाश' शीर्षक कहानी से स्पष्ट होता है कि प्रेम ही जीवन का बृहत्तर अर्थ है। इसके अतिरिक्त 'मृत्यु बंधन नहीं', 'प्रेम और मोह,' 'आँधी की रात' और 'बदला हुआ कोण' जैसी कहानियों में भी सर्वेश्वर मन की परतें खोलते नजर आते हैं। इनकी कहानियों की भाषा सपाट न होकर व्यंजनात्मक है। कहानियों में शिल्प सामर्थ्य की कला शायद उनके काव्य से छनकर आई है।

सर्वेश्वर की यह कहानियाँ विविध विषयों को समाहित किए हुए हैं जिनमें हर बार पाठक एक नया स्वाद और संवेदना पाता है। 'बरसात अब भी आती है', 'पुलिया वाला आदमी', 'चोरी', 'खून और शराब', 'क्षितिज के पार', 'भगत जी', 'कमला मर गई', 'टूटे हुए पंख', 'छिलके के भीतर', 'मास्टर श्याम लाल गुप्ता', 'स्नेह और स्वाभिमान', 'जिन्दगी और मौत', 'रूप और ईश्वर', 'पत्थर के फूल', 'कच्ची सड़क', 'लड़ाई', 'धूप', 'तीन लड़कियाँ एक मेढ़क', 'प्रेमी', 'टाइमपीस',

'मरी मछली का स्पर्श', 'सफलता', 'छाता', 'सो जाओ दोस्त', और 'नयी कहानी के नायक और नायिका' आदि सर्वेश्वर की प्रमुख कहानियाँ हैं जिनमें संवेदना का एक नया स्तर देखने को मिलता है। ये सभी कहानियाँ 'कच्ची सड़क', 'अँधेरे पर अँधेरा' और 'बदलता हुआ कोण' शीर्षक कहानी-संग्रहों में संकलित हैं।

सर्वेश्वर की कहानियों का वर्गीकरण

सर्वेश्वर के 'कच्ची सड़क' और 'अंधेरे पर अंधेरा' शीर्षक से दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कुल इकसठ कहानियाँ हैं। यदि पाँच बाल कहानियों को भी शामिल कर लिया जाए तो इनकी संख्या छाछठ हो जाती है। सर्वेश्वर की सम्पूर्ण कहानियों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि इनमें जीवन के विविध पक्षों, सामाजिक यथार्थ, नारी चेतना, प्रेम और विवशता और ग्रामीण समस्या आदि पहलुओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए मैं उपर्युक्त शीर्षकों के अंतर्गत ही उनकी कहानियों का विश्लेषण करूँगा।

1. प्रेम विषय पर आधारित कहानियाँ

सर्वेश्वर की प्रारम्भिक कहानियाँ प्रेम विषय पर आधारित हैं जिनमें छायावादी प्रभाव दिखाई देता है। उनके ज्यादातर नारी पात्र उम्र के लिहाज से युवतियाँ हैं। 'प्रेम और मोह' शीर्षक कहानी की राजकुमारी शशिप्रभा में छायावादी रचनाकार जयशंकर प्रसाद की रूप ध्वनि है। "महल की ऊपरी छत पर रूप और यौवन की किरणों से लिपटी हुई राजकुमारी शशिप्रभा मादक सपनों का जाल बुनती हुई, निश्चेष्ट एकटक शून्य में देख रही थी। अस्त-व्यस्त झीने वस्त्रों से फूटकर निकलती हुई रूप की लहरें अर्धमूच्छित खामोश झरती हुई शशि किरणों से ज्योतिर्मय बेसुध आलिंगन कर रही थी।"[127]

सर्वेश्वर की कहानी 'रूप और ईश्वर' में भी वही दर्शन और वही रूप ध्वनि दिखाई देती है- "मेरी निर्बलताएँ मुझे दिन-प्रतिदिन ईश्वर से विमुख करती जा रहीं हैं देव। सिन्धु की अनंत लहरों-सी अंगड़ाई लेता हुआ यह यौवन ज्ञान के तर्क के बन्धनों को तोड़कर भी तृष्णाओं और इच्छाओं के वातावरण में उमड़कर हिलोरे लेने लगता है।"[128]

सर्वेश्वर की कहानियों की समीक्षा करते हुए प्रसिद्ध आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल लिखते है–"सर्वेश्वर में नारी देह की भूख है, एक अतृप्ति है जो निरन्तर दहाड़ती रहती है। प्रायः कहानियों में पति–पत्नी के चित्र आते हैं और करुणा भरे। 'बदला हुआ कोण', 'मृत्यु–पाश', 'आँधी की रात', 'प्रेम और मोह', 'खून और शराब' आदि कहानियों में अनुभव का कोण ताजा और यथार्थ है।"[129]

एक अन्य कहानी 'मृत्यु–पाश' में मानवीय संवेदनाओं और नारी के निश्छल त्याग एवं प्रेम की मनोदशा का मार्मिक और भावात्मक चित्रण हुआ है। इस कहानी में सर्वेश्वर ने प्रेम में निहित त्याग और समर्पण को, स्वतन्त्रता के लिए किए जा रहे संघर्ष को स्पार्टा के लोगों द्वारा स्पष्ट किया गया है। सर्वेश्वर ने इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट किया है कि प्रेम को देशकाल की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। इस कहानी में सर्वेश्वर ने व्यक्तिगत प्रेम की अपेक्षा देशप्रेम की भावना को सर्वोपरि सिद्ध करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार 'आँधी की रात' शीर्षक कहानी में प्रेम और ईश्वर तथा उसकी व्यापकता का निरूपण सहज रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कहानी में किशोर मन की दुर्बलता चित्रित हुई है। ज्ञानू कमला से प्रेम करता है। घरौंदे की नश्वरता से व्यथित ज्ञानू कमला से दूर चला जाता है। उसकी स्मृति को मन में संजोए ज्ञानू फिर कभी किसी से प्रेम न करने का निश्चय करता है। लेकिन प्रेम एक ऐसी भावना है जो व्यक्ति के हृदय में चुपचाप प्रवेश करती है और उसकी उपस्थिति मन तथा प्राणों में प्रसन्नता की एक चांदनी बिखेर देती है। ज्ञानू सोचता है कि दुनिया में कोई किसी का नहीं होता और आदमी बिना प्यार के रह भी नहीं पाता। अंत में निराश होकर ज्ञानू अपने जीवन का अन्त कर लेता है।

इस कहानी में कथाकार ने आज के समाज में प्रेम की बदलती हुई अवधारणा को वाणी दी है। उनकी यह कहानी पलायनवाद की भावना को भी अभिव्यक्त करती प्रतीत होती है।

'खून और शराब' शीर्षक कहानी में आज के असफल वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। कहानी का नायक पाल अपनी पत्नी मेरिया से बहुत प्रेम करता है और प्रेम के पहले उपहार स्वरूप उसे बत्तखों की एक जोड़ी देता है

और वो सोचता है कि इससे बत्तखों की वृद्धि के साथ-साथ उसके प्यार में भी वृद्धि होगी। पर शराब का लती पाल धीरे-धीरे घर की सारी बत्तखें और सामान बेच देता है। दुखी मेरिया के समझाने पर पाल उससे कहता है- "आज मुझे लगता है जैसे मैं तुम्हारे बिना रह सकता हूँ पर शराब के बिना नहीं रह सकता। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ पर शराब को तुमसे अधिक।"[130]

पाल को समझाने में व्यर्थ मेरिया एक दिन अपने खून से भरा गिलास पाल को थमा देती है और निर्जीव होकर ढुलक जाती है। मेरिया की अवस्था से व्यथित पाल मूर्च्छित हो मेरिया के शरिर पर ही गिर जाता है। अन्ततः उसका भी अंत हो जाता है।

इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने शराब के कारण बसे-बसाए घरों के उजड़ने की तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शराब किस प्रकार सर्वनाश का कारण बन सकती है, प्रस्तुत कहानी में बड़े मार्मिक तरीके से बताया गया है।

'जिन्दगी और मौत' कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने प्रेम के यथार्थ स्वरूप को मन्दालखा और लता के प्रेम के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस कहानी में दोनों बहनें एक ही व्यक्ति से प्रेम करती हैं लेकिन जहाँ मन्दालखा के प्रेम में ईर्ष्या का भाव है वहीं लता का प्रेम निश्छल और समर्पण पर आधारित है। कहानी में बड़ी बहन मन्दालखा छोटी बहन लता के प्रेम को स्वांग समझ उसे अपने प्यार के रास्ते से हटने के लिए विवश करती है। लेकिन लता के प्रेम में निश्वार्थता के कारण असफल होकर अंत में मन्दालखा क्रोध के वशीभूत लता और तपश्वी युवक बनराज को मौत के घाट उतार देती है।

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने हमारे समाज की उस स्वार्थ भावना को बेनकाब किया है जिसके कारण लोग अपनी तृप्ति हेतु दूसरों की बलि चढ़ाने तक में नहीं हिचकिचाते हैं। यह कहानी आज की नारी के अधःपतन को भी दर्शाती है। इस कहानी में प्रेम के उत्सर्ग का एक नया रूप भी हम सब के सामने प्रस्तुत किया गया है।

'मौत की आँखें' कहानी ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है जिसमें औरंगजेब की विदुषी पुत्री जेबुन्निशा और ईरान के प्रसिद्ध कवि आकिल खाँ के प्रेम का कलात्मक ढंग से निरूपण किया गया है।

कहानी में जेबुन्निशा और आकिल खाँ के बीच पनपते प्रेम को देखकर औरंगजेब क्रोधित हो जाता है। आकिल खाँ शहजादी की इज्जत बचाने के लिए खौलते पानी के देग में अपने प्रेम का स्मरण करता हुआ अपनी जान गवाँ देता है। उसके मुँह से एक 'आह !' तक नहीं निकलती।

इन दोनो के प्रेम के माध्यम से कहानीकार ने प्रेम में समर्पण और त्याग की भावना को दिखाया है।

'तीन लड़कियाँ : एक मेंढक' कहानी मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गई है। यह कहानी अपनी शैली में भी विशिष्ट है। इसके अलावा 'लपटें', 'बेबशी', 'वह चित्र', 'मीराबी', 'क्षितिज के पार' और 'प्रेमी' शीर्षक कहानियों में भी कहानीकार ने प्रेम के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

2. आर्थिक समस्याओं पर आधारित कहानियाँ

भौतिक जीवन की अधिकतर समस्याओं का कारण अर्थ है। अर्थाभाव के कारण जीवन चुनौतीपूर्ण हो जाता है। समाज की वर्णव्यवस्था का कारण भी अर्थ ही है। आर्थिक समस्याएं व्यक्ति के जीवन में नैराश्य और कटुता भर देती है। समाज में होने वाले बहुत से अपराधों का कारण भी अर्थ और उसकी विषमता ही है। सर्वेश्वर की अनेक कहानियों के कथानक भी समाज की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। 'चोरी' 'बरसात अब भी आती है', 'छिलके के भीतर', 'मरी मछली का स्पर्श' और 'सोने से पूर्व' शीर्षक कहानियों को आर्थिक समस्या प्रधान कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

'चोरी' शीर्षक कहानी में सर्वेश्वर ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का चित्रण किया है। इस कहानी का मुख्य पात्र आर्थिक अभावों से ग्रस्त होने के कारण अपनी बीमार पत्नी का इलाज कराने गाँव से शहर आता है। लेकिन शहर के डॉक्टर बिना पैसे के उसकी पत्नी का इलाज नहीं करते। विडंबना यह है कि वही डॉक्टर किसी अमीर व्यक्ति के यहाँ आधी रात में आकर इलाज करता है।

प्रस्तुत कहानी में सर्वेश्वर ने सेवा के नाम पर पूँजीपतियों का दोहरा व्यक्तित्व उजागर किया है। 'दुनिया में सब पैसों का खेल है'– की भावना से वशीभूत होकर नायक भी अन्त में चोरी करने का मार्ग अपना लेता है।

सर्वेश्वर की एक अन्य कहानी 'छिलके के भीतर' आर्थिक विपन्नता और बेकारी की कहानी है। यह कहानी दो मित्रों के स्वार्थपरक रिश्तों को उजागर करती है। परमू और ठाकुर दो ऐसे ही मित्र हैं जिनकी मित्रता की असलियत छिलके के भीतर है। दोनों मित्र एक दूसरे पर अविश्वास रखते हैं। कहानीकार ने एक रात्रि के भीतर ही दोनों मित्रों के वास्तविक स्वरूप को 'छिलके उतार कर' दिखाया है। इस कहानी का कथ्य और संदेश आज की युवा पीढ़ी की सोच को भी उजागर करता है।

'बरसात अब भी आती है' शीर्षक कहानी में बाढ़ग्रस्त स्थिति का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा गया है। कहानी की नायिका श्रमिक वर्ग की ही है और अपने मालिक के बच्चे की जान बचाने के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है।

इस कहानी के माध्यम से सवेश्वर ने युवती को केन्द्र में रखकर यह बताने का प्रयास किया है कि जहाँ निम्नवर्ग दूसरों की हिफाजत के लिए अपने प्राण तक गवाँ देता है वहीं उच्च्व वर्ग अपने कुत्ते की जान बचाने हेतु एक निरीह की जान लेने में भी संकोच नहीं करता। यह कहानी आज के मेट्रोपोलियन शहरों की क्रूर सच्चाई भी है।

इसी प्रकार 'मरी मछली का स्पर्श' शीर्षक कहानी भी आर्थिक विपन्नता पर आधारित है। इस कहानी का मुख्य पात्र बूढ़ा व्यक्ति रिक्तता बोध से ग्रसित है। आर्थिक बदहाली को सहते हुए वह अपने जीवन में ऊब और घुटन महसूस करता है। निराशा से घिरा बूढ़ा आदमी नदी में कूदकर अपने प्राण देना चाहता है। किन्तु अन्त में वह यह विचार छोड़ देता है। इस कहानी में कथाकार ने आधुनिक जीवन के भय को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'सोने से पूर्व' शीर्षक कहानी में आर्थिक विषमता से पीड़ित युवती की विवशता को उजागर किया गया है। इच्छित पुरुष को न पा सकने की असमर्थता

और जीवन निर्वाह के कारण युवती एक रेस्तराँ में नौकरी करने के लिए विवश हो जाती है।

कहानी की नायिका 'मोना' द्वारा कहा गया यह वाक्य– "मैं जी रही हूँ, देख रही हूँ जबरदस्ती, परवश, अकेले, असहाय और यह आवाज प्रतिक्षण गूँजती जा रही है– तुम्हारा काम है मुसकराना...........मुसकराना।"[131] आज की नारी की आर्थिक स्वावलंवन की संघर्षमय स्थिति को उजागर कर देता है।

3. सामाजिक यथार्थ पर आधारित कहानियाँ

सर्वेश्वर की अनेक कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाली है। यद्यपि इस विषय के अंतर्गत प्रेम, आर्थिक समस्याएँ और नारी मुक्ति आदि विषयों को भी समाहित किया जा सकता है क्योंकि ये विषय भी सामाजिक यथार्थ का ही एक अंश हैं। आधुनिक कहानी सामाजिक यथार्थ को ही अपनी कथानक का आधार बनाती है।

इस संदर्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव के कथन को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। उनका विचार है– "आज की कहानी अधिक यथार्थ दृष्टि, प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आस–पास के परिचित परिवेशों में ही किसी ऐसे सत्य को पाने का प्रयत्न करती है, जो टूटा हुआ, कटा–छटाँ या आरोपित नहीं बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य का एक अंग है।"[132]

आधुनिक कहानियों के संदर्भ में राजेन्द्र यादव के इस विचार पर सर्वेश्वर की कहानियाँ बिल्कुल खरी उतरती हैं। जिस प्रकार पात्रों की विवशता, उनकी बेबशी को सर्वेश्वर ने अपनी कहानियों में उतारा है, यह निश्चय ही सामाजिक सत्य का एक अंग कहा जा सकता है।

सर्वेश्वर की कहानियों में 'कमला मर गई', 'सोने से पूर्व', 'डूबता हुआ चाँद', 'बेबसी' और 'टूटे हुए पंख' आदि कहानियों में यही सामाजिक सत्य उभरकर सामने आया है।

'टूटे हुए पंख' शीर्षक कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने उस निरीह पक्षी की व्यथा को उभारने का प्रयास किया है जिसके पंख टूटे हुए हैं। वास्तव में यह कहानी प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक नारी की विवशताओं को भी दर्शाती है जो

उस निरीह पक्षी की तरह ही है जिसके पंख तोड़ दिए गए हैं। आज भी पुरूष प्रधान समाज में नारी का कोई महत्व नहीं है और न ही उसकी भावनाओं और महत्वाकांक्षाओं का कोई मूल्य। कहानी की पात्र शीला को सभी अकेला छोड़कर चले जाते हैं। सब कुछ होते हुए भी वह असहाय, निरीह और दयनीय अवस्था में है। कहानी के अंत में कथाकार ने जीवन के यथार्थ को उदघाटित किया है–"उफ जीवन भी क्या है? एक मजबूरी, घेर–घेर कर मजबूरी; यहाँ हम हंसते हैं मजबूरी के ही कारण, रोते हैं मजबूरी के ही कारण। मजबूरी केवल मजबूरी घेर–घेर कर मजबूरी। और कुछ नहीं है जिन्दगी क्या?।"[133]

इस कहानी में शीला के अंतर्द्वंद्व को रूपांकित करने में कहानीकार सफल रहा है।

इसी प्रकार 'डूबता हुआ चाँद' शीर्षक कहानी में कहानीकार ने सामाजिक विसंगतियों के कारण पीड़ित औरत की भावनाओं को उजागर किया है। यह कहानी पुरूष के अहं और नारी जीवन की त्रासदी की कहानी है। पत्नी गोरी न होने के कारण पति द्वारा उपेक्षित है फिर भी वह सदैव पति का भला चाहती है। परस्त्री के साथ रातें बिताने वाला पति भी उसकी नजरों में अच्छा है। पत्नी के शब्दों में–"पति के लिए कुछ भी बुरा नहीं है। फिर आदमी तो ऐसा करते ही हैं। सबके आदमी करते हैं, उन्हें सब शोभा देता है।"[134]

भारतीय नारी की परंपरागत मानसिकता को इस कहानी में स्पष्ट किया गया है। वहीं विडंबना ही है कि पति महोदय बीमार पत्नी के लिए एक पैसा भी खर्च करना व्यर्थ समझते हैं। पति के प्रति अंधभक्ति ही पत्नी की परेशानी या तनाव का कारण बनती है। भारतीय मर्यादाओं में बंधी रहने के कारण ही वह अपना जीवन नष्ट कर लेती है।

इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि आधुनिकता से प्रभावित हुए बिना नारी के लिए आत्मसम्मान की रक्षा करना सम्भव नहीं है। परम्परागत मान्यताएँ आज के युग में पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है।

एक अन्य कहानी 'कमला मर गई' में भारतीय जीवन की विडंबना को प्रस्तुत किया गया है। कहानी की मुख्य पात्र कमला सामाजिक कुरीतियों की भुक्त

भोगी है। अपने जीवन में घट रही घटनाओं को वह स्वीकार करती है परन्तु उसके मन में विद्रोह का भाव भी छिपा है। तभी वह विद्रोह के स्वर में कहती है– "तुम्हारे चाचा कह रहे थे कि तुम लेखक हो रहे हो। अखबारों में काफी लिखते–पढ़ते हो। मैं तो रह गई। बहुत–सी चीजें कहना चाहती हूँ, पर इस लायक नहीं हूँ। कुछ ऐसा करो कि यह दुनिया बदल सके, हम स्त्रियों की आवाज भी लोग सुनें और सुनने की जरूरत समझें। काशः मैं तुम्हारी तरह होती तो दुनिया को बताती कि ऐसी जिन्दगी से लड़की का गला घोंटकर मार डालना अच्छा है।"[135]

हमारे आधुनिक समाज की यह विडंबना ही है कि जिस लड़की को अपनी सारी उम्र एक अनजान व्यक्ति के साथ बितानी है वहाँ उस लड़की की राय तक नहीं ली जाती। घर के सदस्य किसी वस्तु की तरह अपनी मर्जी से उसे किसी की भी झोली में डाल देते हैं। यद्यपि आज के समाज में इस स्थिति के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ी है।

इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर नारी को उसका अधिकार दिलाना चाहते हैं।

इसी प्रकार उनकी कहानियों 'बेबसी', 'प्रेम विवाह' आादि में भी उन्होंने नारी मनोभावों और उसके विविध पक्षों को बड़े ही यथार्थवादी ढंग से उभारने का प्रयास किया है।

'रोशनी' शीर्षक कहानी में भारतीय समाज में हो रहे मानवता के क्षरण को प्रस्तुत किया गया है। आज भौतिकवादी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण साहित्य और कला निष्प्राण होते जा रहे हैं।

सर्वेश्वर ने इस कहानी के माध्यम से भारतीय समाज की बदलती धारणा एवं अंधकारोन्मुख परिस्थिति को स्पष्ट कर एक ऐसी 'रोशनी' को तलाशने का प्रयास किया है जो समाज में फैल रही स्वार्थपरायणता और मानवीय मूल्यों के क्षरण रूपी अंधकार को मिटाने में समर्थ हो।

इसी प्रकार सर्वेश्वर ने कुछ अन्य कहानियों जैसे– 'मैं एक बेरोजगार आदमी', 'एक नई बाइबिल', 'कच्ची सड़क', 'लड़ाई', 'पुलियावाला आदमी',

'सफलता', 'अंधेरे पर अंधेरा' और 'मरी मछली का स्पर्श' आदि में भी मानवता के क्षरण और सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

4. स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर आधारित कहानियाँ

सर्वेश्वर की कुछ कहानियां मात्र स्त्री–पुरुष सम्बन्धों या दाम्पत्य जीवन पर ही आधारित है। 'छाता' शीर्षक कहानी 'स्त्री–पुरुष' सम्बन्धों पर उनकी एक महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में छाता को माध्यम बनाकर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है।

यहाँ बारिश में भीगना और छाते से बचाव करना जीवन के सुख–दुख का प्रतीक रूप हैं। जिन्हें दोनों ही साथ–साथ एक दूसरे के प्रति समर्पित भाव से स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार सर्वेश्वर की एक अन्य कहानी 'तोता' है जो एक 'तोते' के इर्द–गिर्द घूमती है। इस कहानी में मुख्य पात्र घर के मालिक और मालकिन के बीच वार्ता द्वारा उनका एक दूसरे के प्रति रागात्मक सम्बन्ध और कर्तव्यबोध प्रस्तुत किया गया है।

इसी क्रम में सर्वेश्वर की एक अन्य कहानी 'पराजय का क्षण' है जो वर्तमान समाज के स्त्री–पुरूष के वास्तविक दाम्पत्य भाव को स्पष्ट करती है।

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि आज के बदलते परिवेश में पति–पत्नी का रिश्ता समझौते की भाँति मात्र औपचारिकता बनकर रह गया है। कहानी में नायक के प्रति उसकी पत्नी का कुछ ऐसा ही व्यवहार है जिसे वह खुद स्वीकार करता है–"अपने साथ दीपावली मनाने के लिए उसने मुझे बुलाने की दुनियादारी का निर्वाह किया है, क्योंकि हम प्यार की नहीं समझौते की जिन्दगी जीते हैं। समझौता सारे समाज, सारे जीवन के साथ।"[136]

एक अन्य कहानी 'एक बेवकूफ चिड़िया' में भी कहानीकार ने दाम्पत्य जीवन के मार्मिक प्रसंगों को उद्घाटित किया है। इस कहानी में सर्वेश्वर ने एक स्त्री की हृदयगत भावनाओं को संवेदना के व्यापक फलक पर उकेरने का प्रयास किया है।

5. चरित्र-प्रधान कहानियाँ

यद्यपि सर्वेश्वर ने अनेक विषयों को आधार बनाकर कहानियाँ लिखी हैं तथापि उनकी चरित्रप्रधान कहानियाँ अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण भिन्न हैं। 'मास्टर श्याम लाल गुप्ता' और 'भगत जी' शीर्षक कहानियों को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

'भगत जी' कहानी विशेष रूप से मनोरंजक और चरित्र प्रधान कहानी है जिसमें भगत जी के चारित्रिक अंतर्विरोधों को कहानीकार ने अभिव्यक्ति प्रदान की है। भगत जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। दूसरों को सेवा करना वे अपना परम् धर्म मानते हैं। वे मात्र दिखावटी भगत नहीं हैं बल्कि सच्चे अर्थों में कबीर की भाँति सेवा को ही वे अपना धर्म मानते हैं–"भगत जी यह जानकर कि कोई नहानेवाला है पानी भरने लगे थे। बाद में ज्ञात हुआ कि अपने सामने वे किसी को पानी नहीं भरने देते थे।"[137]

इस कहानी में सर्वेश्वर ने रेखाचित्र की भाँति भगत जी के आन्तरिक और बाह्‌य गुणों को उजागर करने का प्रयास किया है। वास्तव में पूरी कहानी ही भगत जी के ईर्द–गिर्द ही घूमती है।

'मास्टर श्याम लाल गुप्ता' शीर्षक कहानी में भी 'भगत जी' कहानी की तरह ही रेखाचित्र वाला गुण मौजूद है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने वर्तमान राजनीतिक परिवेश और उसके स्वरूप पर व्यंग्य किया है। मास्टर श्याम लाल गुप्ता एक देश सेवक हैं जो अपनी पेंशन के लिए सरकारी दफ्तरों के चक्कर काट रहे हैं। लेकिन सरकारी दफ्तरों की भ्रष्ट व्यवस्था के कारण उन्हें दर–दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं।

सर्वेश्वर ने इस कहानी के माध्यम से स्वतन्त्र भारत के कार्यालयों की दुर्व्यवस्था और वहाँ फैले भ्रष्टाचार को बेनकाब करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर की अधिकतर कहानियाँ समकालीन जीवन को उसकी समग्रता में व्यंजित करने का प्रयास करती हैं। गाँव, कस्बा, नगर और महानगर के अलग–अलग स्तर पर जीवन की विसंगतियों, बदलती मूल्य–मर्यादाओं और नई स्थितियों का चित्रण सर्वेश्वर की अनेक कहानियों में हुआ है।

"गाँव के सपाट जीवन में परिवर्तन की आहट को उसके समस्त सुख-दुख के साथ उभारने में सर्वेश्वर को सफलता प्राप्त हुई है। बेरोजगारी, गुंडागर्दी, धार्मिक ढोंग आदि प्रश्नों पर सर्वेश्वर ने गंभीरता से विचार किया है।"[138]

रमेशचन्द्र शाह ने उनकी कहानियों की समीक्षा करते हुए ठीक ही लिखा है कि "उनकी आरम्भिक कहानियों में प्रसाद की छाप है और मेरा अपना ख्याल है कि प्रसाद की प्रेरणा का सबसे अधिक परिपाक भी सर्वेश्वर की कहानियों में हुआ। जीवनानुभूति का वही रूप, कथात्मक संगठन, प्रतीकात्मकता का वही प्रभाव सिद्ध आग्रह, भाषा का रागात्मक रचाव, जीवन की आलोचना को अंतरवृत्तियों के नाट्य के रूप में एकाग्र करने की विवशता, भाषा के सुरूप ध्वन्यात्मकता एवं जीवंतता का वही रासायनिक संयोग है।"[139]

6. बाल कहानियाँ

सर्वेश्वर के रचनासंसार में बाल साहित्य का विशेष स्थान है जो उनका बच्चों के प्रति अगाध प्रेम को दर्शाता है। सर्वेश्वर ने न सिर्फ बाल-कहानियाँ और कविताएं लिखी हैं बल्कि 'पराग' नामक बालपत्रिका का सम्पादन भी कई वर्षों तक किया था।

सर्वेश्वर ने 'अपना दान', 'सफेद गुण', जूँ चट्ट : पानी लाल', 'अब इसका क्या जबाब है' और 'टूटा हुआ विश्वास' शीर्षक से कुल पाँच बाल-कथाएं लिखी हैं।

पहली कहानी 'अपना दाता' एक गरीब बालक की मानसिकता पर आधारित है जिसमें बालक लालचवश चोरी करता है लेकिन वह जो इकन्नी अपनी माँ की सन्दूक से चुराता है, दुर्भाग्यवश वह इकन्नी गिर जाती है और माँ के हाथ लग जाती है। फिर माँ के देने पर भी वह उसे नहीं लेता है और उसे अपनी करनी पर पश्चाताप होता है।

इस कहानी में सर्वेश्वर ने बालकों को लालच न करने और सत्कर्म की प्रेरणा दी है।

दूसरी बाल-कहानी 'सफेद गुण' के माध्यम से व्यक्ति को पुरूषार्थ करने की प्रेरणा दी गई है। कहानी में बालक आस्तिक स्वभाव का है और एक दिन ईश्वर

से प्रार्थना करता है कि उसे एक 'अठन्नी' मिल जाए जिससे वह बाजार में आया हुआ 'सफेद गुड़' खरीदकर खा सके। संयोग से उसे अठन्नी मिल भी जाती है जिसे लेकर वह पन्सारी की दुकान पर जाता है लेकिन वहाँ दुकान पर उसकी अठन्नी कहीं खो जाती है। दुकानदार प्यार से उसे यूँ ही गुड़ तोड़कर देने लगता है जिसे लेने से बालक इंकार कर देता है।

इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने बालकों को श्रम के महत्व के बारे में शिक्षा देने का प्रयास किया है।

तीसरी बाल-कहानी का शीर्षक 'जूँ चट्ट : पानी लाल' है। इस कहानी में एक लड़की की माँ लड़की के बालों से 'जूँ' निकालती है और लड़की उसे नाखून पर रखकर मारती जाती है। जब लड़की अपने नाखून धोने नदी पर जाती है तो नदी उससे पूछती है-"लड़की तेरे नाखून कैसे लाल हो गए?" लड़की उत्तर देती है-"जूँ चट्ट : पानी लाल"

इस क्रम में गाय, कौआ, बनिया और रानी सभी उससे पूछते हैं और धीरे-धीरे बात का असल तथ्य खो जाता है। इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने बिना कारण जाने किसी बात को स्वीकार न करने की बात पर बल दिया है।

चौथी बाल-कहानी 'अब इसका क्या जबाब है' शीर्षक से है। इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर ने बच्चों को 'भूत' से संबंधित बातों को बताकर डराने के खिलाफ आवाज उठाई है। कहानी में बच्चों को पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से मुक्त रखने की बात पर बल दिया गया है।

सर्वेश्वर की पाँचवी और अन्तिम और बाल-कहानी 'टूटा हुआ विश्वास' है। इस कहानी में एक बालक ईश्वर के प्रति आस्तिक भाव रखता है। लेकिन किसी कारणवश उसका विश्वास टूट जाता है। एक दिन बालक स्कूल का काम नहीं कर पाता है और मन्दिर में बस्ता रखकर खेलने चला जाता है किन्तु जब वापस लौटने पर बस्ता नहीं मिलता तो ईश्वर पर से उसका विश्वास उठ जाता है।

निष्कर्षतः यदि सर्वेश्वर की बाल-कथाओं का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट है कि इन कथाओं के माध्यम से उन्होंने बालकों को कुछ न कुछ नैतिक उपदेश

देने का प्रयास किया है जिससे बालकों में नैतिक और चारित्रिक गुणों का विकास हो सके।

2.12 नाट्य-साहित्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लिखे गए नाट्कों में सर्वेश्वर के नाटकों का विशेष स्थान है। उन्होंने कुल पाँच नाटक, एक नुक्कड़ नाटक तथा पाँच बाल-नाटक लिखे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने दस रेडिओ रूपक और चार नृत्य-नाटिकाओं की भी रचना की है।

सामान्य नाटकों की श्रेणी में उनके लिखे पाँच नाटक- 'बकरी', 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ', 'हवालात' और 'हिसाब-किताब' आते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए मैं यहाँ इन पाँचों नाटकों की कथावस्तु पर संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ।

1. बकरी

सर्वेश्वर के उपर्युक्त पाँच नाटकों में से बकरी विशेष रूप से चर्चित नाटक रहा है। यह नाटक 1974 में लिखा गया था। यदि लेखन क्रम से देखा जाए तो द्वितीय और प्रकाशन क्रम से यह सर्वेश्वर का प्रथम नाटक है। इस नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर ने आज की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति का बड़ा प्रभावी चित्र प्रस्तुत किया है। यह बदलते हुए तेवर का एक सीधा-साधा और प्रभावशाली नाटक है जिसमें सारे प्रपंचों और दबावों को निरन्तर झेलती हुई आम जनता के असंतोष, विद्रोह एवं खीझभरी झुंझलाहट को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति दी गयी है। इस नाटक में गांधी जी के सिद्धान्तों का दुरूपयोग दिखाया गया है कि किस प्रकार आज भी गांधीजी की बकरी गाँव में इस्तेमाल की जाती है। ग्रामीण जनता को आज गांधीवादी सिद्धान्तों के जामे दिखाकर नेतागण पहले नोट प्राप्त करते हैं और फिर कुर्सी। इस नाटक के तीसरे संस्करण की भूमिका में सर्वेश्वर ने लिखा है कि "गांधीवाद का मुखौटा लगाकर आज भी सत्ता की राजनीति की जा रही है और देश की जनता को छला जा रहा है। लेखक चाहता है कि देश की राजनीतिक स्थिति सुधरे और यह नाटक अपने निहित व्यंग्यार्थ में शीघ्र से शीघ्र असंगत हो जाए।"[140]

गांधी जी के नाम पर आज भी जनता लुट रही है। सर्वेश्वर ने इस नाटक के माध्यम से आम आदमी की शोषण कथा को बड़े साहस के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

लेखक ने नाटक की विषय–वस्तु को दो अंकों में विभाजित किया है और प्रत्येक अंक में तीन–तीन दृश्य हैं। ग्रामीण जनता की सरलता और दयनीय स्थिति का राजनेता किस प्रकार दुरुपयोग करते हैं, यह नाटक की केन्द्रीय अभिव्यक्ति है।

नाटक के आरम्भ में नट, नटी से मरी हुई बकरी की खाल लाने को कहता है। फिर एक भिश्ती मशक लादे हुए सड़क सींचता दिखाई देता है। वह एक गीत भी गा रहा है–

“बकरी को क्या पता था
मशक बन के रहेगी
पानी भरेंगे लोग
और, वह कुछ न कहेगी।”[141]

भिश्ती के गीत से दुर्जन सिंह, कर्मवीर और सत्यवीर को प्रेरणा मिलती है कि किस प्रकार वे उस बकरी का दुरुपयोग कर सकते हैं।

दुर्जनसिंह सिपाही से एक बकरी मंगवाता है। जब सिपाही एक गरीब औरत की बकरी लेकर आता है तो दुर्जनसिंह उसे समझाता है कि वह इसे मामूली बकरी न समझे बल्कि वह गांधीजी की बकरी है। इस प्रकार वे तीनों डाकू भोलेभाले गाँव वालों को भी यह समझाने में कामयाब हो जाते हैं कि यह मामूली बकरी न होकर गांधीजी की बकरी है। “इस बकरी को हम सेवाश्रम में रखेंगे। इसकी पूजा करेंगे। तुम सबको भी इसकी पूजा करनी चाहिए। इसकी पूजा करने से तुम्हारे खेत लहलहाने लगेंगे। पानी जमीन फोड़कर निकलेगा।”[142]

गाँववाले बकरी को देवी मानकर पूजा करने लगते हैं और इसी बीच सिपाही गरीब औरत विपती पर सार्वजनिक सम्पति हड़पने का आरोप लगाकर उसे जेल में डाल देता है।

गाँव के लोगों को एक युवक समझाने का प्रयास करता है, पर धर्मभीरू जनता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। बकरी को देवी मानकर दुर्जनसिंह और उसके साथी खूब पैसा एकत्र करते हैं।

इसके पश्चात् कर्मवीर संसद सदस्य के लिए चुनाव लड़ता है और उसका प्रतिद्वंदी गाँव का जमींदार होता है। गाँव की जनता दो बड़े व्यक्तियों के बीच पिस जाती है। इसी बीच जागरूक युवक चुनाव का विरोध करते हुए बकरी के षड्यन्त्र का भंडाफोड़ कर देता है– "चुनाव सब मजाक हो गया है। सब झूठ पर चल रहा है। गरीबों की बकरी पकड़कर उससे पैसा दुहा, अब वोट दुह रहे हैं, फिर पद और कुर्सी दुहेंगे।"[143]

सच्चाई सामने आने पर सिपाही युवक को पीटता है और फिर जेल में डाल देता है। कर्मवीर भारी मतों से चुनाव जीत जाता है। इस जीत के उपलक्ष्य में शहर में एक भोज का आयोजन किया जाता है जिसमें गांधीजी की बकरी का गोश्त पकता है। भोज में बड़े–बड़े अतिथि शामिल होते हैं। कर्मवीर अपने अतिथियों से कहता है–"हमें यकीन है कि हम आप सब मिलकर इस हरियाली को खत्म नहीं होने देंगे। अपने–अपने चौपाए खुले छोड़ दीजिए। चरें, मस्त रहें, फिक्र की कोई बात नहीं।..............दो ही नियम हैं; दाँत तेज और मजबूत हों, घास हरी और कोमल हो, फिर धरती चरागाह से ज्यादा कुछ नहीं हो पाएगी। शुक्र कीजिए, इस जनता, इस चरागाह के नाम पर।"[144]

नाटक के अंत में युवक और गाँव के लोग 'इंकलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए आते हैं और सभी को रस्सियों से बाँध देते हैं। इस प्रकार बकरी के नाम पर गरीबों और बेबश लोगों का शोषण करने वाले वर्ग का अंत हो जाता है।

यह नाटक समाज की अव्यवस्था और भ्रष्ट नौकरशाही पर तीखा व्यंग्य करता हुआ आज भी अपनी प्रासंगिकता बरकरार रखे हुए है। बल्कि कहा जाए तो यह नाटक आज की बदलती भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में और अधिक प्रासंगिक हो गया है।

2. लड़ाई

सर्वेश्वर द्वारा रचित यह नाटक पहले एक कहानी के रूप में लिखा गया था। इसके बाद इसका रेडियो नाटक तैयार किया गया जो आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से देश की सभी भाषाओं में प्रसारित किया गया।

इस नाटक में समाज, धर्म और राजनीति के क्षेत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है। नाटक में सत्यव्रत नामक लेखक जब अपने चारों ओर फैले हुए भ्रष्टाचार को देखता है तो उसके मन में व्यवस्था के प्रति विद्रोह और आक्रोश उत्पन्न होता है। वह अपनी पत्नी से कहता है कि– "अब मैं सत्य के लिए लडूंगा। न खुद कोई गलत काम करूँगा और न दूसरों को करने दूँगा।"[145]

उसके ऐसा कहने पर पत्नी उसे समझाती है पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह असत्य से लड़ने के लिए अपने घर से निकलता है और सबसे पहले वह सड़ी डबल रोटी बेचने वाले से टकराता है। वह उससे कहता है– "तुम कल बासी रोटी दे आए मेरे घर, यह कह कर कि ताजी है।"[146]

सत्यव्रत शिक्षा के क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध भी आवाज उठाता है और स्कूल के प्रिंसिपल से कहता है– "अंग्रेजी में अपनी बात न कह पाने की तकलीफ आप बच्चों में जगाना चाहते हैं।"[147]

नाटक के चौथे दृश्य में सत्यव्रत बस के कंडक्टर के द्वारा पैसे लेने के बाबजूद यात्री को टिकट न देता देखकर जाँच अधिकारी से इसकी शिकायत करता है लेकिन वहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है।

पाँचवे दृश्य में सत्यव्रत दफ्तर में जाता है लेकिन वहाँ का अधिकारी उसकी बात सुनने को तैयार नहीं है। इसके बाद वह राशन दफ्तर की शिकायत करने दैनिक 'सत्यपथ' के संपादक के पास जाता है लेकिन वहाँ भी संपादक राशन अधिकारी का दोस्त होने के कारण शिकायत छापने की बात को टाल देता है। संपादक उससे स्वतन्त्रता के बाद हुई प्रगति पर एक लेख लिखने को कहता है लेकिन सत्यव्रत तिलमिलाकर उससे कहता है– "तुम अपनी पत्रिका का नाम बदलकर 'असत्यपथ' रख दो, तभी मैं उसमें कुछ लिख सकूँगा।"[148]

सातवें दृश्य में सत्यव्रत सरकारी अस्पताल पहुँचता है जहाँ देखता है कि एक मरीज अस्पताल के बाहर लेटा है और डॉक्टर उसे भर्ती करने को तैयार नहीं है जबकि मिनिस्टर के आदमी को अस्पताल में तुरन्त भर्ती कर लिया जाता है। सत्यव्रत इसका विरोध करता है जिसके कारण दरोगा उसे इक्कीस बेंत लगाकर थाने के बाहर फेंक देने का हुक्म देता है।

सत्यव्रत पुलिस की मार खाकर बाहर पड़ा है जहाँ उसकी ये लड़ाई एक बदमाश आदमी और भिखारियों के साथ भी जारी रहती है। इसके बाद अगले दृश्य में एक लड़का आता है और उसे धक्का देकर जेब काटते हुए निकल जाता है। पास में ही कॉलेज के 'लड़के-लड़कियाँ' खड़े हैं जो परीक्षा में नकल करने के उपायों पर चर्चा करते हैं। सत्यव्रत उन्हें समझाने की कोशिश करता है लेकिन वे उसके सिर पर चपत मारकर निकल जाते हैं।

थका-हारा और निराश सत्यव्रत सड़क पर खड़ा है तभी उधर से एक बुद्धिजीवी निकलता है जो सांप्रदायिक दंगों पर आयोजित एक बैठक में शामिल होने के लिए जा रहा है। वह सत्यव्रत को भी साथ चलने के लिए कहता है लेकिन सत्यव्रत का जबाव है-"मैं ढोंगियों की बैठक में नहीं जाता..............जो दूसरों से चाहते हैं खुद करें। आप अपने को बदलें।"[149]

इसी बीच सत्यव्रत एक चंदा मांगते हुए आदमी के साथ स्वामी महेश्वरानंद के आश्रम में जाता है और वहाँ भी स्वामी जी को समझाते हुए व्यंग्य करता है- "देश में इतनी समस्याएँ हैं-गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, हिंसा। सबकी रामबाण दवा आपके पास है? आपकी आध्यात्मिकता अफीम है।"[150]

तेहरवें दृश्य में सत्यव्रत तेज बुखार से पीड़ित एक पार्क में पड़ा होता है जहाँ एक हत्या में गवाही लेने के लिए पुलिस उसे पकड़ ले जाती है और बेरहमी से उसकी पिटाई करती है। बाद में सत्यव्रत की पत्नी उसे अस्पताल ले जाती है जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है। वास्तव में उसकी मृत्यु नहीं होती बल्कि उसे मार दिया जाता है। इस प्रकार समाज के सम्मुख एक प्रश्न रखकर ये नाटक समाप्त होता है।

इस नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर ने समाज के सामने एक चुनौती प्रस्तुत की है कि सत्यव्रत जैसे व्यक्ति सत्य के लिए आखिर कब तक लड़ते रहेंगें? क्या सत्यव्रत की लड़ाई व्यर्थ थी? अथवा क्या समाज में एक अकेले व्यक्ति की गलत बातों के लिए लड़ाई अर्थहीन है?

इस नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर हमारे समाज का एक ऐसा सत्य प्रस्तुत करते हैं जो इस घोर अलोकतान्त्रिक और जनविरोधी व्यवस्था का भयानक चेहरा उघाड़कर सबके सामने रख देता है। वास्तव में इस नाटक के माध्यम से नाटककार समाज का वास्तविक चेहरा उजागर करने में सफल रहा है।

3. अब गरीबी हटाओ

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का तीसरा महत्वपूर्ण नाटक 'अब गरीबी हटाओ' है। यह नाटक प्रथम बार 1981 में लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था। यह नाटक लेखक के व्यापक दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है। इस संबंध में नाटक की भूमिका में लेखक का विचार है कि इस नाटक को किसी भी संकीर्ण परिधि में देखना या दिखाना नाटक के साथ अन्याय है।

नाटक की कथावस्तु देश में व्याप्त गरीबी की समस्या पर आधारित है। यह नाटक व्यवस्था विरोध का नाटक नहीं है बल्कि जनसमर्थन का नाटक है। यह उस जन के समर्थन का नाटक है जो सदियों से आज तक व्यापक अपमान और शोषण का शिकार बना हुआ है।

नाटक का आरम्भ नट-नटी संवाद से होता है। नाटक मंडली में नेता सूत्रधार है। सांस्कृतिक महोत्सव चल रहा है जिसमें सत्यमंडली 'गरीबी हटाओ' नाटक का मंचन करती है। नेता और मुख्यमंत्री भी नाटक देख रहे हैं। मुख्यमंत्री अपने उद्घाटन भाषण में कुँआ खोदने का आश्वासन देते हैं।

जिस समय मुख्यमंत्री भाषण दे रहे होते हैं उसी समय कुछ लोग एक औरत को पकड़ कर लाते हैं जो अपने दो बच्चों के साथ कुएँ में कूद रही थी। औरत का आदमी जेल में बंद है जिसे गाँव के सरपंच ने षड्यंत्र से जेल भिजवा दिया था। आदमी के जेल में होने के कारण औरत को बच्चों का पेट पालना मुश्किल हो रहा था। मंच पर भी मुख्यमंत्री उस औरत और आदमी को ही दोषी

मानते हैं। थाने का संतरी उस औरत को पकड़कर थाने ले जाता है जहाँ वही सरपंच और दरोगा उस औरत के साथ बलात्कार करते हैं और उसे जेल में डाल देते हैं।

नाटक में राजतन्त्र के घिनौने क्रियाकलापों का भी चित्रण किया गया है। नाटक में नटी कहती है–

"रंगमहल में राजा के
देखिए क्या होता है,
वासना के कोड़े से,
कौन पिटता रोता है।"[151]

नाटक में राजा विलासी प्रवृत्ति का है। उसके सिपाही एक औरत और आदमी को पकड़कर लाते हैं। औरत अति सुन्दर है और राजा की निगाह उस पर लग जाती है। राजा औरत से कहता है–"खुश हो औरत, कि तूने मेरे दिल में घर बना लिया।"[152]

औरत महल में रहने को तैयार नहीं है उधर आदमी भी औरत को महल में छोड़ने को तैयार नहीं है। वह राजा का विरोध करता है जिसके कारण उसे जेल में डाल दिया जाता है। अंत में औरत को विवश होकर महल में रहना पड़ता है जहाँ लोकतन्त्र की तरह ही राजतन्त्र में भी औरत का शीलहरण होता है।

नाटक के अंत में नेता रूपी सूत्रधार आकर नाटक बंद कर देता है और कहता है–"मैंने कहा था, 'गरीबी हटाओ' के समर्थन में नाटक करो। तुम उसके विरोध में नाटक करने लगे। विरोध हमारे रहते नहीं चलेगा।"[153]

नाटक में नट स्पष्ट करता है कि राजतन्त्र और लोकतन्त्र गरीबी नहीं हटा सकते, अब तो गरीब ही मिलकर अपनी गरीबी दूर कर सकते हैं। नाटक के अंत में समवेत गान है–

"वो देखो गरीबी हटाने चले हैं
तमाशा नया फिर लगाने चले हैं...........
न अब ढोंग हमसे ये बरदास्त होगा,
हम अपनी भुजाएँ उठाने चले हैं।

गरीबी तमाशा नहीं अब बनेगी,

इस नाटक पे परदा गिराने चले हैं।"[154]

यह नाटक सात दृश्यों में विभक्त है। हर दृश्य नट-नटी के संवाद से शुरू होता है जिसके माध्यम से वस्तु का परिवेश दर्शकों के सामने स्पष्ट हो जाता है। नाटक में वस्तु तीन पक्षों से सम्बद्ध है- गाँव की गरीबी, लोकतन्त्र की मानसिकता और राजतन्त्र की वृत्रि। नाटक के अंत में सर्वेश्वर गरीबों को उत्प्रेरित करने में सफल प्रतीत होते हैं।

4. हिसाब-किताब

यह सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का लिखा गया एक लघु नाटक है। इस नाटक में गरीब व असहाय लोगों पर पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार का वर्णन देखने को मिलता है। नाटक में कुल चार पात्र हैं जो प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

लघु नाटक होने के कारण इसका कथानक भी सीमित है। घटना बाल-कल्याण केन्द्र के बच्चों को भूख लगने पर रोटी न देने की है। केन्द्र संचालक तोंदियल सेठ जो कि पूँजीपति का प्रतीक है, सोचता है कि बच्चों को ज्यादा रोटी मिलने से उनकी आदत बिगड़ जाएगी। आश्रम में रहते हुए बच्चों को बहुत मेहनत करनी पड़ती है लेकिन उन्हें पेटभर रोटी भी नहीं मिलती।

नौकरशाही वर्ग की प्रतीक मास्टरनी भी पूँजीपति वर्ग से मिली है और वह भी बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती है। बच्चों को जो आधी रोटी मिलती है उसे पाने के लिए वे एक-दूसरे से छीना-झपटी करते हैं।

बच्चे जो वास्तव में देश का भविष्य हैं उन्हें अनपढ़ और गँवार समझा जाता है। भूख से व्याकुल बच्चों की नींद गायब हो जाती है। नींद न आने पर उन्हें धमकाया जाता है कि यदि वे समय पर नहीं सोएँगे तो उन्हें सुबह उठने में समस्या होगी। सुबह जल्दी न उठने से वे पूरा काम नहीं कर पाएंगे और पूरा काम नहीं कर पाने से उन्हें रोटी भी नहीं मिलेगी।

इस नाटक में जोकर बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक है। वह बच्चों का मनोरंजन करने के बजाए उन्हें हिसाब समझाता है लेकिन जोकर द्वारा समझाया गया हिसाब

बच्चों की समझ से बाहर है। जोकर सोचता है कि जो जितना गरीब है उसका हिसाब उतना ही कमजोर है।

नाटक के सभी पात्र चाहे वह बुद्धिजीवी वर्ग के हों या नौकरशाही वर्ग के, सभी पूँजीवादी और सत्ताधारियों के नीचे दबे हैं जिनका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं है।

यह नाटक समाज की उन स्वयंसेवी संस्थाओं का भी पर्दाफाश करता है जो जनकल्याण के नाम पर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ साधने में लिप्त हैं।

5. हवालात

यह नाटक भी सर्वेश्वर का एक चर्चित नाटक है जिसमें सर्वेश्वर ने भ्रष्ट व्यवस्था को चित्रित करने का प्रयास किया है। नाटक में तीन युवा लड़कों का चित्रण है जिनमें से एक परीक्षा में असफल हो जाने से निराश है, दूसरा नौकरी न मिलने से हताश है और तीसरा मानवीय दृष्टिकोण रखने के कारण अन्याय का सामना नहीं कर पाता है और परिणामतः दुखी है। तीनों ही समाज को जीने लायक नहीं समझते। नाटक में सर्वेश्वर ने पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट चेहरे को भी बेनकाब करने का प्रयास किया है जो बिना रिश्वत लिए किसी को हवालात भेजने को तैयार नहीं ताकि गर्म इमारत में सर्द और ठिठुरती रात से बचाव किया जा सके।

नाटक में तीनों युवक सोचते हैं कि पुलिस वाले को उकसाने से वह उन्हें जेल में डाल देगा और वहाँ उनकी रात आसानी से कट जाएगी लेकिन वहाँ भी उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। हवालात जाने के लिए उन्हें पुलिसवाले को घूस के रूप में पैसा देना है जबकि उनके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है।

सर्वेश्वर का यह नाटक बेकारी की समस्या पर करारा व्यंग्य है जिसमें नाटककार अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

6. बाल–नाट्य साहित्य

अनेक बड़े नाटकों, एकांकियों व नृत्य नाटकों के साथ ही सर्वेश्वर ने बच्चों के लिए विशेष बाल–नाटकों की भी रचना की है। आज तक जबकि बाल–नाटक व रंगमंच का क्षेत्र अविकसित है, ऐसे में किसी बड़े लेखक या कवि का इस क्षेत्र में

पदार्पण बहुत महत्वपूर्ण है। शायद इसी बात को ध्यान में रखकर सर्वेश्वर ने बाल-साहित्य का सृजन किया। इन बाल-नाटकों में बालकों की स्वभाविक अभिरूचियों व आकांक्षाओं का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। 'कल भात आएगा', 'हाथी की पों' और 'अनाप-शनाप' आदि इसी श्रेणी के बाल-नाटक हैं।

1. कल भात आएगा

इस नाटक में सर्वेश्वर ने व्यवस्था की उस विकृति की ओर संकेत किया है जिसमें आम आदमी लगातार पिसता रहता है। नाटक में कुल तीन पात्र- बम्बा, बच्चा और डाकिया हैं जो क्रमशः लगातार शोषित होती गरीब जनता, भूखी और अभावग्रस्त युवा पीढ़ी और कुशासन के प्रतीक हैं। नाटक में डाकिया बच्चे को पीटता है लेकिन बच्चा धीरे-धीरे उस स्थिति में भी शक्ति संचित कर व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपने साथ बम्बे को भी मिला लेता है।

इस बाल-नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर यह संदेश देने में सफल रहे हैं कि यदि शोषितों द्वारा सत्ता के विरुद्ध संघर्ष लगातार चलता रहे तो भात जो आज शोषकों के हाथ में है कल वह गरीबों को अवश्य प्राप्त हो सकेगा।

2. हाथी की पों

सर्वेश्वर द्वारा रचित दूसरा प्रसिद्ध बाल नाटक 'हाथी की पों' है। यह नाटक अप्रैल 1983 में प्रसिद्ध बाल-पत्रिका 'पराग' में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक का उद्देश्य बच्चों को कर्मशील बनाने की प्रेरणा देना है।

नाटक में एक बूढ़ा व्यक्ति सभी बच्चों को 'हाथी की पों' खोजने के लिए कहता है। बाबा भी इस खोज में शामिल हो जाता है लेकिन 'हाथी की पों' कहीं नहीं मिलती। अन्त में निष्कर्ष रूप में यह तथ्य सामने आता है कि "जिस चीज को भी खोजो पूरी लगन से खोजो। बिना मेहनत के जो मिलता है वही 'हाथी की पों' है। यह दुनिया में सबसे कीमती, सबसे सुन्दर, सबसे बड़ी है, उसे जिस रंग में चाहो उस रंग में खोज लो। खोजो मुझे मिल गई है तुम सब को भी मिल जाएगी।"[155]

3. अनाप-शनाप

सर्वेश्वर द्वारा रचित तीसरा बाल-नाटक 'अनाप-शनाप' है। यह नाटक 'पराग' पत्रिका में सितम्बर 1983 में प्रकाशित हुआ था। नाटक में सर्वेश्वर ने अनाप और शनाप नामक दो विरोधी स्वभाव वाले पात्रों के माध्यम से उनके भिन्न दृष्टिकोणों से उत्पन वैमनस्यता की ओर संकेत किया है। अनाप को जहाँ गाँव की प्राकृतिक जिन्दगी से लगाव है वहीं शनाप इसका विरोधी है। दोनों मकान तो बनाना चाहते हैं परन्तु दोनों के विपरीत स्वभाव के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पाता।

नाटक के अन्त में सर्वेश्वर ने दिखाया है कि जहाँ विचार और धारा न मिलती हो वहाँ दोस्ती नहीं हो सकती। न उन्हें मिलाने से कोई काम होता है। जो होगा, अनाप-शनाप ही होगा।

सर्वेश्वर का इस नाटक के विषय में विचार है कि "यह नाटक मशीनी सभ्यता और पूर्वी सभ्यता के टकराव का नाटक है। इसे अलग-अलग उम्र के बच्चे अपनी-अपनी समझ के हिसाब से जोड़-घटाकर खेल सकते हैं।"[156]

4. भों भों-खों खों

इस नाटक में सर्वेश्वर ने एक कुत्ते और बंदर को नाटक का आधार बनाया है। दोनों आपस में लड़ते हैं और मदारी उन्हें नचाते हुए उनका शोषण करता है। अंत में उन्हें अपनी शक्ति का एहसास होता है तब वे विद्रोह कर देते हैं।

इस नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर बच्चों को यह संदेश देना चाहते हैं कि शोषण से बचने और अपने अधिकारों के लिए अपनी शक्तियों को पहचानना आवश्यक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यह नाटक बच्चों को उनके अधिकारों के प्रति सजग करता है।

5. लाख की नाक

सर्वेश्वर का यह नाटक बाल-मनोविज्ञान पर आधारित है। सर्वप्रथम यह नाटक लिपि प्रकाशन दिल्ली द्वारा सन् 1977 में प्रकाशित किया गया। नाटक में नाक को मर्यादा और ईमानदारी के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है। नाटक की

शुरूआत नट–नटी के गीत द्वारा होती है जिसमें सभी से अपनी नाक कटने से बचने की बात कही जाती है–

'नाक लम्बी हो, नाक छोटी हो,
नाक पतली हो, नाक मोटी हो,
नाक से ही यहाँ जमाना है,
नाक को कटने से बचाना है।"[157]

इस नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर ने बालकों को स्वाभिमान के साथ जीने की प्रेरणा दी है।

2.13 संस्मरण साहित्य

सर्वेश्वर ने हिन्दी साहित्य की आधुनिकतम् विधा 'संस्मरण' में भी अपनी लेखनी चलाई है। संस्मरण गद्य की वह विधा है जिसमें लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन तथा उसके सम्पर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी पक्ष पर स्मृति आधारित प्रकाश डालता है। वस्तुतः संस्मरण व्यक्ति व्यंजक निबन्ध व कहानी के बहुत समीप है।

सर्वेश्वर का सम्पूर्ण संस्मरण साहित्य 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : सम्पूर्ण गद्य साहित्य' भाग–तीन में 'संस्मरण' शीर्षक के अंतर्गत संकलित किया गया है। ये संस्मरण संख्या में उन्नीस हैं जो इस प्रकार हैं– **1.** 'मानवीय करुणा की दिव्य चमक' **2.** 'रघुपति सहाय फिराक' **3.** 'मेरा बचपन और जोश' **4.** 'मलयज नहीं रहे' **5.** 'अपनी भी यह छोटी–सी मौत' **6.** 'साही का बोला हुआ शब्द कौन संजोएगा' **7.** 'मैं चला जाऊँगा' **8.** 'आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का कृतित्व' **9.** 'अनिल कुमार' **10.** 'जीवन वृत्तः दिनकर' **11.** 'सूर्य अस्त हो गया' **12.** 'इवो आन्द्रिच' **13.** 'डब्ल्यू एच. ऑडेन' **14.** 'कवि भी पुलिस अधिकारी भी' (अरूण मुरारका) **15.** 'मानव गरिमा के महान प्रवक्ता– बर्टेण्ड रसेल' **16.** 'देवी शंकर अवस्थी–स्वर्गीय' **18.** 'मैं अतीत ही नहीं भविष्य भी हूँ आज तुम्हारा' **19.** 'पाँच काव्य संग्रह'।

सर्वेश्वर के ये सभी संस्मरण उत्कृष्ट कोटि के हैं। इनमें से अधिकतर संस्मरण विद्वान लोगों के निधन पर लिखे गए हैं जिनमें सर्वेश्वर की निजी अनुभूतियों की सघनता स्पष्ट दिखाई देती है।

2.14 निबन्ध

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गद्य की कसौटी कहा है। सर्वेश्वर ने भी अनेक प्रकार के निबन्ध लिखकर स्वयं को इस कसौटी पर खरा उतारने का प्रयास किया है। उन्होंने गद्य की इस आधुनिक विधा को समृद्ध करते हुए अनेक सफल निबन्ध लिखे। यद्यपि उनके निबन्धों में विषय प्रधान निबन्धों की ही अधिकता है फिर भी कुछ में व्यक्ति प्रकाशन की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। सर्वेश्वर द्वारा रचित प्रमुख निबन्ध हैं– 'अस्वीकार की आधुनिकता', 'शराफत और व्यंग्य', 'अधिकार प्राप्ति के लिए हिन्दी को सड़क पर लाना होगा', 'आलोचना का युग', 'सत्ता और संस्कृति', 'हट री दौड़ि चला बनजारा', 'अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और कविता', 'दृष्टिहीनता और संकीर्णता', 'बरसात के बीच बैल बेचारा', 'हिन्दी साहित्यः दो अतियों के बीच', 'आधुनिकता और समसामायिकता' तथा 'शब्द और खामोशी के बीच' आदि। इन सभी निबन्धों में सर्वेश्वर ने विषय को प्रमुखता दी है। वस्तुतः ये सभी निबन्ध आलोचनात्मक शैली से प्रभावित कहे जा सकते हैं।

सर्वेश्वर के कुछ अन्य निबन्ध 'जाड़ा और जड़ता', 'अपन और क्या चाहें' तथा 'अंधेरे पर अँधेरा' आदि भी हैं। इन सभी निबन्धों में सर्वेश्वर ने एक रचनाकार के दायित्व का निर्वहन करते हुए तथा अपनी रचना दृष्टि की ओर संकेत करते हुए कविता, कहानी, उपन्यास और नाटकों आदि की चर्चित पुस्तकों की समीक्षा की है।

2.15 यात्रा–वृत्त

जब कोई लेखक अपने द्वारा की गई किसी यात्रा का कलात्मक एवं साहित्यिक विवरण प्रस्तुत करता है तो उस रचना को 'यात्रा वृत्त' कहा जाता है। वास्तव में यात्रा वृत्त रचनाकार के व्यक्तिगत यात्रा अनुभव का प्रतिफल होता है। यात्रा साहित्य देखे गए स्थानों का मात्र विवरण ही नहीं होता बल्कि यात्रा के

दौरान दृश्यों एवं स्थलों के साथ बिताए गए क्षणों की अनुभूतियों की क्रमबद्ध और भावप्रवण प्रस्तुति भी होती है। डॉ.रामचन्द्र तिवारी का यात्रावृत्त के विषय में विचार है कि–"इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है।"[158]

सर्वेश्वर का यात्रा–साहित्य राहुल सांकृत्यायन के समान तो नहीं है पर किसी मायने में कमतर कहना भी विवेचित लेखक के साथ अन्याय होगा। सर्वेश्वर का यात्रा–वृत्त उनकी रूस यात्रा पर आधारित है। जिसे 'रूस यात्रा–कुछ रंग कुछ गंध' शीर्षक से 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाः सम्पूर्ण गद्य साहित्य' के भाग–तीन में प्रकाशित किया गया है। इस यात्रावृत्त में सर्वेश्वर ने रूस की शासन व्यवस्था, मानवीय मूल्यों के विस्तार, साहित्य, संस्कृति और वहाँ के खेल–कूद आदि का तथ्यात्मक वर्णन करते हुए तुलनात्मक रूप से भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। इस यात्रावृत्त में कहीं–कहीं लेखक की रचना धर्मिता का भी परिचय मिलता है।

2.16 रेडियो–रूपक

आकाशवाणी से सर्वेश्वर का सदैव ही लगाव रहा। उन्होंने कुछ दिनों तक आकाशवाणी में नौकरी भी की। आकाशवाणी के लिए उन्होंने दस रेडियो–रूपक लिखे। वास्तव में रेडियो–रूपक को 'श्रव्य नाटक' कहा जा सकता है। इन नाटकों में संवादों का उतार–चढ़ाव और संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सर्वेश्वर के रेडियो–रूपक अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं जिनमें संवेदना की गहरी पैठ परिलक्षित होती है। सर्वेश्वर के दस 'रेडियो–रूपक' अग्रलिखित हैं– 'पीली पत्तियाँ'. 'चाँदी की वर्क', 'दो चीनी औरतें', 'यहाँ हम एक हैं', 'बर्फ ने कहा', 'राजकीय सूक्ष्म यंत्रशाला', 'धनिया', 'रामकृष्ण परमहंस', 'पाँच मिनट का नाटक' और 'वे क्या सोचते हैं?'। यह सभी रेडियो–रूपक 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : संपूर्ण गद्य साााहित्य' भाग–दो में संकलित हैं।

2.17 एकांकी

सर्वेश्वर ने नाट्य साहित्य में अपनी सशक्त पहचान बनाई है। नाटक से मिलती–जुलती विभिन्न विधाओं में सर्वेश्वर ने साहित्य–सृजन किया है। ऐसी ही एक

विधा एकांकी है। सर्वेश्वर ने एकांकी साहित्य की रचना अधिक नहीं की है। इस विधा में उन्होंने मात्र दो रचनाएँ –'बुद्ध की करुणा' और 'सत्यवादी गोखले' ही लिखी हैं। दोनों ही एकांकियों के विषय प्रेरक हैं जिनमें महापुरुषों के चरित्र को आधार बनाया गया है। 'बुद्ध की करुणा' शीर्षक एकांकी में जहाँ महात्मा बुद्ध की करुणा की भावना पर प्रकाश डाला गया है वहीं 'सत्यवादी गोखले' शीर्षक एकांकी गोखले जी की सत्यनिष्ठता पर आधारित है।

2.18 नृत्य–नाटिका

सर्वेश्वर ने साहित्य, कला और संगीत का समन्वय करते हुए नृत्य–नाटिकाओं की रचना की है। इन नृत्य–नाटिकाओं को सफलतापूर्वक रंगमंच पर मंचित भी किया गया। ये नृत्य–नाटिकाएं संख्या में चार हैं– 'रूपमती बाजबहादुर', 'होली धूम मच्यो री', 'सावन घन आए' और 'रक्षा बन्धन'। इनमें नृत्य की आंगिक चेष्टाओं तथा गीत एवं संवादों द्वारा प्रस्तुति की गई है। इन नृत्य–नाटिकाओं में श्रृंगार–रस प्रधान है। इनमें वाद्य–यन्त्रों का भी उल्लेख किया गया है।

2.19 आत्मलेख

यद्यपि आत्मकथा से सम्बन्धित सर्वेश्वर की कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं है फिर भी आत्मकथा की तरह सर्वेश्वर ने छोटे–छोटे कुल आठ लेख लिखे हैं। इन लेखों में उन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के साथ ही साहित्यिक भाषा के विविध पड़ावों पर प्रकाश डाला है। सर्वेश्वर के आत्मलेख 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेनाः सम्पूर्ण गद्य साहित्य' भाग–तीन में संग्रहित हैं। सर्वेश्वर के ये आठ आत्मलेख हैं– 'परिचय अपना और अपनी कहानी का', 'मेरा क्रान्तिकारी जीवन', 'एक शाम की यात्रा', 'कुआनो नदी–खतरे के निशान पर', 'ईश्वर का जन्म और मृत्यु', 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से लिया गया साक्षात्कार', 'मेरी कविताओं में प्रेम', तथा 'कुछ खत'। ये आत्मलेख सर्वेश्वर के आत्मविश्लेषण के साथ–साथ उनकी बाह्य जगत से संबंधित क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं पर आधारित हैं।

2.20 आलोचना

सर्वेश्वर के आलोचना साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम साहित्य के संदर्भ में अपनी मान्यता व्यक्त करने के लिए लिखी गई

आलोचना और द्वितीय स्वतन्त्र रूप से साहित्यिक कृतियों पर लिखी गई आलोचना। पहले वर्ग के अंतर्गत सर्वेश्वर ने काव्य के स्वरूप और अपनी रचनाधर्मिता तथा उसकी प्रक्रिया पर विचार व्यक्त किए हैं। सर्वेश्वर का विचार था कि कविता का जो स्वरूप होना चाहिए उसका सर्वथा अभाव है।

अतः इन आलोचनाओं में सर्वेश्वर ने कविता के वास्तविक स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया है। 'अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और कविता' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने रचनाकार के दायित्व बोध को संदर्भित किया है। 'हिन्दी साहित्यः दो अतियों के बीच' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने आलोचनात्मक दृष्टिकोण से साहित्य की कलावादी और जनवादी दृष्टि के बीच फंसे हिन्दी साहित्य पर समालोचक दृष्टि डाली है। यदि एक दो कहानियों और कविताओं को छोड़ दिया जाए तो सर्वेश्वर ने तत्कालीन समय की सभी प्रमुख रचनाओं पर अपनी अलग से समीक्षा प्रस्तुत की है। इनमें कुछ प्रमुख समीक्षित पुस्तकों और उनके रचनाकारों के नाम निम्नवत् हैं-

'लकड़बघ्घा हंस रहा है' (कविता)ः चन्द्रकान्त देवतले, 'अपने लोग' (उपन्यास) : रामदरश मिश्र, 'हम सब मंशाराम' (उपन्यास) : 'मुद्राराक्षस', 'दशरथनंदन' (नाटक) : जगदीश चन्द्र माथुर, 'देशों के घेरे में' (कविता)ः डॉ. सुधा श्रीवास्तव, 'शैल सुता' (उपन्यास) : बृजेन्द्र शाह, 'अंधे मोड़ के आगे' (कहानी) : राजी सेठ, 'मकान' (उपन्यास) : श्री लाल शुक्ल, 'पारो' (उपन्यास) : नागार्जुन, 'टूटते-बिखरते लोग' (उपन्यास) : योगेश कुमार, 'आदमी का जहर' (उपन्यास) : श्री लाल शुक्ल, 'दूसरा दरवाजा' (नाटक) : डॉ लक्ष्मी नारायण लाल, 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (कविता) अज्ञेय, 'अलग-अलग वैतरणी' (उपन्यास) : शिव प्रसाद सिंह, 'अनन्तर' (उपन्यास)ः जैनेन्द्र, 'सपाट चेहरे वाला आदमी' (कहानी) : दूधनाथ सिंह, 'पेपरवेट' (कहानी) : गिरिराज किशोर, 'बुनी हुई रस्सी' (कविता) : भवानी प्रसाद मिश्र, 'मरजीना' (नाटक) : मुद्राराक्षस आदि। ऐसी ही कई अन्य रचनाओं की भी सर्वेश्वर ने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से गहन पड़ताल की है।

सर्वेश्वर ने सिर्फ हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से सम्बन्धित पुस्तकों की ही आलोचना प्रस्तुत नहीं की बल्कि उन्होंने रूसी, जापानी, यूनानी और अंग्रेजी

साहित्य की कई चर्चित कृतियों का भी मूल्यांकन किया। सर्वेश्वर के आलोचनात्मक लेखों में 'आलोचना का युग', 'निराला का व्यक्तित्व : एक अध्ययन', 'शराफत और व्यंग्य' तथा 'अस्वीकार की आधुनिकता' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

2.21 हिन्दी पत्रकारिता

साहित्यकार और पत्रकार का समाज से गहरा रिश्ता होता है। दोनों ही मानव व समाज के हितार्थ लेखन करते हुए नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अन्तर मात्र शैली का होता है। साहित्यकार जहाँ शब्द-विस्तार पर बल देता है वहीं पत्रकार किसी तथ्य को कम से कम व सरल शब्दों में अभिव्यक्त करने में कुशल होता है। सर्वेश्वर के सृजन में ये दोनों ही विशेषताएं देखी जा सकती हैं। उनकी पत्रकारिता दृष्टि यथार्थपरक और सत्यता के अधिक निकट है। वास्तव में सर्वेश्वर की पत्रकारिता को साहित्यिक पत्रकारिता की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। 'दिनमान' एवं 'पराग' सर्वेश्वर द्वारा संपादित बहुचर्चित पत्रिकाएं हैं जिनमें सर्वेश्वर के इस कौशल को देखा जा सकता है। 'दिनमान' पत्रिका में सर्वेश्वर 'सहायक संपादक' के पद पर कार्यरत थे जबकि बाल-पत्रिका 'पराग' के वे प्रधान संपादक थे। साहित्य और पत्रकारिता की गौरवशाली परम्परा को आगे बढ़ाने में सर्वेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान है। सर्वेश्वर ने अपने लेखों और टिप्पणियों के माध्यम से न सिर्फ पत्रकारिता को एक नई दिशा दी बल्कि साहित्य और पत्रकारिता के भेद को भी मिटाने का प्रयास किया। 'दिनमान' के 'चरचे और चरखे' स्तम्भ के अंतर्गत उन्होंने साहित्य, समाज और राजनीति के विभिन्न पक्षों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। इस स्तम्भ में उनके सौ से अधिक लेख प्रकाशित हुए जिनमें उन्होंने समाज की किसी न किसी समस्या को प्रस्तुत करते हुए उसका सम्यक् हम निकालने का प्रयास किया है। 'जूते और जबान की जुगलबंदी' में जहाँ बिहार प्रेस विधेयक की समस्या को उठाया गया है वहीं 'दशहरा और रावण' में देश में बढ़ रहे अन्याय को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा 'एक अदृश्य गाय', 'अखिल भारतीय बकरा यूनियन', 'नैतिकता की तलाश', 'बंदूक के सामने एक सपना', 'रायल्टी का घपला', 'धमकियाँ और चपत' और 'बलात्कार का मुआवजा' आदि सतम्भों में भी सर्वेश्वर ने भारतीय जीवन शैली, भ्रष्टाचार, पश्चिमी सभ्यता का

अंधानुकरण करता युवा वर्ग और नारी मुक्ति जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों को उद्‌घाटित किया है।

बाल-पत्रिका 'पराग' के प्रधान सम्पादक रहते हुए सर्वेश्वर ने बाल-सुलभ समस्याओं और उनके चारित्रिक विकास सम्बन्धी विषयों को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं तो पराग के सम्पादकीय स्तम्भ ऐसे प्रतीत होते हैं मानो इन्हें किसी छोटे बालक ने ही लिखा हो।

निष्कर्षतः मैं कह सकता हूँ कि पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सर्वेश्वर एक निष्ठावान और पूर्ण कुशल पत्रकार सिद्ध हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. दिनमान : संपादक-नेमिचन्द्र जैन, 2-8 अक्टूबर 1983, पृष्ठ-31

2. काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-8

3. तीसरा सप्तक : संपादक-अज्ञेय, पृष्ठ-207

4. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-106

5. नई कविता-नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ-104

6. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-112

7. वही, पृष्ठ-115

8. नई कविता-नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ-179

9. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-125

10. वही, पृष्ठ-24

11. वही, पृष्ठ-48

12. वही, पृष्ठ-51

13. नई कविता-नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ-75

14. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-20

15. वही, पृष्ठ-56

16. वही, पृष्ठ-113

17. वही, पृष्ठ-61

18. वही, पृष्ठ–13

19. वही, पृष्ठ–18

20. वही, पृष्ठ–23

21. प्रयोगवाद और नयी कविता : डॉ.शम्भुनाथ सिंह, पृष्ठ–198-199

22. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–30

23. वही, पृष्ठ–35

24. नयी कविता–नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–115

25. काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–9

26. कविता से साक्षात्कारः मलयज, पृष्ठ–54

27. बाँस का पुल : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–1

28. मेरा समर्पित एकान्त : नरेश मेहता, पृष्ठ–349

29. सर्वेश्वर का काव्य–संवेदना और सम्प्रेषण : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–44

30. कविताएँ–एक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–138

31. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–159

32. वही, पृष्ठ–222

33. वही, पृष्ठ–220

34. नयी कविता–नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–331

35. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–181

36. वही, पृष्ठ–205

37. वही, पृष्ठ–220

38. वही, पृष्ठ–161

39. एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, (भूमिका)

40. वही, पृष्ठ–31

41. रामचरित मानस : तुलसीदास, पृष्ठ–34

42. नयी कविता–नये धरातल : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–335

43. एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–57

44. वही, पृष्ठ–36

45. वही, पृष्ठ–60
46. सर्वेश्वर का काव्य– संवेदना और सम्प्रेषण : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–56
47. एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–30
48. कविता का जीवित संसार : अजित कुमार, पृष्ठ–157
49. एक सूनी नाव : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–4
50. वही, पृष्ठ–6
51. वही, पृष्ठ–47
52. सर्वेश्वर और उनकी कविता : कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–21
53. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–341
54. वही, पृष्ठ–315
55. वही, पृष्ठ–311
56. गर्म हवाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–8
57. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–316
58. नई कविता-स्वरूप और समस्याएँ : डॉ.जगदीश गुप्त, पृष्ठ–275
59. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–345
60. वही, पृष्ठ–371
61. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचनाकर्म : कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–38
62. वही, पृष्ठ–42
63. सर्वेश्वर और उनकी कविता : कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–24
64. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावलीः संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–15
65. वही, पृष्ठ–15-16
66. वही, पृष्ठ–25
67. वही, पृष्ठ–26
68. वही, पृष्ठ–28
69. वही, पृष्ठ–32
70. वही, (तीसरा सप्तक वक्तव्य), पृष्ठ–5
71. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावलीः संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–40

72. वही, पृष्ठ–45

73. वही, पृष्ठ–112

74. जंगल का दर्द : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–63

75. जनवादी समीक्षा दृष्टि और जनवादी रचनाकार : डॉ.इन्द्र बहादुर सिंह, पृष्ठ–39

76. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावलीः वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–102

77. वही, पृष्ठ–101

78. वही, पृष्ठ–115

79. वही, पृष्ठ–150

80. वही, पृष्ठ–145

81. वही, पृष्ठ–87

82. आलोचना : अर्चना वर्मा, संपादक-शीला सन्धू, अंक- जुलाई-सितम्बर 1978, पृष्ठ–87

83. तीसरा सप्तक (वक्तव्य) : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, संपादक-अज्ञेय, पृष्ठ–203

84. खूँटियों पर टँगे लोग : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–73

85. आलोचना : अर्चना वर्मा, संपादक-शीला सन्धू, अंक- जुलाई-सितम्बर 1978, पृष्ठ–89

86. जंगल का दर्द : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–117

87. नई कविता का आत्मसंघर्ष : मुक्तिबोध, पृष्ठ–33

88. खूँटियों पर टँगे लोग : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–80

89. जंगल का दर्द : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–35

90. खूँटियों पर टँगे लोग : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–18

91. वही, पृष्ठ–35

92. वही, पृष्ठ–114

93. वही, पृष्ठ–86

94. वही, पृष्ठ–119

95. कोई मेरे साथ चले : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–9

96. वही, पृष्ठ–46

97. वही, पृष्ठ–59

98. वही, पृष्ठ–27

99. वही, पृष्ठ–25

100. वही, पृष्ठ–37

101. वही, पृष्ठ–38

102. वही, पृष्ठ–62

103. वही, पृष्ठ–82

104. वही, पृष्ठ–101

105. समकालीन कविता का व्याकरणः डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव, पृष्ठ–14

106. वही–पृष्ठ–14

107. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावलीः संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–5, पृष्ठ–113

108. वही, पृष्ठ–131

109. आलोचना : डॉ.बृजविलास श्रीवास्तव, संख्या–17, पृष्ठ–43

110. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प–विधि : सत्यपाल चुध, पृष्ठ–895

111. सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का मसीहा : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–19

112. वही, पृष्ठ–28

113. वही, पृष्ठ–86

114. वही, पृष्ठ–82

115. वही, पृष्ठ–74

116. सूने चौखटे : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–30

117. वही, पृष्ठ–32

118. वही, पृष्ठ-52

119. वही, पृष्ठ–95

120. वही, पृष्ठ–64

121. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–214

122. काठ की घंटियाँ : अज्ञेय (भूमिका), पृष्ठ– 8

123. सम्पूर्ण गद्य रचनाएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भाग–3, पृष्ठ–13

124. वही, भाग–3, पृष्ठ– 202

125. वही, पृष्ठ– 202

126. सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय : डॉ.कृपाशंकर पाण्डेय, पृष्ठ– 31-32

127. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, भाग–4, पृष्ठ– 36

128. वही, पृष्ठ– 285

129. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ– 206 -07

130. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, भाग–4, पृष्ठ– 51

131. वही, पृष्ठ– 109

132. नई कहानी–संदर्भ और प्रकृति : संपादक–देवी शंकर अवस्थी, पृष्ठ– 101

133. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, भाग–4, पृष्ठ– 59

134. वही, पृष्ठ– 100

135. वही, पृष्ठ– 127

136. वही, पृष्ठ– 141

137. वही, पृष्ठ– 280

138. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना–व्यक्ति और साहित्य : डॉ.कल्पना अग्रवाल, पृष्ठ–165

139. समानान्तर : डॉ.रमेशचन्द्र शाह, पृष्ठ– 214

140. बकरी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (भूमिका), पृष्ठ– 7

141. वही, पृष्ठ– 15

142. आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता : डॉ.सत्यवती त्रिपाठी, पृष्ठ–159

143. बकरी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ– 43

144. वही, पृष्ठ– 55

145. लड़ाई : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ– 9

146. वही, पृष्ठ– 14

147. वही, पृष्ठ– 18

148. वही, पृष्ठ– 27

149. वही, पृष्ठ– 45

150. वही, पृष्ठ– 52

151. अब गरीबी हटाओ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ– 30

152. वही, पृष्ठ– 31

153. वही, पृष्ठ– 47

154. वही, पृष्ठ– 48

155. हाथी की पों : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ– 15

156. सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय : डॉ.कृपाशंकर पाण्डेय, पृष्ठ– 31

157. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रन्थावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-3, पृष्ठ– 293

158. हिन्दी का गद्य साहित्य : डॉ.रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ– 415

अध्याय

3

साहित्य और विचार का अंतःसंबंध

3.1 साहित्य और विचारः अवधारणा तथा स्वरूप

किसी भी रचना की गुणवत्ता, मौलिकता एवं अर्थवत्ता इसमें निहित विचारों में होती है। यह विचार ही रचना को कालजयी बनाते हैं। वास्तव में ऐसी रचनाएं मानव जाति के लिए प्रेरणादायी होती हैं और उन्हें जीवन के विषम मार्ग पर संबल प्रदान करती हैं। इस संदर्भ में हम रामचरित मानस का उदाहरण दे सकते हैं। तुलसीदास स्वयं लिखते हैं–

"जौं बरषै बर बारि विचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू।।"[1]

अर्थात् यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता है तो उससे कवितारूपी श्रेष्ठ मुक्तामणि की प्राप्ति होती है।

भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की किसी भी महत्वपूर्ण रचना पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि उसमें किसी न किसी क्रम में विचार मौजूद होते हैं। प्रत्येक महत्वपूर्ण रचना किसी न किसी वैचारिक दृष्टि से प्रभावित होती है। यद्यपि यहां इस तथ्य को नजरअंदाज करना उचित नही होगा कि वैचारिक दृष्टि के निर्माण में कालगत परिवेश और परिस्थितियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मध्ययुगीन हिंदी भक्ति साहित्य में सामाजिक एकता के लिए सांस्कृतिक समन्वय की महत्वपूर्ण भूमिका है।

साहित्य और विचार का घनिष्ठ संबंध है। साहित्य–सृजन में विचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य मानव के विकास एवं संवेदना की अभिव्यक्ति है। साहित्य की अर्थवत्ता एवं महत्ता विचारों में ही संपुष्ट होती है। वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विचारों को संवेदना के स्तर पर व्यक्त कर रचनाकार

पाठक के साथ एक तादात्म्य स्थापित करता है। हिन्दी साहित्य प्राचीन युग से अब तक विभिन्न विचारधाराओं से जुड़ा रहा जिसका प्रभाव समय-समय पर जनमानस पर पड़ा। कहा गया है कि कोई भी रचनाकार बिना विचारक हुए महान सर्जक नहीं हो सकता। प्राचीनकाल से ही विचारधाराओं का साहित्य की रचना में विशेष महत्व रहा है। यही कारण है कि काव्यशास्त्र की अवधारणाएं साहित्य रचना का प्रतिमान बनी हैं। विदेशों में भी साहित्य को सहजानुभूति की अभिव्यक्ति कहा गया है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण अन्य सामाजिकों को उद्देश्यपूर्वक प्रभावित करने की इच्छा रखता है और इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसे विभिन्न स्थितियों-वस्तुओं-संबंधों के यथार्थ और वस्तुनिष्ठ ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। यह वस्तुनिष्ठ ज्ञान ही व्यक्ति की सक्रियता का आधार होता है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान तथा यथार्थ के प्रति दृष्टिकोण संज्ञानात्मक व्यवहारों को निश्चित करते हैं। "विचारधारा भी, ज्ञान की तरह सामाजिक हितों से उत्पन्न होती है, मगर इन हितों का चरित्र भिन्न है। सबसे आम रूप में विचारधारात्मक चेतना इस सीधी-सादी वास्तविकता से उत्पन्न होती है कि कोई भी उत्पन्न कार्य-कलाप एक निश्चित सामाजिक रूप में अमल आता है, ठोस सामाजिक संबंधों की परिधि में होता है और सामाजिक पात्र (समाज, वर्ग) इन संबंधों को समझने की आवश्यकता महसूस करने लगता है, ताकि वह सामाजिक संबंधों के उक्त रूप को सुदृढ़ बनाए और कायम रख सके अथवा उसको बदल सके।"[2]

संज्ञानात्मक प्रवृत्ति और विचारधारात्मक प्रवृत्तियां भिन्न होती हैं। संज्ञानात्मक प्रवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार तथा हितों से निर्धारित होती है, जबकि विचारधारात्मक प्रवृत्ति उन सामाजिक हितों द्वारा निश्चित होती है जिसमें समाज या वर्ग की व्यवहारिक साझेदारी निहित हो। "विचारधारा सामाजिक चेतना का वह अंग है, जिसका प्रत्यक्ष संबंध समाज के समक्ष उठने वाले सामाजिक कार्यभारों की पूर्ति से है और जिसके द्वारा सामाजिक संबंधों को बदलने या दृढ़ करने में सहायता मिलती है। वर्गीय समाज में विचारधारा का स्वरूप वर्गीय होता है। यानी वह विभिन्न वर्गों के भौतिक हितों की बौद्धिक अभिव्यक्ति है।"[3] इस प्रकार कहा जा

सकता है कि विचारधारा किसी वर्ग विशेष के सामाजिक कार्यभारों को अभिव्यक्ति देने वाली सामूहिक चेतना है, जो सामाजिक हितों, संबंधों को सुदृढ़ करती है।

साहित्य और विचारधारा का घनिष्ठ संबंध होता है। “साहित्य की विचारधारा एक ओर तो साहित्य के प्रतिमानों को रचती है और दूसरी ओर विचारधाराओं का दर्शन साहित्य का आधार बनता है। नाथ और सिद्ध संप्रदाय हिंदी के प्राचीन साहित्य को प्रभावित करते रहे हैं। वेदांत दर्शन ने प्राचीन साहित्य की रचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। संत काव्य अद्वैत पर आधारित है जिसमें ईश्वर को निर्गुण कहा गया है। सूफी संप्रदाय और मसनवी शैली की भी एक विचारधारा है जिसने सूफी प्रेमाख्यानक काव्य को प्रभावित किया है। वेदांत का सगुण सिद्धांत भी भक्ति काव्य को प्रभावित करता रहा है। राम और कृष्ण काव्य इसी के आधार पर लिखा गया। रीतिकाव्य की रचना काव्यशास्त्र के मानकों पर आधारित है।”[4] हिन्दी का आधुनिक काव्य नवजागरण काल विभिन्न आधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित हुआ है। इनमें ब्रमूहसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी जैसी संस्थाओं की अनेक विचारधाराएं शामिल हैं। विचारधाराओं के साथ काव्य रचना की विचारधाराएं भी साहित्य रचना को प्रभावित करती रही हैं।

आधुनिक युग में तो कई काव्य आंदोलन हुए हैं जिनसे इस बात का पता चलता है कि अब साहित्य किसी राष्ट्रीय संदर्भ तक सीमित नहीं है बल्कि विश्व संदर्भ से जुड़ गया है। साहित्य में मार्क्सवाद की विचारधारा इस बात का प्रमाण है। “हिन्दी साहित्य भी मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ और प्रगतिशील लेखक आंदोलन की शुरुआत हुई। मार्क्सवादी विचारधारा ने हिन्दी ही नहीं संसार के सभी प्रगतिशील सृजन को एक नई दिशा दी। हीगल से मार्क्स तक की विचारधारा आदर्श से यथार्थ तक की यात्रा है।”[5]

मार्क्सवाद के उपरांत मनोविश्लेषणवाद ने साहित्य को एक नई दिशा दी। उसने यह प्रमाणित किया कि साहित्य हृदय ही नहीं मन की अभिव्यक्ति है। मन में संवेदनात्मक तत्व होते हैं जिनके कारण साहित्य की रचना होती है। इस प्रकार विचारधारा के प्रभाव के कारण सृजन का संसार ही बदल गया। यहां यह ध्यान

रखना भी आवश्यक है कि साहित्य संवेदना की अभिव्यक्ति है। "पर किसी भी साहित्य को विचारधारा से अलग नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति के स्तर पर जब तक संवेदना अनुभव के संसार से नहीं जुड़ती तब तक साहित्य की रचना नही हो सकती।"[6]

मार्क्सवादी मनोविश्लेषण की भांति अस्तित्ववाद ने भी साहित्य रचना को प्रभावित किया है। "जिस प्रकार मार्क्स ने आर्थिक समता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था उसी के समानान्तर अस्तित्ववाद ने व्यक्ति की स्वतंत्रता को मूल्यवान माना है। हिन्दी की प्रयोगवादी कविता में प्रगतिशीलता और व्यक्ति स्वातंत्र्य के तत्व तो हैं ही साथ ही मनोविश्लेषणवाद ने भी इसे प्रभावित किया है। समकालीन विचारधाराओं का भी व्यापक महत्व रहा है और मानववाद ने मानव के मूल्यों को साहित्य में स्थापित किया है।"[7] आधुनिकता के कारण जीवन प्रणाली बदल गई है और साहित्य भी इससे मुक्त नहीं रह सका है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य में परम्परागत विचारों के साथ समय-समय पर आधुनिक विचारों की भी अभिव्यक्ति हुई है। साहित्य अपने समय की धड़कन को वैचारिकता के साथ ध्वनित करता है।

3.2 विचार और साहित्यः अवधारणा तथा स्वरूप

साहित्य और विचार के पारस्परिक संबंधों पर चर्चा से पूर्व 'विचार' और 'साहित्य' शब्दों का गहन विश्लेषण करना आवश्यक है।

विचार का शाब्दिक अर्थ

विभिन्न शब्दकोशों में विचार शब्द को अलग-अलग ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। प्रो. महेन्द्र चतुर्वेदी के अनुसार-"इन्द्रिय बोध अथवा भावना से भिन्न 'भाव' या 'प्रत्यय' (idea) पर मानसिक केन्द्रीकरण की परिणति है 'विचार'। इन्द्रिय बोध के अतिरिक्त पदार्थों के समस्त अभिज्ञान को 'विचार' शब्द से अभिहित किया जाता है। कभी-कभी इस शब्द को अवधारणा-प्रक्रिया के पर्याय रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। इस दृष्टि से इसकी परिधि में निम्न प्रक्रियाएं आ जाती हैंः अवधारणा, निर्णय तथा तर्क।"[8]

इसी प्रकार नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'लघु हिन्दी शब्द सागर' में विचार का अर्थ–"वह जो सोचा जाए, मन में उठी कोई बात, भावना, ख्याल। मुकदमे की सुनवाई और फैसला।"[9] बताया गया है।

नगेन्द्रनाथ बसु द्वारा संपादित 'हिन्दी विश्व कोश' में विचार का अर्थ है–"विशेषेण चरणं पदार्थादिनिर्णये ज्ञानं वि+चर+घञ्। **1.** वह जो कुछ मन से सोचा जाए अथवा सोचकर निश्चित किया जाए, किसी विषय पर कुछ सोचने या सोच कर निश्चित करने की क्रिया। **2.** वह बात जो मन में उत्पन्न हो, मन में उठने वाली कोई बात, भावना, ख्याल। **3.** तत्वनिर्णय, मुकदमे की सुनवाई और फैसला, यथार्थनिर्णय, निष्पत्ति, मीमांसा, संदिग्ध विषय में प्रमाणादि द्वारा अर्थ–परीक्षा। किसी संदिग्ध विषय का तत्व–निर्णय करने में प्रमाणादि द्वारा संदेह दूर करके जो यथार्थ तत्व–निर्णय किया जाता है, उसे विचार कहते हैं। पयार्य–तर्क, निर्णय, चर्चा, संख्या, विचारणा, चर्च्चन, विचारण, वितर्क, व्यूह, समाधान।"[10]

'आदर्श हिंदी–संस्कृत कोश' में विचार का अर्थ है–" **1.** मतिः, कल्पना, भावना, संकल्पः, तर्कः, मतं, अभिप्रायः। **2.** चिंतनं, ध्यानं, आलोचनं, विचारणं–णा, तत्व–निर्णयः, वितर्कःर्कणं, मनसा कल्पनं, विवेचनं। **3.** व्यवहारदर्शनं, विचारकरणम्।"[11]

रामचन्द्र वर्मा द्वारा संपादित 'मानक हिन्दी कोश' में विचार का अर्थ है–"पुं.{सं. वि. चर् (चलना) +घञ} **1.** किसी चीज या बात के संबंध में मन ही मन तर्क–वितर्क करके कुछ सोचने या समझने की क्रिया का भाव। आगा–पीछा। ऊंच–नीच आदि का ध्यान रखते हुए कुछ निश्चय करने की क्रिया। जैसे तुम ही इस बात पर विचार कर लो। **2.** उक्त प्रकार की क्रिया के फलस्वरूप किसी बात या विषय के संबंध में मन में बनने वाला उसका चित्र। सोच–समझकर स्थिर की हुई भावना। ख्याल। (आइडिया) जैसे- (क) मेरे मन में एक और विचार आया है। (ख) इस पुस्तक में आपको बहुत से नए विचार मिलेंगे। **3.** कोई प्रश्न सामने आने पर उसके संबंध में कुछ निर्णय करने के लिए उसके सब अंग अच्छी तरह तर्क करते हुए देखना या समझना। (कन्सिडरेशन) **4.** दो विरोधी दलों, पक्षों, मतों आदि के विवादास्पद विषय के संबंध में कुछ निश्चय करने से पहले किसी न्यायालय या

विचारशील व्यक्ति के द्वारा होने वाली सब अंगों और बातों की जांच-पड़ताल। फैसले के लिए मुकदमे की सुनवाई। **5.** घूमना-फिरना, विचरण।"[12]

'नालन्दा विशाल शब्द सागर' में विचार का अर्थ -"{संज्ञा पु.} **1.** वह जो मन में सोचा या सोचकर निश्चित किया जाए। संकल्प। **2.** मन में उठने वाली कोई बात। भावना। खयाल **3.** किसी बात के सब अंग देखना या सोचना-समझना। **4.** मुकदमें की सुनवाई और फैसला।"[13] आदि बताया गया है।

'प्रभात बृहत् हिंदी शब्दकोश' में विचार का अर्थ है-"{सं.वि. √चर्+घञ्}पु. **1.** वह जो किसी वस्तु/विषय/बात के संबंध में बुद्धि से सोचा जाए या सोचकर निश्चित किया जाए। निश्चयात्मक बोध। समझ **2.** उक्त क्रिया से किसी वस्तु/विषय/बात के संबंध में बना मानसिक चित्र। समझकर स्थिर की हुई धारणा। **3**. मन में उठने वाली बात। ख्याल। **4.** (किसी बात के विषय में कुछ निश्चित करने के लिए मन में ही किया जाने वाला) चिंतन/मनन। **5**. तत्व-निर्णय **6**. परीक्षा/जांच **7**. संदेह/शंका। **8**. विरोधी पक्षों/दलों/मतों/व्यक्तियों आदि के विषय में न्यायकर्ता का वह कार्य जिसमें सबकी बातें सुनकर न्याय किया जाए/निर्णय/फैसला/(विधिक) निर्णय के लिए जांच-पड़ताल तथा मुकदमें की सुनवाई।"[14]

वास्तव में विचार, ख्याल या मत शब्द सामान्यतः एक जैसे अर्थ देने वाले प्रतीत होते हैं परन्तु इनमें मौलिक अंतर है। जहां उपार्जित या ग्रहीत विचारों में परिपक्वता की कमी हो, वहां वे ख्याल या मत कहलाते हैं। अक्सर लोग जब किसी स्थिति में सुविचारित आधार के बिना बात करते हैं तो 'मेरा मत' या 'ख्याल' का प्रयोग करते हैं जबकि "विचार निश्चित धारणा की स्थिति का परिचायक है। धारणा में केवल विचार ही निश्चित रहता हो ऐसा भी नहीं है। विचार और भाव एक दूसरे में मिश्रित होकर रहते हैं। शुद्ध विचार में भाव का मिश्रण नहीं रहता। हमें उसको पृथक ही मानना चाहिए। ऐसे विचार प्रत्ययात्मक होते हैं।"[15]

विभिन्न क्षेत्रों में विचार की परिभाषा भी भिन्न मानी जाती है, "अधिभौतिक इतिहासवाद के अंतर्गत विचार का स्वरूप दर्शन है, सौन्दर्यबोधात्मक इतिहासवाद के

अंतर्गत विचार का स्वरूप कला है, प्रकृतिवादी इतिहासवाद के अंतर्गत यह पाजिटिव विज्ञान (समाजशास्त्र) है, अनुभववादी या वस्तुनिष्ठ इतिहास के अंतर्गत यह अनुभवपरक विज्ञान है।"[16]

इस प्रकार विचार अपने क्षेत्र और उद्‌देश्य विशेष को लेकर अपने पृथक नाम और काम से जाना जाता है।

इसी प्रकार विचारधारा भी विचारों की श्रृंखला मात्र नहीं होती है। विचार जहां व्यक्ति के स्वयं के अनुभव से उद्‌भूत होते हैं और स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं, वहीं विचारधारा एक निश्चित मूल्यपद्धति के प्रति अपने श्रद्धाभाव का रूप है, जिसे कोई व्यक्ति अपनी भावात्मक सत्ता की सुरक्षा के लिए अपनाता है। यों विचार संस्कृति के नए-नए रूप गढ़ते हैं और संस्कृति इन अर्थों में एक विचारधारा बनती है। यहां विचार की अवधारणा एवं स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी के पश्चात साहित्य के स्वरूप को जान लेना उचित होगा।

साहित्य का शाब्दिक अर्थ : साहित्य का व्युत्पत्ति अर्थ

साहित्य शब्द के अर्थ के संबंध में प्रो. महेन्द्र चतुर्वेदी का विचार है कि- "साहित्य शब्द के दो अर्थ हैं। व्यापक अर्थ में, जो कुछ भी लिखित रूप से उपलब्ध होता है, वह सब साहित्य है। संकुचित अर्थ में, साहित्य से केवल काव्य का अर्थ लिया जाता है, जिसके अंतर्गत उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि आते हैं। अन्य ज्ञान साधनाओं से साहित्य इस बात में भिन्न है कि उसमें केवल विषय पर ही बल नही दिया जाता, वरन् शब्द पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है और शब्दों को विविध प्रकार से चमत्कारपूर्ण बनाने का सजग प्रयास किया जाता है। दूसरी बात यह है कि साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की जैसी स्पष्ट झलक लक्षित होती है वैसी अन्य ज्ञान-साधनाओं में नहीं। साहित्य की उपयोगिता के संबंध में तीव्र मतभेद हैं। कुछ विद्वान साहित्य की केवल कलागत उपयोगिता स्वीकार करते है। कुछ विद्वान इसकी जीवनगत उपयोगिता को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और उसमें लोक हित की सजग प्रतिष्ठा अनिवार्य मानते हैं। 'साहित्य' शब्द के मूल में 'सहित' या 'हित' का भाव माना जाता हैः वह जो संगठन करता है अथवा जो लोकहित की भावना से अनुप्राणित है। वस्तुतः उसके दोनों रूप

उपयोगी हैं और दोनों पर ही बल देना चाहिए। साहित्य का महत्व इसी बात से सिद्ध है कि किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति के उत्सर्ग का आधार वहां का साहित्य ही होता है। साहित्य में जनता और समाज की चित्तवृत्तियां, आकांक्षाएं आदि संचित रहती हैं।”[17]

‘लघु हिन्दी शब्द सागर’ में साहित्य का अर्थ है–“सहित का भाव, एकत्र होना। वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें उनका एक ही क्रिया से अन्वय होता है। गद्य और पद्य सब प्रकार की रचनाएं, ऐसी रचनाओं के ग्रंथ, वाङ्मय। देश या काल की उन समस्त लिखी बातों का समूह जो मार्मिक प्रभावों या रसात्मक व्यंजना के लिए महत्वपूर्ण है। लिखित बातें। काम्यशास्त्र। विक्रेय या अन्य उपयोगी वस्तुओं का विवरणात्मक परिचय, इस प्रकार की परिचय पुस्तिका।”[18] बताया गया है।

‘आदर्श हिन्दी-सस्कृत-कोश’ के अनुसार साहित्य का अर्थ है–“**1.**वाङ्मयं, सारस्वतं, ग्रंथसमूह, **2.**संगति, संमिलनं, **3.**साहित्य-अलंकार-शास्त्रम्।”[19]

‘हिन्दी विश्व कोश’ के अनुसार साहित्य का अर्थ है–“**1.**एकत्र होना, मिलना, **2.**वाक्य में पदों का एक प्रकार का संबंध जिसमें वे परस्पर अपेक्षित होते हैं और उनका एक ही क्रिया से अन्वय होता है। **3.**किसी एक स्थान पर एकत्र किए हुए लिखित उपदेश, परामर्श या विचार आदि; लिपिबद्ध विचार या ज्ञान। **4.**गद्य और पद्य सब प्रकार के उन ग्रंथों का समूह जिसमें सर्वजनीय हित संबंधी स्थायी विचार रक्षित रहते, वे समस्त पुस्तकें जिनमें नैतिक सत्य और मानव भाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किए गए हों।”[20]

‘मानक हिंदी कोश’ में साहित्य का अर्थ है–“ पुं.{ सं.} **1.**‘सहित’ या साथ होने की अवस्था या भाव। एक साथ होना, रहना या मिलना। **2.**वे सभी वस्तुएं जिनका किसी कार्य के संपादन के लिए उपयोग होता है। आवश्यक सामग्री। जैसे–पूजा का साहित्य=अक्षत, जल, फूल-माला, गंध-द्रव्य आदि। **3.** किसी भाषा अथवा देश के उन सभी (गद्य और पद्य) ग्रन्थों, लेखों आदि का समूह या सम्मिलित राशि, जिसमें स्थायी, उच्च और गूढ़ विषयों का सुंदर रूप से व्यवस्थित विवेचन हुआ हो। (लिटरेचर)। **4.**वे सभी लेख, ग्रंथ आदि जिनका सौंदर्य गुण, रूप या

भावुकतापूर्ण प्रभावों के कारण समाज में आदर होता है। **5.** किसी विषय, कवि या लेखक से संबंध रखने वाले सभी ग्रंथों और लेखों आदि का समूह। **6.**किसी विषय या वस्तु से संबंध रखने वाली सभी बातों का विस्तृत विवरण जो प्रायः उसके विज्ञापन के रूप में बंटता है। जैसे- किसी बड़े ग्रंथ, संस्था, यंत्र आदि का साहित्य। (लिटरेचर) **7.**गद्य और पद्य की शैली और लेखों तथा काव्यों के गुण-दोष, भेद-प्रभेद, सौंदर्य अथवा नायिका-भेद और अलंकार आदि से संबंध रखने वाले ग्रंथों का समूह।"[21]

'प्रभात बृहत् हिंदी शब्दकोश' के अनुसार साहित्य का अर्थ है- "{सं.सहित+ब्यञ्]}पु. **1.** सहितता। साथ **2.** शब्द और अर्थ की सहितता **3.** सभी सार्थक शब्द **4.** भागों और विचारों की समष्टि। विचारों, भावों और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति का लिखित रूप जो समाज के लिए हितकारी है। वाङ्मय। जैसे-साहित्य समाज का दर्पण है। **5**. किसी विषय के प्रतिपादक ग्रंथों का समूह। शास्त्र। जैसे-दार्शनिक साहित्य; विज्ञान साहित्य। **6.** अनुभुति प्रधान ग्रंथों का समूह। जैसे-नाट्य-साहित्य, उपन्यास साहित्य। **7.** गद्यात्मक, पद्यात्मक या मिश्रित रचना। **8.** भाषा विशेष या रचयिता विशेष या विषय विशेष की सब कृतियां। जैसे-संस्कृत-साहित्य; तुलसी-साहित्य; ज्योतिष-साहित्य; निबंध-साहित्य; आलोचना-साहित्य। **9.** समस्त ग्रंथों का समूह।"[22]

प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'साहित्य-सहचर' में 'साहित्य' शब्द के संबंध में लिखा है कि "साहित्य शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। इस प्रकार साहित्य शब्द का अर्थ हुआ 'साथ-साथ' रहने का भाव।"[23] हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य शब्द के संकीर्ण और व्यापक दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला है। आचार्य द्विवेदी का विचार है कि "किसी खास विषय की समस्त पुस्तकें उस विषय का साहित्य कहलाती हैं। जैसे ज्योतिष का साहित्य कहने से ज्योतिष विषय की सब पुस्तकें समझी जानी चाहिए।"[24] इस संबंध में वह साहित्य के संकीर्ण अर्थ को स्वीकार नहीं करते। बल्कि उनका विचार है कि साहित्य शब्द की व्यापकता केवल पुस्तकों तक ही

सीमित नहीं है वरन् साहित्य के अंतर्गत वह 'लोक-साहित्य को भी मान्यता प्रदान करते हैं।

प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'साहित्य' के संबंध में विचार है कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[25]

साहित्य और विचार के संबंध में विभिन्न अर्थों और तथ्यों को जान लेने के पश्चात मैं 'विचारधारा' शब्द पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। विचारधारा शब्द का जनक फ्रांसीसी दार्शनिक 'ट्रेसी' (Detutt de Tracy) को माना जाता है। उनके अनुसार 'विचारधारा प्राणीविज्ञान का एक भाग है।' जबकि प्रसिद्ध आलोचक 'टेरी इगल्टन' मानते हैं कि विचारधारा की कोई परिभाषा संभव नहीं है। फिर भी उन्होंने अपनी पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू आइडियोलॉजी' में विचारधारा के संबंध में कुछ प्रचलित परिभाषाएं उद्धृत की हैं।

इनमें से एक प्रसिद्ध परिभाषा मार्क्सवादी चिन्तकों की अवधारणा पर आधारित है। इस अवधारणा के अनुसार विचारधारा को विभ्रम, मिथ्या चेतना, विकृति आदि अर्थों में समझा गया है। मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'जर्मन आइडियोलॉजी' में विचारधारा की विशेषता बताई है कि 'इसमें मनुष्य और उसकी परिस्थितियां सर नीचे और पैर ऊपर किये दिखाई देती हैं।' इस विचारधारा में मार्क्स ने विचार को 'छद्म चेतना' कहा है जिसमें कल्पना की अधिकता होती है और वह एक आधार पर खड़ी होती है। इस संबंध में मार्क्स का विचार है कि यहां यथार्थ की वास्तविकता की अपेक्षा यथार्थ का भ्रम अधिक होता है। इस प्रकार मार्क्स के अनुसार विचारधारा यथार्थ से संबंधित तो होती है लेकिन उसमें यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब बनता है। लेकिन यहां यह विचारणीय है कि मार्क्स, एगेल्स ने जहां भी विचारधारा को छद्म चेतना, भ्रम या यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब कहा है वहां मुख्य रूप से धर्म और दर्शन की चर्चा की गयी है कला और साहित्य की नहीं।

मार्क्स और एंगेल्स द्वारा विचारधारा को 'छद्‌म चेतना' कहे जाने के विषय में रामविलास शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मार्क्स और पिछड़े हुए समाज' में लिखा है–"इसमें कोई संदेह नहीं कि विचारधारा शब्द का प्रयोग मार्क्स और एंगेल्स ने उल्टी समझ, मिथ्या प्रतीति के लिए किया था। इस अर्थ में विचारधारा औद्योगिक क्रांति के पहले की चीज है, इस क्रांति के बाद वह समाप्त हो जाती है।"[26] मार्क्स ने आगे चलकर अपनी पुस्तक 'ए कण्ट्रीब्यूशन टू दी क्रिटीक ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' में इस विषय में संशोधन भी किया है। यहां मार्क्स ने विचारधारा को एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ की विशिष्ट सामाजिक चेतना स्वीकार किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्स और एंगेल्स की विचारधारा मात्र विचारों की धारा ही नहीं है बल्कि उसमें आस्था, विश्वास, विचार और मूल्य चेतना का भी योग है।

इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह के विचारों से अवगत होना भी प्रासंगिक होगा। उनका विचार है कि –"जर्मन आइडियोलॉजी का एक और अर्थ भी है जिसे हम लोग भूल जाते हैं। पश्चिमी चिन्तन परम्परा के केन्द्र में है आइडिया। कहते हैं ये तो आइडिया से चलेगा, ये तो आइडिया है। आइडिया, आइडियालिज्म, आइडियोलॉजी– ये पश्चिमी चिन्तन परम्परा है। हमारी चिन्तन परम्परा में 'दर्शन' शब्द है। फिलॉसफी का अर्थ और दर्शनशास्त्र का अर्थ, दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। हम लोग दिमाग पर जोर नहीं देते, हम लोग आँख पर जोर देते हैं–देखना, दृष्टि। इसलिए 'विचारधारा' शब्द के जो खतरे हैं, वो सारे खतरे पश्चिमी चिन्तन परम्परा का अनुवाद करने के कारण हमारे यहां उपस्थित हैं।"[27] उनका विचार है कि विचारधारा की सारी की सारी बहस दृष्टिकोण से जुड़ती है। जीवन और जगत को हम अलग–अलग कोणों से देखते हैं और बहस करते हैं कि सच यही है। इसलिए एक ही सच है। कोण एक से अलग–अलग होता है, कोण में नोक होती है और ये नोक है दिखाई पड़ना। इसलिए साहित्य केवल इन्द्रियबोध है। सुन्दर को, असुन्दर को देखने–दिखाने की शक्ति ही उसमें नहीं होती है।

यहां पर मैं प्रसिद्ध लेखक अमृतराय की पुस्तक 'विचारधारा और साहित्य' पर संक्षिप्त चर्चा कर लेना प्रासंगिक समझता हूँ। पुस्तक की भूमिका में लेखक ने कहा है कि "साहित्य की सामाजिक सोदेश्यता और साहित्यकार की पक्षधरता को संकीर्ण ढंग से परिभाषित करना साहित्य के लिए और प्रगतिशील जनवादी साहित्य आंदोलन के लिए अनिष्टकारी ही नहीं है, मार्क्स-एंगेल्स के प्रति भी अन्याय है। अच्छा होता कि अब इस बात को दुहराने की जरूरत न रह गयी होती, पर लगता है अभी उस वामपंथी संकीर्णता से हमें मुक्ति नहीं मिल सकी है।"[28] वास्तव में इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जब कोई विचारधारा व्यक्तिमानस में रच-बस जाती है तो वह मानसिक बनावट का अंग बन जाती है, बल्कि उसमें घुलकर वह मानस को एक रूप देती है। ऐसा होने पर वह मनुष्य के विवेक से भी अभिन्न हो जाती है। इस प्रक्रिया के कारण ही लेखक का यह विचार भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि 'अनुशासन और अंकुश रचनाकार के अपने विवेक के भीतर से आना चाहिए'। वस्तुतः विचार और विचारधारा सापेक्ष रूप में स्वतंत्र होती है। इस रूप में विचारधारा की व्यक्तिगत भूमिका भी होती है। वह वर्गीय एवं सामुदायिक होते हुए भी व्यक्तिमानस में ही सक्रिय होती है और व्यक्ति के व्यवहार के माध्यम से प्रकट होती है। इसलिए मार्क्सवादी चिंतन विचारधारा के निर्माण में व्यक्ति-मानस की भूमिका से इंकार नहीं कर सकता।

विचारधारा की दूसरी महत्वपूर्ण अवधारणा के अंतर्गत इसे विचारों के प्रभाव के अर्थ में समझने का प्रयास किया जाता है। यहां इसके सत्य या मिथ्या विषय पर ध्यान देने की अपेक्षा सामाजिक जीवन में विचारों के क्रियाकलापों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। मार्क्सवादी चिन्तक टेरी इगल्टन के अनुसार विचारधारा संबंधी दोनों परंपराओं से हमें विचारधारा की एक समझ प्राप्त करने की आवश्यकता है। उनका मानना है कि विचारधारा केवल विश्वास पद्धति से ही संबंधित नहीं होती बल्कि उसमें सत्ता का प्रश्न भी अंतर्निहित है।

डॉ.ओमप्रकाश ग्रेवाल का विचार है कि-"एक वर्ग विशेष के सामूहिक राजनीतिक कार्यक्रम को ही नहीं बल्कि व्यक्ति की समूची चेतना के वर्गीय स्वरूप को हमें विचारधारा की संज्ञा देनी चोहए। विचारधारा व्यक्ति के अनुभव का कोई

ऐसा अंश नहीं है जिसे हम उसके शेष अनुभव से अलग कर सकते हैं, बल्कि यह उसके समूचे अनुभव का एक विशिष्ट और आधारभूत आयाम है। सचेष्ट, सुचिन्तित और सुव्यवस्थित बौद्धिक निष्कर्षों के अलावा विचारधारा हमारी भावनाओं के धरातल पर भी सक्रिय रूप से विद्यमान रहती है। व्यक्ति, वस्तु, जगत को (जिसमें उसका अपना व्यक्तित्व भी शामिल है) जिस रूप में देखता-समझता है और महसूस करता है, उस रूप की विशिष्टता को लक्षित करने के लिए ही हमें विचारधारा की अवधारणा की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति की वर्गगत-भूमिका उसकी चेतना की सीमाएं निर्धारित करती है, उसी के आधार पर वस्तुजगत की एक विशिष्ट प्रकार की छवि उसकी चेतना में उभरकर आती है जिसमें वस्तुजगत के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष या तो पूर्णतया अलक्षित रह जाते हैं या फिर विकृत रूप में ही प्रतिबिंबित हो पाते हैं। इसी वर्गगत भूमिका के आधार पर व्यक्ति यह तय करता है कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश में किस प्रकार का परिवर्तन लाया जा सकता है और उसके लिए उसे क्या करना चाहिए। इस प्रकार उसकी समूची चेतना की परिधि-जिसमें उसका दृष्टिकोण, उसकी चिन्तन पद्धति और उसकी भावनाओं की दिशा शामिल है-उसकी वर्गगत भूमिका से निश्चित होती है। जब हम विचारधारा की बात करते हैं तो हमारा ध्यान उसकी चेतना, अर्थात् उसके दृष्टिकोण और उसकी संवेदना की उन सीमाओं की ओर होता है जिनके अंदर वह अपनी वर्गगत स्थिति के कारण अनिवार्य रूप से बंधा रहता है और जिसका अतिक्रमण करना उसके लिए एकदम असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य होता है।"[29]

इस प्रकार यदि साहित्य और विचार के संबंध में उपर्युक्त परिभाषाओं, अर्थों और विभिन्न विद्वानों के विविध कथनों का विश्लेषण किया जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि मन में उठने वाली कोई भावना, ख्याल या बात को ही मुख्यतः विचार कहा गया है। यह विचार जब लिखित स्वरूप धारण कर लेते हैं और इनमें लोक हित की भावना का भी समावेश हो जाता है तो यह विचार साहित्य कहलाते हैं। यहां इस तथ्य पर मै पुनः प्रकाश डालना चाहूंगा कि इन विचारों के निर्माण में अनेक कारक महत्वपूर्ण होते हैं चाहें वह सामाजिक कारक

हों, सांस्कृतिक कारक हों, राजनीतिक कारक हों, धार्मिक कारक हों अथवा आर्थिक कारक। इसके अतिरिक्त व्यक्ति का परिवेश और कालगत परिस्थितियां भी विचारों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन सब के मेल-जोल से व्यक्ति की जिस धारणा का विकास होता है उसे उस व्यक्ति की विचारधारा कहा जा सकता है। यह विचारधारा लेखक के साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। इस प्रकार साहित्य और विचार एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

3.2 साहित्य और विचार का अंतःसंबंध

कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में आने वाले विचार किसी राष्ट्र के राष्ट्रीय चिंतन की समग्रता से गहरा सरोकार रखते हैं। लेकिन इन सब से परे साहित्य और विचार के अंतः संबंधों के बारे में एक मौलिक प्रश्न का उत्तर जानना बहुत आवश्यक है कि क्या साहित्य और विचार का मेल अनिवार्य है? और क्या बिना विचार के साहित्य का सृजन संभव नहीं है? और यदि ऐसा होता है तो फिर साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए? यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि विचार के बिना साहित्य का सृजन संभव नहीं है तो फिर यह विचार साहित्य को किस हद तक प्रभावित करता है? मेरे विचार से इन सब प्रश्नों का उत्तर इस तथ्य में छिपा है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के विचारों और उसकी विचारधारा का निर्धारण किस आधार पर करता है।

चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः कोई भी लेखक या रचनाकार भी निश्चित रूप से उस समाज से ही संबंधित होता है। यदि रचनाकार का संबंध समाज से है तो वह अपनी रचना के लिए खुराक और आवश्यक अंतर्दृष्टि भी उस समाज से ही प्राप्त करता है। वस्तुतः समाज से सर्वथा मुक्त साहित्य का सृजन संभव ही नहीं है। इस प्रकार साहित्यकार का समाज से यह जुड़ाव उसकी रचना को प्रभावित करता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। प्रसिद्ध आलोचक कुमार विमल ने इसी अर्थ में साहित्य को समाज का अल्ट्रासाउंड तक कहा है। उनका विचार है कि-"साहित्य समाज का अल्ट्रासाउंड है, क्योंकि अल्ट्रासाउंड में रगरेशे पकड़ में आ जाते हैं।"[30] यद्यपि वह यह भी स्वीकारते हें कि आज साहित्य में यथार्थ को कई बार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है

जहां लेखक अपनी विचारधारा और अपनी कल्पना के सहारे यथार्थ के साथ हस्तक्षेप करता है। इसलिए होता यह है कि साहित्य वास्तव में अल्ट्रासाउंड नहीं बन पाता।

साहित्य को समाज का अल्ट्रासाउंड कहा जाना चाहिए अथवा नहीं पर इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी भाषा की श्रेष्ठ रचना वास्तव में उसी को कहा जा सकता है जिसमें सामाजिक यथार्थ और कलात्मक सौंदर्य के बीच एक संतुलन हो। यदि यह संतुलन रचना में अप्राप्य है तो वह रचना कलात्मक सौंदर्य का प्रदर्शन और विचारधारा मात्र का घोषणापत्र बनकर रह जाती है।

किसी भी रचना के सृजन में रचनाकार न केवल अपनी निजी दृष्टि का प्रयोग करता है बल्कि अनेक सामाजिक दृष्टियां भी उसकी रचना पर प्रभाव डालती हैं। मैंने पूर्व में भी इस बात का उल्लेख किया है कि विचारधारा अनेक विचारों का समन्वय है जिसमें रचनाकार के विचार ही नहीं बल्कि सामाजिक दृष्टि भी महत्वपूर्ण होती है। इस सामाजिक दृष्टि का निर्माण लेखकीय दृष्टि के अनुसार होता है।

साहित्य और विचारधारा के संबंध को समझने के क्रम में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों ही सामाजिक चेतना के रूप हैं। चूंकि सामाजिक चेतना समाज से स्वतंत्र नहीं हो सकती अतः विचारधारा, साहित्य और अन्य कला रूप भी समाज की ऐतिहासिक और भौतिक प्रक्रिया के अंग हो जाते हैं, उससे स्वतंत्र नहीं हो सकते। दूसरी बात यह है कि साहित्य और विचारधारा दोनों ही किसी रचना के महत्वपूर्ण अंग हैं और प्रत्यक्षतः एक दूसरे का आधार नहीं बन सकते बल्कि दोनों का आधार जीवन और समाज की भौतिक परिस्थिति है। जीवन और समाज की गति लेखक की विचारधारा को, उसकी रचना प्रक्रिया को और उसके सौंदर्य संबंधी विचारों को भी प्रभावित करती है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों मनुष्य की चेतना से ही रूप ग्रहण करते हैं इसलिए एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़ जाते हैं, साथ ही एक दूसरे को गहरे तौर पर प्रभावित भी

करते हैं। इस प्रक्रिया में विचारधारा साहित्य रचना या कला रचना का अंग बन जाती है।

वस्तुतः विचारधारा कलाकार के लिए जीवन और जगत की व्याख्या का औजार है। विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर दार्शनिक और साहित्यकार जीवन और जगत् की अलग-अलग व्याख्याएं करते हैं। लेखक इसमें नवीन अर्थ भरते हुए उसे नये रूप और विकास प्रदान करता है। "कोई सार्थक लेखन ऐसा नहीं होता जिसके पास जीवन और जगत की व्याख्या करने वाली कोई सामाजिक कसौटी और विचारधारा न हो। हर साहित्य का अपना वैचारिक पक्ष होता है।"[31] किन्तु यह भी सच ही है कि विचारधारा के ग्रहण की सही स्थिति तभी उत्पन्न होती है, जब रचनाकार अपने विचारों को अनुभूति की राह से गुजारे। इसी प्रक्रिया को रमेश कुन्तल मेघ ने 'अतिक्रमण' कहा है। "अतिक्रमण करके ही आदमी विचारों की प्रामाणिकता पाता है और तब वह विचारधारा से 'प्रतिबद्ध' होता है।"[32]

कुछ विचारकों ने साहित्य को विचारधारा से मुक्त रखने पर बल दिया है। उसके लिए उन्होंने अनेक तर्क भी दिए है। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह गोस्वामी तुलसीदास का उदाहरण देते हुए कहते हैं-"हिंदी में हमारे सबसे बड़े कवि तुलसीदास से बढ़कर विचारधारा से प्रतिबद्ध दूसरा आदमी नहीं है। कोई प्रसंग आ जाए, बाबा निर्गुण का खण्डन करता है और सगुण का समर्थन करता है।...........अगर तुलसीदास, आपके शब्दों में सबसे ज्यादा आइडियोलॉजिकल हैं, बावजूद इसके दो राय नहीं, उनसे बड़ा कोई कवि नहीं है। उनकी सौंदर्य पर दृष्टि थी। सारे भावबोध, सारे रस वहां आए हुए हैं। इसलिए सुन्दरता भी देखिए, विचार भी।..............इसलिए कहा गया था तुलसीदास से सहमत हों, न हों, व्यक्ति ईसाई हों, चाहे वो इस्लाम के मानने वाले हों, चाहे वो निर्गुणवादी हों, सगुणवादी हों, अब व्यक्ति कहेगा कि भई! इन तमाम चीजों के बावजूद तुलसीदास बड़े कवि हैं। इसलिए बड़ा साहित्य विचारधारा के बावजूद बड़ा होता है। इसका मतलब है कि साहित्य को बड़ा बनाने के लिए विचारधारा जरूरी नहीं है।"[33] लेकिन यहां मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहूंगा कि नामवर सिंह इस बात को भी स्वीकार करते

हैं कि "विचारधारा एकदम न होने के कारण केवल शाब्दिक अलंकार और चमत्कार होने के कारण पूरा रीतिकाल लांछित है।"[34] इस संबंध में उनका मानना है कि विचारधारा के बिना भी साहित्य श्रेष्ठ साहित्य बन सकता है और विचारधारा के साथ भी। पर जीवन-जगत और अपने आप को देखने के लिए एक दृष्टि आवश्यक है।

कुछ विचारक यह भी मानते हैं कि विचारधारा के प्रवेश से साहित्य की गरिमा नष्ट हो जाती है। ऐसे लोगों के लिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या विचारधारा विहीन साहित्य ही श्रेष्ठ और गरिमामय होता है? मेरे विचार से शायद ही कोई इस बात से सहमत हो। इस संबंध में प्रसिद्ध लेखक अमृतराय का विचार प्रासंगिक है-"विचारधारा का होना या न होना या किसी विशेष विचारधारा का होना साहित्य की श्रेष्ठता का स्वतः प्रमाण नही है। प्रमाण तो हर हालत में कृति ही होती है।"[35]

जहां तक साहित्य के विचारधाराहीन होने का प्रश्न है तो मैं स्पष्टतः मानता हूं कि कोई भी साहित्य विचारधाराहीन नहीं हो सकता। यदि मनुष्य का विचारधाराहीन होना संभव होता तो साहित्य भी वैसा हो सकता था। "हकीकत तो यह है कि विचारधारा को न मानने वाले की भी एक विचारधारा होती है। साहित्य या किसी भी कला में विचार और विचारधारा का निषेध करना वास्तव में अपने समय के महत्वपूर्ण मानवीय और सामाजिक सवालों और समस्या का निषेध करना है। अपने समय के महत्वपूर्ण सवालों और समस्याओं को छोड़ या उनसे बचकर कोई भी रचना कभी मूल्यवान नहीं हो सकती। साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हर श्रेष्ठ रचनाकार, अपने समय की सीमा को लांघने वाला साहित्यकार भी, अपने समय की समस्याओं और सवालों से टकराया है। इस प्रक्रिया में उसे विचार प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है। कबीर, तुलसी और सूर को अपने समकालीन प्रश्नों से जूझना पड़ा। भारतेन्दु, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, यशपाल और मुक्तिबोध अपने-अपने समय के सवालों से अपने-अपने ढंग से टकराये और उन्होंने अपने ढंग से रास्ता भी निकाला। उनकी महानता का एक बड़ा कारण यह भी है। अज्ञेय समय के प्रवाह से निकलने वाले सवालों को टालकर स्वयं सवाल

गढ़ने की कोशिश करते रहे, फलतः प्रतिभा के बावजूद वे वह महत्व नहीं पा सके, जो उपर्युक्त लेखकों ने पाया।"[36] इस संबंध में अमृतराय का यह कथन सही प्रतीत होता है कि "विचारधारा का न होना भी एक विचारधारा है।"[37] ऐसे लेखक वास्तव में सामाजिक विचारधारा का निषेध करके वैयक्तिक विचारधारा को मान्यता दिलाना चाहते हैं और कला को अमूर्त बना देने का प्रयत्न करते हैं। विचारधारा मात्र का निषेध करने का सिद्धान्त पेश करने की जरूरत वे इसलिए महसूस करते हैं क्योंकि सामाजिक और वैज्ञानिक विचारधारा का मुकाबला वे किसी दूसरी विचारधारा से नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्तिवादी लेखकों को संबोधित करते हुए चेखव कहते हैं– 'यदि आप सृजनात्मक लेखन में किसी समस्या के विचार या उद्देश्य को जगह नहीं देते तो आप निश्चय जानिए कि वह लेखक पहले से सोचे बिना रचना कर रहा है, सोद्देश्य नहीं, बल्कि मनमौजी ढंग से लिख रहा है; यदि कोई लेखक मेरे सामने गर्व से कहे कि उद्देश्य पर पहले से विचार किए बिना सिर्फ अंतःप्रेरणा से उसने अपनी कहानी लिखी है, तो मैं उसे पागल कहूंगा।' लियो तोल्सतॉय ने भी सवाल उठाया है कि 'चिंतन से दरिद्र' और 'विचारशून्य' रचना को क्या आप कला कहेंगे? उनका तो विचार है कि चिंतन से रचना में स्थायित्व का गुण आता है।

वास्तव में साहित्य और विचारधारा का विरोध मानना उचित नहीं है क्योंकि साहित्य में विचारधारा का व्यापक महत्व होता है। इस प्रकार के संबंध का विरोध करना बुर्जुआवाद है। जब मानव के व्यक्तित्व का विकास सामाजिक संगठन के विस्तार और विकास के साथ ही संभव हुआ है तब वह उससे कैसे अलग हो सकता है। "साहित्य और विचारधारा किसी जड़तावादी दृष्टिकोण से नहीं देखे जा सकते बल्कि उन्हें तो सामाजिक संवेदनों के अनुसार एक नयी गतिशीलता के अनुसार देखना आवश्यक है क्योंकि साहित्य में कोई न कोई विचारधारा अनिवार्य रूप से रहती है। लेखक की विचारधारा और उसकी विषयवस्तु अपने समय की प्रमुख सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को लेकर चलती है। जब साहित्यकार अपनी रचनाओं में अपने समकालीन समय से जूझ रहा होता है तो वह किस

प्रकार समाज की विचारधारा से अलग रह सकता है। साहित्य को सर्वहारा से जुड़ना ही होता है।"[38]

कोई भी साहित्य अपने समाज और राष्ट्र से अलग हटकर प्रासंगिक नहीं हो सकता है। इसी कारण इनमें विचारधाराओं का व्यापक महत्व होता है। आज यह सिद्ध हो चुका है कि राजनीति और अर्थव्यवस्था भी रचना के कारक तत्व हैं। यही कारण है कि लोकतांत्रिक देशों में साहित्य का स्वरूप जितना उन्मुक्त और खुला है उतना तानाशाही समाज में नहीं। साहित्य ने मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता के प्रति सचेत बनाया है । विज्ञान और उद्योग के कारण मनुष्यता का अवमूल्यन हुआ है। आज इसे एक उत्पाद की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे सावधान रहना आवश्यक है और साहित्य इसकी व्यवस्था करता है।

साहित्य की विचारधारा का एक और रूप है जिसे हम साहित्यिक विचारधारा का आंतरिक स्वरूप कह सकते हैं। बाहरी विचारधाराएं जहां साहित्य के मंथन का आधार बनती हैं वहीं आंतरिक विचारधाराएं उसकी रचना को रूप देती हैं। आधुनिक युग में साहित्य के अनेक आंदोलन हुए हैं जिनमें बिंबवाद, प्रतीकवाद और अतियथार्थवाद प्रमुख हैं। इन्होंने हिंदी और विश्व कविता को प्रभावित किया है। नई कविता के अनेक आंदोलन इसका प्रमाण हैं। अंग्रेजी कविता ने भी हिंदी कविता को प्रभावित किया है।

साहित्य और विचारधारा के संदर्भ में यह भी आवश्यक है कि इन दोनों के समन्वय और अनुभव संसार को सामने रखा जाए। साहित्य की विविध विधाएं अलग-अलग होते हुए भी उनका अनुभव संसार मनुष्य की संवेदना और उसके घटनात्मक प्रवाह को अंकित करता है। प्राचीन से आधुनिक विचारधारा तक जो दार्शनिक परंपरा है उससे साहित्य कभी अलग नहीं रहा। साहित्य ज्ञान को उस रूप में व्यक्त नहीं करता जिस रूप में दर्शनशास्त्र करता है और न ही मनोविज्ञान को उस रूप में जिस रूप में मनोविश्लेषणशास्त्र करता है। "साहित्य मनुष्य की संवेदना की अभिव्यक्ति ही नहीं उसका सृजनात्मक संप्रेषण भी है। वह अपनी आंतरिक चेतना को बाहरी अभिव्यक्ति देता है। काव्य का विचार सौंदर्य है और सौंदर्य का विचार साहित्य है। सौंदर्य ही साहित्य और विचारधारा को जोड़ता है।"[39]

साहित्य सृजन को समकालीन विचारधाराओं के द्वारा जो नया संदर्भ प्राप्त हुआ है उसे आधुनिक रूप में समझना आवश्यक है। इस नए संदर्भ के आधार पर हिन्दी ही नहीं साहित्य रचना की अनेक नई प्रवृत्तियों को भी सामने रखा जा सकता है। आज साहित्य रचना में कितने आंदोलन हो रहे हैं, कितनी प्रवृत्तियों का विकास हो रहा है और किस प्रकार उसमें ग्लोबल तत्व समा रहे हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। साहित्य का यह स्वरूप बदलते हुए भी मनुष्य की संवेदना का आधार नहीं खोता। यह संवेदना यथार्थबोध से जुड़ती है, इन्द्रियबोध से जुड़ती है, सांस्कृतिक बोध से जुड़ती है और मनुष्य को नए मूल्यों का संदर्भ देती है। "साहित्य की रचना नई शताब्दी में एक साइबर स्पेस से जुड़ रही है। कम्प्यूटर ने स्पेस को खत्म कर दिया है और वह समय को भी समेट रहा है। इस तरह के परिवर्तनों से साहित्य कैसे अलग रह सकता है।"[40]

प्रयोगवादी कविता में जो रोमानीपन छायावादी कविता से अलग है इसका कारण यही है कि अब आधुनिक विचारों ने उसकी अवधारणा ही बदल दी है।

बीसवीं सदी को वैचारिक दर्शन की शताब्दी कहा जा सकता है। इसमें कलात्मक सृजन व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है। यह प्रभाव आधुनिक साहित्य में देखा जा सकता है। वैचारिक दर्शन की यह अभिव्यक्ति काव्य और उपन्यासों में अलग-अलग धरातल पर होती है। संवेदना दोनों में ही होती है पर कविता में जहां व्यक्ति अधिक होता है वहीं उपन्यास में समाज अधिक। आज विभिन्न विचारधाराओं के कारण साहित्य का फलक व्यापक हो गया है। यही नहीं आज विचारधारा और साहित्य के संबंध में कई सवाल भी खड़े हो रहे हैं। यदि साहित्य एक सीमित वर्ग को ही प्रभावित करता है तो लोकतंत्र में उसकी क्या आवश्यकता है क्योंकि लोकतंत्र में बहुसंख्यक अवस्था होती है। यद्यपि इस तर्क को सही नहीं कहा जा सकता। "साहित्य का विचार अच्छा मनुष्य बनाना है और इस मनुष्य की रचना भीतर की जिस संवेदना को जगाकर हो सकती है वही साहित्य है। अतः कहा जा सकता है कि विचारधाराओं के बिना साहित्य की रचना नहीं होती पर यह भी सच है कि साहित्य विचारधाराओं का संकलन नहीं है। उसका जीवन मनुष्य के भीतर सांस ले रहे जिस सौंदर्यबोध पर निर्भर है वह सौंदर्यबोध ही

उसकी संवेदना का संसार है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है। साहित्य की रचना विचारधाराओं से प्रभावित होती है और विचारधाराएं भी साहित्य के रचनात्मक संसार की व्याख्याएं करती हैं।"[41]

समकालीन कविता में विचारधारा को पूरी निष्ठा और गहरी आस्था के संबल के रूप में कविता में व्यक्त करने वाले कवियों की कमी नहीं है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में', धूमिल की 'पटकथा', राजकमल चौधरी की 'मुक्तिप्रसंग' आदि कविताओं को श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि साहित्य और विचारधाराएं एक दूसरे से जुड़ी हैं पर साहित्य का संसार संवेदनात्मक है और विचारधाराओं का ज्ञानात्मक। ज्ञान और संवेदना, संवेदना और ज्ञान में समन्वय ही साहित्य रचना का आधार है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास, (बालकाण्ड), पृष्ठ-12

2. समकालीन साहित्य चिंतन : संपादक-डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीप सिंह, पृष्ठ-179

3. वही, पृष्ठ-180

4. साहित्य की वैचारिक भूमिका : डॉ.राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ-11

5. वही, पृष्ठ-12

6. वही, पृष्ठ-12

7. वही, पृष्ठ-12

8. साहित्यिक पारिभाषिक शब्द कोश : संपादक-प्रो.महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रो.तारकनाथ बाली, पृष्ठ-330

9. लघु हिन्दी शब्द सागर : संपादक-करुणापति त्रिपाठी, पृष्ठ-906

10. हिंदी विश्वकोश : संपादक-नगेन्द्रनाथ बसु, भाग-21, पृष्ठ-301

11. आदर्श हिंदी-संस्कृत कोश : संपादक-रामसरस शास्त्री, पृष्ठ-512

12. मानक हिंदी कोश : संपादक-रामचन्द्र वर्मा, खण्ड-5, पृष्ठ-52

13. नालंदा विशाल शब्द सागर : संपादक-श्री नवल जी, पृष्ठ-1260
14. प्रभात बृहत् हिंदी शब्द कोश : संपादक-डॉ.धर्मेन्द्र वर्मा, खण्ड-2, पृष्ठ-2250
15. समकालीन साहित्य चिंतन : संपादक-डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीप सिंह, पृष्ठ-1
16. आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण : रमेश कुन्तल मेघ, पृष्ठ-316
17. साहित्यिक पारिभाषिक शब्द कोश : संपादक-प्रो.महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रो.तारकनाथ बाली, पृष्ठ-206
18. लघु हिन्दी शब्द सागर : संपादक-करुणापति त्रिपाठी, पृष्ठ-999
19. आदर्श हिंदी-संस्कृत कोश : संपादक-रामसरस शास्त्री, पृष्ठ-583
20. हिंदी विश्वकोश : संपादक-नगेन्द्रनाथ बसु, भाग-21, पृष्ठ-90
21. मानक हिंदी कोश : रामचन्द्र वर्मा, खण्ड-5, पृष्ठ-356
22. प्रभात बृहत् हिंदी शब्दकोश : संपादक-डॉ.धर्मेन्द्र वर्मा, खण्ड-2, पृष्ठ-2538
23. साहित्य-सहचर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-2
24. वही, पृष्ठ-1
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास (काल विभाग) : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-21
26. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज : राम विलास शर्मा, पृष्ठ-491
27. आलोचना और विचारधारा : नामवर सिंह, पृष्ठ-16
28. आलोचना त्रैमासिक : खगेन्द्र ठाकुर, अक्टूबर-दिसम्बर, वर्ष 1985, पृष्ठ-21
29. साहित्य और विचारधारा : ओमप्रकाश ग्रेवाल, पृष्ठ-8-9
30. आजकल (हिंदी मासिक), संपादक-सीमा ओझा, कुमार विमल (साक्षात्कार), जनवरी 2012, पृष्ठ-48
31. मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और हिंदी उपन्यास : कुंवरपाल सिंह, पृष्ठ-52
32. काव्य रचना प्रक्रिया : कुमार विमल, पृष्ठ-72
33. आलोचना और विचारधारा : नामवर सिंह, पृष्ठ-20-21
34. वही, पृष्ठ-21
35. विचारधारा और साहित्य : अमृतराय, पृष्ठ-64
36. आलोचना : खगेन्द्र ठाकुर, अक्टूबर-दिसम्बर, वर्ष 1985, पृष्ठ-27

37. विचारधारा और साहित्य : अमृतराय, पृष्ठ–65

38. समकालीन विचारधाराएं और साहित्य : डॉ.राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–81

39. साहित्य की वैचारिक भूमिका : डॉ.राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–14

40. वही, पृष्ठ–14-15

41. वही, पृष्ठ–16

अध्याय

4

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टिः गांधी, मार्क्स एवं लोहिया के संदर्भ में

समाजवाद एक आर्थिक एवं सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन-संपत्ति का स्वामित्व एवं वितरण समाज के नियंत्रण के अधीन रहते हैं। आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक प्रत्यय के तौर पर समाजवाद निजी संपत्ति पर आधारित अधिकारों का विरोध करता है। इस विचारधारा का एक आधारभूत सिद्धांत यह भी है कि संपत्ति का उत्पादन और वितरण समाज या राज्य के हाथों में होना चाहिए। आधुनिक राजनीतिक अर्थों में समाजवाद को पूंजीवाद और मुक्त बाजारवाद के सिद्धांतों के विपरीत देखा जाता है। वस्तुतः एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में समाजवाद का उदय यूरोप में अठ्ठारवीं और उन्नीसवीं सदी में उभरे औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हुआ है।

समाजवाद अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्द 'सोशलिज्म' का हिन्दी रूपान्तरण है। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाद के विरोध में और उन विचारों के समर्थन में किया जाता था जिनका लक्ष्य समाज के आर्थिक और नैतिक आधार को बदलना था और जो जीवन में व्यक्तिगत नियंत्रण की जगह सामाजिक नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे। समाजवाद की राजनीतिक विचारधारा उन्नीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशकों के दौरान इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी जैसे यूरोपीय देशों में लोकप्रिय होने लगी थी। उद्योगीकरण और शहरीकरण की तेज गति तथा पारम्परिक समाज के अवसान ने यूरोपीय समाज को सुधार और बदलाव की शक्तियों का अखाड़ा बना दिया था जिसमें मजदूर संघों और चार्टरवादी समूहों से

लेकर ऐसे गुट सक्रिय थे जो आधुनिक समाज की जगह प्राक्-आधुनिक सामुदायिकतावाद की वकालत कर रहे थे।

समाजवाद शब्द की परिभाषा करना कठिन है। यह सिद्धान्त तथा आंदोलन दोनों ही है और यह विभिन्न ऐतिहासिक तथा स्थानीय परिस्थितियों में विभिन्न रूप धारण करता है। मूलतः यह वह आंदोलन है जो उत्पादन के मुख्य साधनों के समाजीकरण पर आधारित वर्गविहीन समाज स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है और जो मजदूर वर्ग को इसका मुख्य आधार बनाता है, क्योंकि वह इस वर्ग को शोषित वर्ग मानता है जिसका ऐतिहासिक कार्य वर्ग-व्यवस्था का अंत करना है।

ब्रिटिश राजनीतिक विचारक हैरॉल्ड लास्की ने समाजवाद को एक ऐसी टोपी कहा है जिसे कोई भी अपने अनुसार पहन लेता है। विभिन्न देशों में विकसित हुईं समाजवाद की विविध विचारधाराएं लास्की के इस कथन का समर्थन करती हैं। समाजवाद की एक विचारधारा विघटित हो चुके सोवियत संघ के सर्वसत्तावादी नियंत्रण में चरितार्थ होती है जिसमें मानवीय जीवन के हर संभव पहलू को राज्य के नियंत्रण में लेने का प्रयास किया गया। इसकी दूसरी विचारधारा राज्य को अर्थव्यवस्था के नियमन द्वारा कल्याणकारी भूमिका निभाने का मंत्र देती है। भारत में समाजवाद की विचारधारा इन दोनों विचारधाराओं से भिन्न है। यह विचारधारा राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्र देव के राजनीतिक चिंतन और व्यवहार से विकसित हुई है। सामान्यतः इस विचारधारा को गांधीवादी समाजवाद की संज्ञा दी जाती है।

जब हम किसी महापुरुष के आचार-विचार अथवा मत की चर्चा करते हैं तो हम सब के मन में सर्वप्रथम यह जानने की एक स्वाभाविक उत्कंठा होती है कि उस महापुरुष का जन्म कब, कहां और किन परिस्थितियों में हुआ, वह किस ढंग से पाला-पोसा गया, उसकी शिक्षा-दीक्षा क्या और कितनी थी, तथा उसने अपने कर्तव्यों का निर्वहन किस रूप में किया। यदि इन बातों का आवश्यक ज्ञान न हो तो ऐसे लोगों के प्रति श्रृद्धा उत्पन्न नहीं हो सकती। जब श्रद्धा नहीं होती तो उनके बताए विभिन्न मार्गों का अनुशीलन करना भी कठिन हो जाता है। अतः इस संदर्भ में हमारा यह कर्तव्य है कि गांधी, मार्क्स और लोहिया के बताए हुए

सिद्धांतों को जानने से पूर्व हम इस अध्याय में उनके जन्म ओर जन्म से पूर्व और पश्चात की स्थितियों पर संक्षिप्त प्रकाश डालें ताकि हमें यह मालूम हो सके कि कर्म–क्षेत्र में उतरने से पहले उक्त महापुरुषों के जीवन–पटों पर परिस्थितियों का अंकन किस प्रकार हुआ।

4.1 महात्मा गांधी की वैचारिक दृष्टि

इस क्रम में मैं सर्वप्रथम महात्मा गांधी के जीवन और उनके पूर्व व पश्चात की परिस्थितियों पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास करूंगा। गांधी जी का जन्म भारत में ऐसी परिस्थितियों में हुआ, जब भारत का आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संतुलन बुरी तरह से बिगड़ा हुआ था। इन परिस्थितियों की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। यह प्रतिक्रिया गांधीजी की विचारधारा के रूप में हुई। जिस प्रकार गांधीजी का जीवन तात्कालिक बहुमुखी परिस्थितियों से प्रभावित था, उसी प्रकार उनकी विचारधारा भी प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित हुई। गांधीजी भारतीय उपनिषदों, विशेषतः गीता से बहुत प्रभावित थे। उनका जन्म सन् 1869 ई. में गुजरात के पोरबंदर (सुदामापुरी), काठियावाड़ में एक वैष्णव सम्प्रदायी वैश्य परिवार में हुआ था। यद्यपि उनके पिता काका गांधी राजकोट के राजा के प्रधानमंत्री थे तथापि गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में अपने को द्रव्यहीन कहा है। उनके पिता कम पढ़े लिखे होने पर भी अपनी व्यवहार–कुशलता, निष्पक्षता और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी मां बड़ी धर्म–शीला और दृढ़ तथा सामान्य बुद्धि वाली महिला थीं। उनके माता–पिता का गांधीजी के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। गांधीजी को लम्बे उपवास और अनशन करने की प्रेरणा और शक्ति अपनी माताजी से ही प्राप्त हुई थी। स्कूल में जब गांधीजी पढ़ते थे तब वे बड़े शर्मीले और मध्यम श्रेणी के विद्यार्थी थे। परन्तु सत्य–प्रियता तथा गुरु और बड़ों के प्रति आदर–सत्कार की भावना उनके हृदय में बाल्यकाल से ही निवास करती थी। मात्र 13 वर्ष की आयु में उनका विवाह भी हो गया।

गांधीजी के चरित्र में सत्यनिष्ठा प्रारंभ से ही थी। एक बार स्कूल में स्कूल इन्स्पेक्टर जब जांच के लिए आए तो उनके शिक्षक ने उनसे किसी अन्य विद्यार्थी की नकल करने के लिए कहा, परन्तु गांधीजी न तो इशारे को ही समझे और न

उन्होंने कभी नकल करना ही सीखा। गांधीजी ने कहा भी है कि "मैं नकल करने की कला को कभी नहीं सीख सका।"[1] इस वाक्य में उनका समस्त भावी जीवन झलकता है।

गांधीजी ने अपने विद्यार्थी काल में कुसंगति में फंस जाने के कारण मांस खाना, तम्बाकू पीना, चोरी करना और फलतः झूठ बोलना जैसे अवगुण अपना लिए थे। एक बार जब उन्हें यह महसूस हुआ कि वे प्रकट रूप में सिगरेट नहीं पी सकते तो उन्होंने आत्महत्या तक करने की ठान ली, परन्तु साहस के अभाववश वह ऐसा करने से बच गए। बस! यही उनके जीवन का परिवर्तन बिन्दु सिद्ध हुआ और इसी से प्रेरित होकर उन्होंने अपने पिता को लिखित रूप में सारे अपराध बता दिए।

गांधीजी अहिंसा को संसार का सर्वाधिक शक्तिशाली और अमोघ अस्त्र मानते थे। अपने इसी अस्त्र से गांधीजी ने भारत की धरती पर ब्रिटिश हुकूमत की तीन शताब्दियों से गहरी जमी हुई जड़ों को उखाड़कर फेंक दिया और अंग्रेज एक हारे हुए जुआरी की भांति अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर भारत से चले गए। यह देखकर समस्त विश्व चकित रह गया था जो अब तक गांधीजी के अहिंसात्मक विचारों का मजाक उड़ाया करते था। गांधीजी कहते थे- "अहिंसा का शस्त्र वीर योद्धाओं के लिए है, कायरों के लिए नहीं। अहिंसा के शिक्षण के लिए साहस की आवश्यकता है। भयमुक्त होने पर ही साहस का जन्म होता है।"[2]

सर्वधर्म समभाव, अहिंसा, सत्य, भाईचारे और ऊंच-नीच की भावनाओं को अपने हृदय में संजोए वह महान व्यक्ति आखिरकार 30 जनवरी 1948 को एक सिरफिरे हिन्दू भारतवासी के द्वारा ही गोलियों का शिकार हो गया।

गांधीजी के आगमन से पूर्व यदि प्राचीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की चर्चा की जाए तो संक्षेप मे कहा जा सकता है कि उस समय की राजनीति और अर्थ नीति धर्म नीति के साथ इस चतुरता के साथ बांधकर रखी जाती थी कि कहीं दोनों में असामंजस्य न होने पाए। उस समय 'धर्म' शब्द कर्तव्य का पर्यायवाची था। धीरे-धीरे अनेक विदेशी आक्रमणकारी भारत पर अपना

साम्राज्य स्थापित करते गए। इन बाह्य आक्रमणकारियों के आने से प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृति मिटती रही और नवीनता का संचार होता रहा।

इसी क्रम में यदि गांधीजी से पूर्व भारत की धार्मिक स्थिति को देखा जाए तो सहज ही यह कहा जा सकता है कि वह इस दौर में अपने निकृष्टतम् रूप में समाज में अपनी गहरी जड़ें जमा चुकी थी। इसका मूल कारण यह था कि एक ओर तो हिंदुओं के पूर्वज तथा पूज्यवर्ग के लोग, जैसे पंडित, शास्त्रज्ञ, पौराणिकादि, एवं दूसरी ओर मुसलमानों के पूर्वज और उनके पूज्य मुल्लादि साधारण जन को संकीर्णता का ही पाठ पढ़ाते रहे। हिन्दू वर्ग में छुआछूत की भावना इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी थी कि उसको उखाड़ना भीम कर्म था। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गांधीजी के अभ्युदय के समय तक भारतीय धार्मिक स्थिति विकृत हो चुकी थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक भारतीय आर्थिक स्थिति भी बदहाली की हालत तक पहुंच चुकी थी। भारत विदेशी शासकों के हाथ में शोषण का बाजार बन चुका था। यहां तक कि भारत को ब्रिटिश सेना के खर्च तक उठाने पड़ते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी पहले ही भारत के प्रख्यात प्राचीन व्यवसायों को नष्ट कर चुकी थी। श्री पी.बनर्जी ने अंग्रेज अर्थशास्त्रियों और हन्टर विलसन आदि इतिहासकारों के उद्धरण देकर अंग्रेज सरकार की दुर्नीति की आलोचना करते हुए लिखा है- "गत शताब्दी के मध्यकाल तक परिणाम यह हो गया था कि भारतवर्ष केवल कृषि प्रधान देश रह गया था।"[3] एक ओर ग्रामीण उद्योगों का नाश था तो दूसरी ओर पूंजी और नवीन मशीनों की कमी के कारण बड़े उद्योगों की भी अत्यंत कमी हो गयी थी। कृषि भी जो कुछ थी वह पुराने ढर्रे की थी। ऐसी विकट स्थिति में गांधी को इन सब का मुकाबला करना था।

गांधीवादी समाजवाद पर चर्चा करने से पूर्व मैं यह बता देना आवश्यक समझता हूं कि गांधी एक धर्म परायण व्यक्ति हैं और उनकी समाजवादी विचारधारा भी धर्म से प्रेरित है। वह स्वयं कहते हैं कि "मेरे लिए तो गीता आचार की एक प्रौढ़ मार्गदर्शिका बन गई है। वह मेरा धार्मिक कोश हो गई है। अपरिचित अंग्रेजी शब्द के हिज्जे या अर्थ देखने के लिए जिस तरह अंग्रेजी कोश को खोलता हूं

उसी तरह आचार संबंधी कठिनाइयों और उनकी अटपटी गुत्थियों को गीता के द्वारा सुलझाता हूं। उसके अपरिग्रह' समभाव आदि शब्दों ने मुझे गिरफ्तार कर लिया है। यही धुन लगी रहती है कि समभाव कैसे प्राप्त करूं, कैसे उसका पालन करूं?"[4] इसीलिए वह कहते हैं कि "अपने हर एक शब्द के पीछे, जिसे मैंने उच्चारित किया हो और प्रत्येक कार्य के पीछे, जिसे मैंने किया हो, उन सब के पीछे धार्मिक चेतना और संपूर्ण धार्मिक उद्देश्य मेरे लोक जीवन में रहा है।"[5] गीता में समभाव, संभव, साम्य आदि शब्द अनेक स्थानों पर आए हैं। उनसे यह भाव व्यक्त होता है कि बाह्य दृश्य पदार्थों में समभाव प्राप्त होने से पूर्व अंतःकरणीय समता होना आवश्यक है। भगवान स्वयं 'सम्भव' (साम्य भाव) को अपना ही अवतार मानते हैं। इसलिए कहते हैं-'सम्भवामि युगे युगे'। मनुष्य मनुष्य को ही नहीं, विद्या संपन्न ब्राम्हण और चाण्डाल को ही नहीं, वरन् गौ, हाथी, कुत्ते आदि जीवधारियों को भी समभाव से देखे, तब वह गीता की दृष्टि में समदर्शी कहला सकता है। परन्तु गांधीजी का विषय मनुष्य समाज था इसलिए उन्होंने पहले मनुष्य मात्र में समभाव लाने की बात कही है। यह समभाव तभी लाया जा सकता है जब मनुष्य स्वार्थ की भावना का त्याग कर दे। ये स्वार्थ मनुष्य को जकड़ लेता है। जकड़ जाना या पकड़ जाना ही 'ग्रह' है। 'परि' उपसर्ग का अर्थ होता है- 'चारों ओर'। इसलिए परिग्रह का अर्थ हुआ- 'चारों ओर से जकड़ जाना'। इस चारों ओर से जकड़ लेने वाले स्वार्थ को छोड़ देने अर्थात् अपरिग्रह अपनाने पर ही समभाव की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए गांधीजी ने कहा है कि समभाव रखने के लिए हेतु और हृदय का परिवर्तन करना आवश्यक है। एक बार समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण की चर्चा होते समय उन्होंने कहा था कि - "मैं उसके (जयप्रकाश नारायण) पैदा हाने के पूर्व से ही समाजवादी हूं।"[6] परन्तु यहां ध्यान देने की बात यह है कि गांधीजी का समाजवाद उनकी अहिंसा शब्द की व्यापक परिभाषा के अनुसार मूलतः अहिंसात्मक है। इसलिए उनका अन्य समाजवादों से मतभेद होना स्वाभाविक है। यद्यपि जहां तक समाजवादियों की राष्ट्रीय मुक्ति की भावना का संबंध है वे इसके जनक थे और अंतिम समाजवादी उद्देश्य से भी गांधीजी के विचार मिलते थे। अन्य समाजवादियों से गांधीजी के विचारों में मतभेद

का एक अन्य कारण यह था कि समाजवादी राज्य को अपने हाथ में लेकर समाज के कुछ कार्य राज्य के द्वारा करना चाहते थे जबकि गांधीजी का विचार था कि "इस प्रकार राज्य शक्ति को बढ़ाने से मुझे भय है कि व्यक्तित्व के विनाश से जो सर्वोत्थान का मूल है, मनुष्य जाति को अतिशय हानि होगी।"[7]

गांधीजी के इस समाजवाद और व्यक्तित्ववाद के संबंध में कुछ लोगों का विचार है कि गांधीजी वास्तव में समाजवादी थे ही नहीं क्योंकि उनके विचारों में मार्क्सवाद का कहीं भी अनुसरण नहीं है। वास्तव में सही अर्थों मे देखा जाए तो समाजवाद के सही मायनों में यह तथ्य महत्वहीन है। चूंकि व्यक्तित्व और समाज का अपरिहार्य संबंध है इसलिए गांधी ही सच्चे समाजवादी और साम्यवादी कहलाने के अधिकारी थे।

समाजवाद के संबंध में गांधीजी का विचार है कि–"समाजवाद एक सुंदर शब्द है, और जहां तक मुझे मालूम है, समाजवाद में सब सदस्य बराबर होते हैं–न कोई नीचा, न कोई ऊंचा। किसी व्यक्ति के शरीर में सिर सबसे ऊपर होने के कारण ऊंचा नहीं होता और न पैर के तलवे जमीन को छूने के कारण नीच होते हैं। जैसे व्यक्ति के शरीर के सब अंग बराबर होते हैं, वैसे ही समाज रूपी शरीर के सारे अंग भी बराबर होते हैं। यही समाजवाद है। यदि समाजवाद का अर्थ शत्रु के प्रति मित्रता का भाव रखना है तो मुझे एक सच्चा समाजवादी समझा जाना चाहिए। हमारा समाजवाद अथवा साम्यवाद अहिंसा पर आधारित होना चाहिए।"[8]

समाजवाद के अंतर्गत गांधीजी भूमि के समान वितरण के समर्थक हैं। इस संबंध में वह मानते हैं कि सच्चा समाजवाद हमें पूर्वजों से मिला है जिन्होंने हमें सिखाया है कि 'सबै भूमि गोपाल की'। यह सीमा रेखा मनुष्य की बनाई हुई है और वही उसे मिटा भी सकता है। गोपाल का शाब्दिक अर्थ है चरवाहा; इसका अर्थ ईश्वर भी है। आधुनिक भाषा में इसका अर्थ है राज्य अर्थात् जनता। "यह सही है कि आज भूमि जनता के स्वामित्व में नहीं है पर इसमें हमारे पूर्वजों की सीख का दोष नहीं। दोष हमारा है कि हम उसे अपने जीवन में उतार नहीं पाए। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि रूस सहित किसी भी राष्ट्र के लिए इसे हासिल

करना जितना मुमकिन है, उतना ही हमारे लिए भी है ओर इसके लिए हिंसा के इस्तेमाल की जरूरत नही है।"[9]

पाश्चात्य समाजवाद के संबंध में गांधीजी के विचार भिन्न थे। इस संबंध में उनका कहना था कि -"मैं पाश्चात्य समाज-व्यवस्था का एक सहानुभूतिपूर्ण विद्यार्थी रहा हूं और मैंने पाया है कि पश्चिम की आत्मा के उत्ताप की तह में सत्य की अथक खोज विद्यमान है। मैं इस भावना का आदर करता हूं। हमें वैज्ञानिक अन्वेषण की इसी भावना के साथ अपनी प्राच्य संस्थाओं का अध्ययन करना चाहिए; इससे हम एक ऐसे सच्चे समाजवाद और सच्चे साम्यवाद का विकास कर सकते हैं जिसकी दुनिया ने अब तक कल्पना ही नहीं की है। यह मान लेना निश्चित रूप से गलत है कि आम जनता की गरीबी के मसले का पाश्चात्य समाजवाद अथवा साम्यवाद सर्वोत्कृष्ट अथवा अंतिम समाधान है।"[10]

आधुनिक समाजवादियों से भिन्न गांधीजी का विचार है कि समाजवाद का जन्म पूंजीपतियों द्वारा पूंजी के दुरुपयोग की खोज के साथ नहीं हुआ। बल्कि वे मानते हैं कि ईशोपनिषद के प्रथम श्लोक में समाजवाद ही नहीं बल्कि साम्यवाद की भी स्पष्ट झलक है। जब कुछ समाज-सुधारकों की आस्था हृदय-परिवर्तन की विधि से उठ गई तो वैज्ञानिक समाजवाद की तकनीक का जन्म हुआ।

समाजवाद संबंधी अपने अहिंसा के सिद्धान्त पर गांधीजी को अटूट विश्वास है। इस बारे में उनका मत है कि-"मेरा तरीका हमेशा विशुद्ध अहिंसा पर आधारित होता है। संभव है कि मैं असफल हो जाउं। अगर ऐसा होता है तो यह अहिंसा की तकनीक के संबंध में मेरी अज्ञानता के कारण ही होगा। जिस सिद्धान्त में मेरी आस्था दिनों-दिन बढ़ रही है, मैं उसका बुरा प्रतिपादक भी तो सिद्ध हो सकता हूं।"[11]

गांधीजी का विचार है कि समाजवाद को अपनाने वाले अपने परिचित देशवासियों की तुलना में वह बहुत पहले से ही समाजवादी थे। उनका समाजवाद सहज है जिसकी धारणा किन्हीं पुस्तकों पर आधारित नहीं है। यह धारणा अहिंसा में उनके अडिग विश्वास से उत्पन्न हुई है। इसलिए वह कहते हैं- "दुर्भाग्य से,

जहां तक मैं समझता हूं, पश्चिम के समाजवादियों ने समाजवादी सिद्धान्तों को लागू करने के लिए हिंसा का सहारा लेना जरूरी माना है।"[12]

गांधीजी की यह धारणा है कि समाज के सबसे छोटे और निम्नतम् वर्ग को भी सामाजिक न्याय जोर-जबर्दस्ती करके नहीं दिलाया जा सकता। उनका इस बात में विश्वास है कि समाज के निम्नतम् व्यक्तियों को यदि अहिंसक उपायों से उचित प्रशिक्षण दिया जाए तो वे अपने प्रति होने वाले अन्यायों को दूर कर सकते हैं और अहिंसक असहयोग इसका तरीका है। अपनी समाजवादी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि-"मेरा समाजवाद अंतिम व्यक्ति तक का हित करने के लिए है। मैं अंधों, बहरों ओर गूंगों की बलि देकर अपना उत्कर्ष करना नहीं चाहता। उनके समाजवाद में, इनके लिए संभवतः कोई स्थान नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश्य भौतिक उन्नति है।"[13]

गांधीजी का समाजवादी सिद्धान्त इसे प्राप्त करने वाले साधनों को भी महत्वपूर्ण मानता है। इस संबंध में गांधीजी कहते हैं कि- "मेरा यह समाजवाद स्फटिक की तरह स्वच्छ है। अतः इसे प्राप्त करने के साधन भी स्फटिक की तरह स्वच्छ होने चाहिए। मलिन साधनों से मलिन ध्येय सिद्ध होता है।"[14] इसलिए केवल सत्यनिष्ठ, अहिंसक और शुद्ध हृदय वाले समाजवादी ही भारत में और विश्व में समाजवादी समाज की स्थापना कर पाएंगे। इस संबंध में वह यहां तक कहते हैं कि-"जहां तक मेरी जानकारी है, विश्व का एक भी देश ऐसा नहीं है जो विशुद्ध रूप से समाजवादी हो। मैंने ऊपर जिन साधनों का वर्णन किया है, उन्हें अपनाए बिना इस प्रकार के समाज का अस्तित्व असंभव है।"[15]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यदि गांधीवादी समाजवाद का मूल्यांकन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गांधीवादी समाजवाद गांधीजी की अहिंसा और असहयोग की नीति को अपनाते हुए समाज के सबसे वंचित वर्ग को बिना किसी हिंसा और दबाव का सहारा लिए उसका अधिकार दिलाना है।

4.2 काल मार्क्स की वैचारिक दृष्टि

समाजवादी सिद्धान्तों के अंतर्गत ही एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त काल मार्क्स का समाजवादी सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त सामान्यतः मार्क्सवादी समाजवाद के रूप में जाना जाता है। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त पर चर्चा करने से पूर्व मैं इस सिद्धान्त के प्रतिपादक काल मार्क्स के जीवन-परिचय और उनकी युगीन परिस्थितियों पर संक्षिप्त चर्चा कर लेना समीचीन समझता हूं।

मार्क्स का जन्म जर्मनी में ऐसे समय में हुआ, जब प्रचलित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों और व्यवस्थाओं का संतुलन भंग हो गया था। आर्थिक मूल्य जीवन के अन्य मूल्यों पर हावी हो गए थे। इस क्रिया की प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी और यह मार्क्स की विचारधारा के रूप में हुई। काल मार्क्स का जन्म जर्मनी के राइन प्रान्त के त्रियेर नगर के वकील हेनरिक मार्क्स के घर 05 मई सन् 1818 को हुआ था। उनका पूरा परिवार यहूदी था। मार्क्स के पिता हेनरिक को यहूदियों की परम्परागत सूदखोरी और लालची प्रवृत्ति से नफरत थी। इसके अलावा उन पर फ्रांसीसी क्रांति के प्रेरणादायी विचारकों- रूसो, वाल्टेयर के क्रान्तिकारी विचारों का भी भरपूर असर हुआ था। उनके विचारों में जबरदस्त परिवर्तन आया और वे यहूदी से प्रोटेस्टेंट ईसाई हो गए। इससे उन्हें प्रशा में वकालत करने की सुविधा मिल गयी। प्रशा में वैसे भी यहूदियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। उन पर कई तरह के प्रतिबंध थे। ईसाई हो जाने से इन प्रतिबंधों से उन्हें छुटकारा मिल गया था।

मार्क्स को अपने बचपन में एक बहुत ही प्रेरक, उत्साहवर्धक और ममतापूर्ण संपन्नता का वातावरण मिला था। मार्क्स की पढ़ाई की शुरुआत त्रियेर नगर से ही हुई थी। पढ़ाई में उनकी दिलचस्पी जल्दी ही पैदा हो गई थी और बचपन में वे अपना ज्यादा से ज्यादा वक्त पढ़ाई में लगाते थे। पढ़ने की यही आदत आगे चलकर उनकी जिंदगी का एक जरूरी हिस्सा बन गई। 1830 से 35 तक काल मार्क्स की शिक्षा त्रियेर के उच्च्व माध्यमिक विद्यालय में हुई। यहीं अध्ययन करते हुए उन्होंने अपनी आखिरी परीक्षा के लिए वह प्रसिद्ध निबंध 'व्यवसाय के चयन पर एक नवयुवक के विचार' लिखा था, जो उनकी सोच, प्रतिभा और भावी

आस्थाओं का संकेत देता है। 1935 में स्कूली शिक्षा पूरी होने के बाद मार्क्स ने उच्च शिक्षा के लिए बोन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। साल भर बोन में पढ़ने के बाद मार्क्स अपनी अगली पढ़ाई के लिर बर्लिन गए। चिंतन और अध्ययन की भूख ने अंततः उन्हें हीगल तक पहुंचा दिया। हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति के रूप में अचानक मार्क्स को एक ऐसी चाबी मिल गई जिसका सफल प्रयोग कर उन्होंने इतिहास के अंधेरे तहखानों को खोलकर दर्शन की पूरी इमारत खड़ी कर दी। मार्क्स के अध्ययन का प्रमुख विषय प्राचीन यूनानी रोमन दर्शन था। डॉक्टरेट के अपने शोध प्रबंध के लिए उन्होंने जो विषय चुना था, वह था– 'डेमोक्राइट्स और एपीक्यूरस के प्रकृति दर्शनों में भेद'। आगे चलकर मार्क्स के लिए समाचार पत्र वह मंच बने जिसका उपयोग मार्क्स ने जर्मनी में प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष के लिए किया। 1842 से उन्होंने 'राइन' समाचार पत्र में नियमित रूप से लिखना प्रारंभ कर दिया। उनके लेखन का पाठकों पर खासा असर होने लगा जिसे कारण उन्हें इस पत्र का संपादक बना दिया गया।

सन् 1843 में जेनी नामक युवती से उनका विवाह हो गया। इन्हीं दिनों उन्हें पेरिस से अर्नाल्ड रुगे का प्रस्ताव मिला कि वे पेरिस से निकाले जाने वाले 'जर्मन–फ्रांस वार्षिकी' का संपादन कार्य स्वीकार करे। मार्क्स इस प्रस्ताव को स्वीकार कर पेरिस आ गए। पेरिस में उन दिनों काफी मजदूर हलचलें हो रही थीं और कई गुप्त संगठन काम कर रहे थे। मार्क्स का भी इन संगठनों से संबंध कायम हुआ जिससे उनका उस समय के अनेक प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजवादियों से परिचय हुआ।

सन् 1844 में मार्क्स का परिचय 'जर्मन–फ्रांस वार्षिकी' में लेख लिखने वाले जर्मनवासी, किन्तु मैनचेस्टर में व्यापार करने वाले फ्रेडरिक एंगेल्स से हुआ। यह परिचय शीघ्र ही घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया। इन्हीं दिनों पेरिस से जर्मन भाषा में निकलने वाले प्रगतिशील समाचार–पत्र 'आगे बढ़ो' पर मार्क्स ज्यादा ध्यान देने लगे। इससे प्रशा सरकार उन्हें अपना दुश्मन मानने लगी। बाद में प्रशा की सरकार ने फ्रांस की सरकार पर दबाव डालकर उन्हें पेरिस से निकलवा दिया। मार्क्स को विवश होकर बेल्जियम की राजधानी ब्रूसेल्स में शरण लेनी पड़ी। ब्रूसेल्स में रहते हुए मार्क्स ने एंगेल्स के साथ इंग्लैण्ड की यात्रा की और वहां विकसित

हो रहे पूंजीवाद के विकसित स्वरूप को उन्होंने देखा और समझा। इसी आधार पर उन्होंने एंगेल्स के साथ मिलकर अपनी किताब 'जर्मन विचारधारा' लिखी। ब्रूसेल्स में ही 1846 में मार्क्स ने बिखरे हुए कम्युनिस्ट तत्वों को इकट्ठा करने की दृष्टि से 'कम्युनिस्ट संवाद समिति' की स्थापना की। 1847 में ब्रूसेल्स में स्थापित कम्युनिस्ट लीग और क्षेत्रीय समिति के नेतृत्व की जिम्मेदारी मार्क्स को सौंपी गयी।

'कम्युनिस्ट लीग' का घोषणापत्र तैयार करने की जिम्मेदारी मार्क्स और एंगेल्स को सामूहिक रूप से दी गयी थी। मार्क्स ने एंगेल्स के साथ मिलकर घोषणा-पत्र की रचना की। 1848 में 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' प्रकाशित हुआ। इस घोषणा पत्र का साम्यवादी दुनिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रारम्भ ही इन शब्दों से होता है-'आज यूरोप को एक हौआ आतंकित कर रहा है -कम्युनिज्म का हौआ।' घोषणा पत्र के अंत में कहा गया है- "कम्युनिस्ट क्रांति के डर से शासक वर्ग को कांपने दो। मजदूरों के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवाय और कुछ नहीं है, जीतने के लिए उनके पास सारी दुनिया है। दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ।"[16]

मार्क्स के क्रांतिकारी विचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप बेल्जियम सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। 26 अगस्त, 1849 को अपनी पत्नी जेनी व बच्चों को पेरिस में ही छोड़कर वे अकेले ही लन्दन पहुंचे। यहां उन्होंने आर्थिक तंगी के कारण भयंकर कठिनाइयों और कष्टों के दिन गुजारे। अपनी सारी शक्ति लगाकर मार्क्स ने अत्यंत अल्प अवधि में अक्टूबर 1857 से मई 1858 तक-एक विशाल रचना तैयार की जो थोड़े बहुत अंतराल के साथ पन्द्रह साल तक चले उनके आर्थिक अनुसंधानों का परिणाम थी। 1867 में 'कैपीटल' का प्रथम खण्ड जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें मार्क्स ने पूंजीवाद का बड़ा गंभीर विश्लेषण किया है तथा इस मान्यता को जोर देकर प्रतिपादित किया है कि मनुष्य के अस्तित्व को उसकी चेतना निर्धारित नहीं करती, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है। इस पुस्तक के शेष दो खण्ड मार्क्स अपने जीवन काल में पूरा नहीं कर सके। इनको मार्क्स द्वारा तैयार की गई सामग्री के आधार पर एंगेल्स ने पूर्ण किया।

मार्क्स को 'कैपीटल' के प्रकाशन से बहुत उम्मीद थी, लेकिन बाजार में पुस्तक की कोई खास बिक्री नहीं हुई। लगातार होने वाली बीमारियों की वजह से मार्क्स टूट चुके थे अतः उन्होंने तय किया कि 'कैपीटल' के अन्य हिस्से पूरे करने का काम एंगेल्स के हवाले कर दिया जाए। इस प्रकार मार्क्स के निधन के बाद इस पुस्तक का दूसरा खण्ड 1885 में और तीसरा खण्ड 1894 में एंगेल्स के द्वारा प्रकाशित हुआ।

बुढ़ापे, आर्थिक अभाव और बीमारी ने मार्क्स के जिस्म को तोड़ दिया और अंततः 14 मार्च सन् 1883 को उनका निधन हो गया। एंगेल्स ने मार्क्स की मौत को सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का सबसे बड़ा नुकसान कहा है।

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में काल मार्क्स को 'वैज्ञानिक समाजवाद' के जनक के रूप में स्मरण किया जाता है। उसके इस दर्शन ने न सिर्फ समूचे संसार में हलचल मचा दी बल्कि बुद्धिजीवी और शासक वर्ग के साथ-साथ आम जन समुदाय को भी झझकोर दिया। "20वीं शताब्दी में उसके विचारों ने दुनिया को जितना आलोकित किया है, उतना संभवतः और किसी विचारक के चिंतन ने नहीं किया।"[17]

मार्क्स के जन्म से पूर्व यूरोप के प्रायः सभी देशों में साम्राज्य का दौर चल रहा था जहां अधिकतर निरंकुश और अनियंत्रित शासक शासन कर रहे थे। वहां की प्रजा भी प्रत्येक स्थान में परिस्थितियों के अनुकूल स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए छटपटा रही थी। इस क्रम में सबसे पहले फ्रांस के लोगों ने सन् 1789 में इस ओर कदम बढ़ाया, जो फ्रांसीसी क्रांति के नाम से मशहूर है। इस क्रांति के फलस्वरूप चर्च, राज्य और सामाजिक असमानता के विरुद्ध उठी हुई आवाजें ज्वाला बनकर फैलीं, जिनकी आंच से यूरोप के अन्य देश भी बच नहीं सके। यह क्रांति काल मार्क्स के जन्म से पूर्व सन् 1814 तक रहा। इसी काल में प्रजा को कुछ अधिकार देने वाले विधान भी एक के बाद एक बनते और मिटते गए। इसी समय नेपोलियन का साम्राज्य यूरोप भर में फैला। उसने फ्रांस तथा अधीनस्थ देशों में अपनी रिपब्लिकें स्थापित कीं और उचित समय आने पर स्वयं इनको ताक पर रखकर फ्रांस का बादशाह और इटली का राजा बन बैठा। अंत में सन् 1815 में

वियना में संगठित यूरोपीय राज्य-संघ के द्वारा युद्ध में हराया गया और कैद कर लिया गया। मार्क्स की जन्म-भूमि जर्मनी भी इस क्रांति की आंच से बच नहीं सकी। जर्मनी की केन्द्रीय शक्ति अर्थात् रोमन बादशाहत, जिसके अधीनस्थ वह थी, लगभग मृत-प्राय् हो चुकी थी। उसका इस हद तक पतन हो चुका था कि जर्मनी के अंतर्गत छोटे-छोटे राज्य और उपराज्य बहुत अधिक संख्या में बढ़ गये थे। सारांशतः कहा जाए तो इस काल में यूरोप की राजनीतिक स्थिति कुछ ऐसी थी कि एक ओर प्रजा स्वतंत्रता के लिए तड़प रही थी तो दूसरी ओर उस पर साम्राज्यवाद का घोर आतंक छाया हुआ था।

इसी क्रम में यूरोप की धार्मिक स्थिति भी बद्तर हो चुकी थी। ईसाई धर्म की संस्थाओं का संगठन और कार्य इतना बढ़ गया था कि उसके प्रधान अधिपति पोप तथा उसके अधीनस्थ बिशप, क्लर्जी आदि का प्रभाव राज्याधिकारियों पर भी इतना पड़ता था कि इतिहासज्ञ यह कहने लगे कि "मध्यकाल की समस्त प्रकार की संस्थाओं की अपेक्षा चर्च संस्था सबसे अधिक शक्तिशाली थी, क्योंकि नव अशिक्षित संसार में वह पुरोहित और शिक्षक का काम करती थी।" ("Off all the institutions in Middle Age, the Church because she held the position of both priest and teacher of the young barbarian world, was by far the most powerful")[18] यह संस्था इतनी शक्तिशाली बन गयी थी कि वह रोमन बादशाहत तक से टक्कर लेने लगी थी। परन्तु यह नियम है कि शक्ति कुछ ही दिनों में अपनी गोद में दुराचार और भ्रष्टाचार का पालन-पोषण करने लगती है। इसी नियम के अनुसार गिरिजाघरों में अनेक दूषण उत्पन्न हो गए। यहां तक कि पापों से मुक्त करने वाले पत्र, जो इन्डलजेन्सेज कहे जाते थे, बेचे जाने लगे। इसी प्रकार कई तरह के धार्मिक कर भी वसूल किए जाने लगे। परिणामस्वरूप इस व्यवस्था का घोर विरोध होने लगा और धीरे-धीरे क्रांति की आग भड़क उठी जो संपूर्ण यूरोप में किसी न किसी रूप में फैलती गयी। यह क्रांति धर्म में शोधन के नाम से प्रसिद्ध है और इसके हेतु जो युद्ध हुए उन्हें इतिहास में धर्मयुद्ध कहा जाता है। यह काल सन् 1517 से प्रारंभ होकर सन् 1648 तक चला। सन् 1648 में वेस्टफेलिया की संधि हुई जिसके फलस्वरूप नए मत के प्रति भी सहिष्णुता का व्यवहार प्रारम्भ हो गया।

आगे चलकर मार्क्स ने भी इस तथ्य को महसूस किया कि धर्म अनेक तरह की अव्यवस्थाओं और कुरीतियों का जनक है। इसीलए मार्क्स धर्म को अफीम कहता है। शायद यही कारण है कि मार्क्सवाद में धर्म-संबंध-विच्छेद के लिए आग्रह किया जाना अनिवार्य समझा गया है।

मार्क्स के जन्म के पूर्व की राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों का संक्षिप्त विश्लेषण करने के उपरांत मैं उस काल की आर्थिक व्यवस्था पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूं क्योंकि मार्क्सवाद का यही प्रधान लक्ष्य है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि जब से समाज में अर्थ-संचय प्रारंभ हुआ तभी से समाज में पृथक वर्गों का निर्माण आरंभ हो गया। इस संबंध में मार्क्स का विचार है कि-"अभी तक जो समाज स्थित है उसका इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। ये वर्ग एक दूसरे के निरंतर प्रतिद्वंद्वी होकर फ्रीमेन और स्लेभ, पेट्रीशियन और प्लीवियन, लार्ड और सर्फ, गिल्डमास्टर और जर्मीमेन, अथवा एक शब्द में, पीड़क और पीड़ित बनकर लगातार एक दूसरे के विरोधी बने रहे हैं, कभी ओट लेकर और कभी प्रकट होकर लड़ते रहे। परिणामस्वरूप कभी तो समाज का क्रांतिकारी पुनर्संगठन हुआ और कभी दोनों प्रतिद्वंदियों का विनाश।"[19]

मार्क्स के पूर्व सामंत काल में क्लर्जी और नोबिल्स नामक दो प्रधान वर्गों का मान था, जो राजकीय कार्यों में भाग लेने वाले रहते थे। क्लर्जी वर्ग के अंतर्गत चर्च से संबंधित प्रीस्ट आदि सभी प्रकार के कार्यकर्ताओं का समावेश हो जाता है। ये दोनों वर्ग के लोग न सिर्फ धनवान और भूमिपति थे बल्कि राज्य करों से भी सर्वथा मुक्त थे। फ्रांस में ये दोनों वर्ग वहां की आधी भूमि के स्वामी थे। इन दोनों उच्च वर्गो के अतिरिक्त एक माध्यमिक वर्ग भी उन लोगों का था जिन्हें फ्रांस में तीसरा वर्ग कहा जाता था। इन लोगों ने व्यापार आदि साधनों द्वारा धन-संचय कर लिया था। ये लोग धीरे-धीरे अपनी कठिन कमाई के कारण निठल्ले और खर्चीले नोबल्स की अपेक्षा अधिक धनवान और प्रगतिशील बन गए थे। मार्क्सवाद में इसी वर्ग को बुर्जुआ कहा गया है। इन सबके अतिरिक्त एक अन्य चौथा वर्ग भी था जो बुर्जुआ वर्ग से भी निम्न श्रेणी का था। इस श्रेणी में दो प्रकार के महान दरिद्र लोग थे। एक थे शहराती मजदूर जिनमें से कुछ तो दूसरों की मजदूरी

करते थे और कुछ अपना घर छोटे–मोटे रोजगार जैसे–लोहार, बढ़ई आदि का काम करके चलाते थे। इन्हें प्रोलिटेरियेट कहा जाता था। दूसरे लोग थे देहाती किसान जो हाथ से मेहनत करके कृषि से अपनी गुजर–बसर करते थे। इन्हें पेजेन्ट कहा जाता था क्योंकि इनकी दशा शहराती मजदूरों से भी बुरी थी। इन पर कर–बोझ इतना था कि कठिन परिश्रम से टपकता हुआ पसीना भी उन्हें तथा उनके बाल–बच्चों को भरपेट भोजन नहीं दे सकता था। आगे चलकर इसी समाज–व्यवस्था में अधिक अर्थ–संचय के कारण बुर्जुआ वर्ग के लोग पूंजीपति कहलाने लगे। नवीन आविष्कारों के द्वारा बढ़ते हुए मशीनी युग ने अर्थोत्पत्ति के साधनों में इतना अथिक परिवर्तन कर दिया कि संपत्ति पूंजीपतियों के हाथ में सिमटती गई और दरिद्रता मजदूर वर्ग के गले में चिपटती गई। इसी दयनीय आर्थिक परिवेश में मार्क्स का जन्म हुआ जिसने आगे चलकर मार्क्सवाद नामक अर्थव्यवस्था पर आधारित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का सूत्रपात किया।

मार्क्सवादी समाजवाद को प्रायः सर्वहारा समाजवाद अथवा वैज्ञानिक समाजवाद के नाम से जाना जाता है। समाजवाद की इस विचारधारा के अंतर्गत इसे वैज्ञानिक कहने के पीछे मार्क्सवादियों का विचार है कि सर्वप्रथम मार्क्स ने ही इस समाजवादी दर्शन के अंतर्गत सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के वैज्ञानिक नियमों की खोज की है। मार्क्स के पूर्व के विचारकों जैसे–राबर्ट आवेन, सेण्ट साइमन, प्रूदों आदि के समाजवादी विचारों को मार्क्स ने काल्पनिक समाजवाद की संज्ञा दी है क्योंकि उनका समाजवादी चिंतन एक आदर्शपरक चिंतन था। इस संबंध में मार्क्स ने एक वैज्ञानिक की तरह ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण किया और सामाजिक प्रगति के लिए उत्तरदायी तत्वों को खोज निकाला। उसने पूंजीवाद के दोषों का वर्णन करने के साथ–साथ पूंजीवाद का अंत कर वर्गविहीन समाज की स्थापना करने के लिए एक विधिवत प्रक्रिया का निरूपण किया है।

इस प्रक्रिया के अंतर्गत सर्वप्रथम मार्क्स ने यह पता लगाया कि समाज में परिवर्तन क्यों होते हैं, भविष्य में यह परिवर्तन किस प्रकार तथा किस दिशा में होंगे। इस आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला कि मानव समाज में परिवर्तन अकस्मात् नहीं होते हैं, अपितु कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार होते है। इन नियमों

की व्याख्या करते हुए उसने चार सिद्धान्तों का निरूपण किया। मार्क्स के इन सिद्धान्तों को ही संक्षेप में मार्क्सवाद की संज्ञा दी जाती है। मार्क्सवादी समाजवाद को सही अर्थों में समझने के लिए इन चारों सिद्धान्तों पर संक्षिप्त चर्चा कर लेना प्रासंगिक होगा।

मार्क्स ने अपने समाजवादी सिद्धान्त को स्पष्ट के लिए सर्वप्रथम द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त दिया। यह सिद्धान्त उसके संपूर्ण चिंतन का मूलाधार है। उसने द्वंद्ववाद का विचार हीगल से तथा भौतिकवाद का विचार फायरबाख से ग्रहण किया और उसका शुद्धिकरण तथा समन्वय करके अपने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का निर्माण किया।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में दो शब्द हैं- इसमें प्रथम शब्द 'द्वंद्वात्मक' उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है जिसके अनुसार सृष्टि का विकास हो रहा है और दूसरा शब्द 'भौतिकवाद' सृष्टि के मूल तत्व को सूचित करता है। मार्क्स का यह सिद्धान्त हीगल की द्वंद्वात्मक पद्धति पर आधारित है, परन्तु हीगल के द्वंद्ववाद को मार्क्स ने बिल्कुल उल्टा कर दिया है। हीगल के लिए मानव मस्तिष्क की जीवन प्रक्रिया या चिंतन की प्रक्रिया जिसे विचार के नाम से उसने एक स्वतंत्र कर्ता तक बना डाला है, वास्तविक संसार की सृजनकर्त्री है और वास्तविक संसार 'विचार' का बाहरी या इन्द्रियगम्य रूप मात्र है। इसके विपरीत मार्क्स के लिए 'विचार' इसके सिवा और कुछ नहीं है कि भौतिक संसार मानव-मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होता है और चिन्तन के रूपों में बदल जाता है।

हीगल यह मानकर चलता है कि समाज की प्रगति प्रत्यक्ष न होकर एक टेढ़े-मेढ़े तरीके से हुई है जिसके तीन अंग हैं-वाद, प्रतिवाद और संवाद। मार्क्स की द्वंद्वात्मक पद्धति का आधार हीगल का यही द्वंद्ववादी दर्शन है। मार्क्स के अनुसार 'वाद' समाज की साधारण स्थिति है जिसमें कोई अंतर्विरोध नहीं पाया जाता है। थोड़े समय बाद 'वाद' से असंतुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'प्रतिवाद' उत्पन्न हो जाता है। यह निषेधात्मक स्थिति वाद की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील मानी जाती है। 'वाद' और 'प्रतिवाद' में अंतर्विरोध के फलस्वरूप एक समझौता हो जाता है जिससे एक नए विचार की उत्पत्ति होती है। इसे हीगल

'संवाद' या 'संश्लेषण' का नाम देता है। यही 'संश्लेषण' आगे चलकर एक 'वाद' हो जाता है जिसका फिर प्रतिवाद उत्पन्न होकर 'संश्लेषण' के द्वारा फिर एक नया विचार उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह क्रम निरंतर चलता रहता है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले किसी वस्तु का निषेध होता है और उसके पश्चात निषेध का निषेध होता है जिसके द्वारा एक उच्चतर वस्तु अस्तित्व में आती है। इस सिद्धान्त के अनुसार विकास विरोधी बातों में संघर्ष का परिणाम है। हीगल और मार्क्स के द्वंद्ववाद में प्रमुख अंतर यह है कि हीगल एक आदर्शवादी था जिसके द्वंद्ववाद का आधार 'विचार' या 'आध्यात्मिकता' था परन्तु मार्क्स के अनुसार 'विचार' नहीं 'भौतिक पदार्थ' ही इस जगत का आधार है। मार्क्स के अनुसार विश्व एक भौतिक जगत है। इसमें घटनाएं तथा वस्तुएं एक दूसरे से संबद्ध हैं। चूंकि भौतिक जगत में परिवर्तन निरंतर होते हैं, अतः सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों का कारण कोई दैवीय सत्ता या ईश्वरीय नियम नहीं है बल्कि भौतिक परिस्थितियों का होना है। यहां मार्क्स के अनुसार इन भौतिक परिस्थितियों का अभिप्राय आर्थिक संबंधों से है।

मानवीय विकास को समझने के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को ऐतिहासिक विकास पर लागू करने के मार्क्स के प्रयोग को 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के संबंध में मार्क्स का विचार है कि इतिहास या समाज का विकास द्वंद्व की प्रणाली से होता है और भौतिक पदार्थ उस विकास को चलायमान करते हैं। यह इतिहास की भौतिक व्याख्या के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता है। मार्क्स का यह सिद्धान्त 'आर्थिक नियतिवाद', 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' अथवा 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' जैसे कई नामों से जाना जाता है।

इस सिद्धान्त द्वारा मार्क्स ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि सामाजिक विकास कोई सीधी-सरल रेखा के समान नहीं है और न ही उसका कोई ईश्वरीय प्रेरक कारण है। समाज की प्रगति द्वंद्वात्मक प्रणाली द्वारा होती है और विकास की प्रक्रिया एवं उसकी अंतिम दिशा को निर्धारित करने वाले आर्थिक तत्व होते हैं। मार्क्स के शब्दों में, "इतिहास का निर्धारण अपने अंतिम रूप में आर्थिक

परिस्थितियों के अनुसार होता है।"[20] उसका विचार है कि इतिहास की सभी घटनाएं आर्थिक अवस्था में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम मात्र हैं और किसी भी राजनीतिक संगठन अथवा उसकी न्याय व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके आर्थिक ढांचे का ज्ञान नितांत आवश्यक है। मानवीय क्रियाएं नैतिकता, धर्म या राष्ट्रीयता से नहीं बल्कि केवल आर्थिक तत्वों से प्रभावित होती हैं। मनुष्य सामाजिक स्तर पर जो उत्पादन करते हैं, उसमें वे एक दूसरे के साथ निश्चित संबंधों के सूत्र में बंध जाते हैं। उत्पादन प्रणाली में जैसे-जैसे परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे मनुष्यों के सारे सामाजिक बंधन भी बदल जाते हैं।

इस प्रकार इस सिद्धान्त में मार्क्स उत्पादन पद्धति को सामाजिक व्यवस्था का आधार सिद्ध करते हुए उस परिवर्तन प्रक्रिया का वर्णन करता है जो उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ सामाजिक विकास के नए चरणों को जन्म देती है। मार्क्स के अनुसार, ऐतिहासिक क्रम की प्रत्येक अवस्था, चाहे वह कितनी ही खराब क्यों न दिखाई दे; अपनी पिछली अवस्था से उत्तम होती है क्योंकि वह विकास की चरम परिणति के निकट होती है।

मार्क्सवादी समाजवाद का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त, 'वर्ग संघर्ष' का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज का आर्थिक ढांचा समाज के राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और कानूनी ढांचे तथा विचारधाराओं को निर्धारित करता है। आर्थिक आधार में मुख्यतः उत्पादन की शक्तियां तथा उत्पादन के संबंध शामिल किए जाते हैं। उत्पादन के संबंधों के आधार पर समाज का वर्ग विभाजन स्पष्ट होता है।

मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्त में वर्ग संघर्ष की धारणा का भी विशिष्ट महत्व है। उसका वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त उसकी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर आधारित है। मार्क्स वर्ग संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानता है और आदिकाल से अब तक के समस्त परिवर्तनों को उसी का प्रतिफल मानता है। वास्तव में वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवाद की ही उपस्थिति है। मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद की सबसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति इस बात में देखी कि समाज में सदैव ही विरोधी आर्थिक वर्गों का

अस्तित्व रहा है। यह वर्ग संघर्ष हमेशा समाज में विद्यमान दो परस्पर विरोधी हितों वाले वर्गों में चलता है। इन वर्गों का आधार आर्थिक है। इनमें से एक वर्ग आर्थिक सत्ता प्राप्त वर्ग है जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है और दूसरा वह वर्ग है जो केवल शारीरिक श्रम करता है। मार्क्स का यह विचार है कि प्रत्येक युग में इन दोनों वर्गों का अस्तित्व रहा है। पहला वर्ग सदा ही दूसरे वर्ग का शोषण करता है। समाज के शोषक और शोषित ये दो वर्ग सदा ही आपस में संघर्ष करते रहे हैं। यहां संघर्ष का अर्थ केवल लड़ाई नहीं है बल्कि इसका व्यापक अर्थ असंतोष, रोष और आंशिक असहयोग है। मार्क्स का यह विचार है कि समाज में एक वर्ग ऐसा अवश्य होता है जिसकी आवश्यकताएं पूरी न होने से वह सर्वदा असंतुष्ट रहता है। इस असंतोष को वह वर्ग समय-समय पर कई रूपों- असहयोग, हड़ताल आदि के द्वारा व्यक्त करता है और जब यह असंतोष असहनीय हो जाता है तो द्वंद्ववाद के आधार पर यह संघर्ष क्रांति का रूप ले लेता है जिसमें शोषित वर्ग की विजय ओर शोषक वर्ग का पतन हो जाता है।

मार्क्स के अनुसार पूंजीपति और श्रमिक दोनों को एक दूसरे की जरूरत होते हुए भी इनके हितों में परस्पर विरोध है। पूंजीपति कम से कम मजदूरी देना चाहता है जिससे उसे अधिकाधिक लाभ हो और मजदूर अधिक से अधिक मजदूरी लेना चाहता है, अतः हितों के विरोध के कारण इन दोनों में संघर्ष आरम्भ हो जाता है। यही वर्ग संघर्ष की बुनियाद है और इसी कारण वर्ग संघर्ष हमेशा से चला आ रहा है। इस संबंध में मार्क्स यह भी कहता है कि अब तक के इतिहास में जिस वर्ग ने शोषणकर्ताओं से सत्ता छीनी, कालांतर में वह स्वयं शोषणकर्ता सिद्ध हुए। इसलिए अब तक जितनी क्रांतियां हुई, उनसे इतिहास अपने चरम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाया, परन्तु पूंजीपति और सर्वहारा वर्गों के संघर्ष से जो क्रांति होगी वह पिछली सब क्रांतियों से भिन्न होगी क्योंकि उसके फलस्वरूप शोषक वर्ग का अस्तित्व ही मिट जाएगा और वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी।

मार्क्सवादी समाजवाद का चौथा महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत मार्क्स ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का गहन विश्लेषण करके यह सिद्ध किया कि यह व्यवस्था शोषण पर आधारित है। मार्क्स

का 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' ही वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'दास कैपीटल' में किया है। यह सिद्धान्त 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' पर आधारित है। मार्क्स ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए प्रत्येक वस्तु के दो तरह के मूल्य बताएं हैं – पहला उपयोगिता मूल्य और दूसरा वस्तु का विनिमय मूल्य।

मार्क्स के अनुसार उपयोगिता का अर्थ है मनुष्य की इच्छा पूरी करना। जो वस्तुएं मनुष्य की इच्छा पूरी करती हैं वे उसके लिए उपयोगी हैं और जो वस्तुएं उसकी इच्छा को पूरी नहीं करतीं वे उसके लिए उपयोगी न होने के कारण कोई मूल्य नहीं रखतीं। मूल्य का दूसरा आधार विनिमय है, इसे विनिमय मूल्य कहते हैं। विनिमय मूल्य इस बात में है कि उस वस्तु के बदले में क्या प्राप्त होता है। विनिमय मूल्य वह अनुपात है जिसके द्वारा वस्तुओं का वस्तुओं के बदले में विनिमय हो सके। उपयोगिता की वस्तु हुए बिना किसी वस्तु का मूल्य नहीं हो सकता, लेकिन हर उपयोगी वस्तु का विनिमय मूल्य होना आवश्यक नहीं है। खाने की वस्तु होने के कारण रोटी का उपयोग मूल्य है, लेकिन जब रोटी को बेचा जाता है उस समय उसका दूसरा मूल्य होता है जिसे विनिमय मूल्य कहा जाता है। मार्क्स के अनुसार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु के उत्पादन पर खर्च किए गए सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है। अर्थात् किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगाए गए श्रम के आधार पर निश्चित होता है। मार्क्स के अनुसार–"प्रत्येक वस्तु का वास्तविक मूल्य वह श्रम है जो उसे मानव उपयोगी बनाने के लिए उस पर व्यय किया जाता है, क्योंकि वही उसमें 'विनिमय मूल्य' पैदा करता है।"[21] सरल शब्दों में कहा जाए तो वस्तुओं का विनिमय मूल्य उनकी उपयोगिता अर्थात् उपयोग मूल्य पर निर्भर नहीं करता बल्कि उनके उत्पादन में लगाए गए श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है। मार्क्स के विचार से श्रम ही एक वस्तु के मूल्य निर्धारण का एकमात्र उचित मापदण्ड है, क्योंकि यही एक ऐसा तत्व है जो सभी वस्तुओं में समान रूप से विद्यमान है। अतः यही सम्पत्ति के उत्पादन का एकमात्र वास्तविक उत्पादन तत्व है।

इस सिद्धान्त के अंतर्गत मार्क्स स्वीकार करता है कि पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर अपनी श्रम शक्ति बेचता है तथा मजदूरी प्राप्त करता है। हर मजदूर अपनी मजदूरी से ज्यादा काम करता है तथा अधिक मूल्य पैदा करता है। प्रत्येक वस्तु का विनिमय मूल्य उस पर लगे मानव श्रम के बराबर होता है। पूंजीपति 'लाभ' वस्तु को बेचकर नहीं बल्कि उत्पादन में मजदूर को उसके काम के अनुपात में कम मजदूरी देकर अर्जित करता है। हर मजदूर को मजदूरी कम मिलती है तथा काम ज्यादा करना पड़ता है। इस प्रकार हर मजदूर अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है। अतिरिक्त मूल्य मजदूर द्वारा प्राप्त मजदूरी तथा मजदूर द्वारा किए गए मूल्य का अंतर है। अतिरिक्त मूल्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–"जितना मूल्य श्रमिकों के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है, उसके अतिरिक्त जो मूल्य उन्होंने उत्पादित किया, वह अतिरिक्त मूल्य है, जो पूंजीपति की जेब में चला जाता है।"[22] मार्क्स के अनुसार 'अतिक्ति मूल्य' उन दो मूल्यों का अंतर है जिसे एक श्रमिक पैदा करता है और जिसे वह वास्तव में पाता है।

इस प्रकार यदि उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर मार्क्सवादी समाजवाद का विश्लेषण किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि मार्क्स का समाजवाद अपने दौर की अनेक समाजवादी विचारधाराओं से कई मायनों में भिन्न है। मार्क्सवादी समाजवाद के अंतर्गत एक विचार विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है कि मार्क्स का यह मत था कि पूंजीवाद से समाजवाद में रूपांतरण शांतिमय अथवा वैज्ञानिक साधनों से संभव नहीं होगा क्योंकि प्रतिगामी पूंजीपति वर्ग कभी भी स्वेच्छा से उत्पादन के साधनों पर से अपना स्वामित्व नहीं छोड़ेगा और इसलिए इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए क्रांति के हिंसापूर्ण साधनों का प्रयोग करना पड़ेगा। मार्क्स का यह विचार समाजवाद की अन्य प्रचलित विचारधाराओं से भिन्न है।

निष्कर्षतः कहा जाए तो मार्क्सवादी समाजवाद सामाजिक राजनीतिक दर्शन के अंतर्गत एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें संरचनात्मक स्तर पर एक समतामूलक वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। इस विचारधारा में यह माना गया है कि ऐतिहासिक और आर्थिक वर्चस्व के प्रतिमान ध्वस्त हो जाएंगे और उत्पादन के साधनों पर समूचे समाज का स्वामित्व हो जाएगा। अधिकार और कर्तव्य के क्षेत्र में

भी आत्मार्पित सामुदायिक सामंजस्य की स्थापना होगी। स्वतंत्रता और समानता के सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्श एक दूसरे के पूरक हो जाएंगे। समाज में न्याय से कोई भी वंचित नहीं होगा और मानवता ही एकमात्र जाति होगी। इस व्यवस्था में श्रम की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ और तकनीक का स्तर सर्वोच्च होगा। वस्तुतः यह सिद्धान्त अराजकता का पोषक है जहां राज्य की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। मूलतः यह विचार समाजवाद की उन्नत अवस्था को अभिव्यक्त करता है। अन्य समाजवादी विचारधाराओं में जहां कर्तव्य और अधिकार के वितरण के संबंध में 'हरेक को उसकी क्षमतानुसार, हरेक को कार्यानुसार' के सूत्र का प्रतिपादन किया जाता है वहीं मार्क्सवादी समाजवाद में यह सिद्धान्त बदलकर 'हरेक से क्षमतानुसार, हरेक को आवश्यकतानुसार' के सिद्धान्त के रूप में परिणत हो जाता है। यह सिद्धान्त निजी संपत्ति का भी पूर्णतः निषेध करता है।

4.3 राममनोहर लोहिया की वैचारिक दृष्टि

भारत में समाजवाद की एक अन्य प्रचलित विचारधारा डॉ.राम मनोहर लोहिया का समाजवादी चिंतन है। इस क्रम में मैं उनकी समाजवाद संबंधी विचारधारा पर चर्चा करने से पूर्व सर्वप्रथम उनके जीवन परिचय और युगीन परिस्थितियों पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास करूंगा। लोहिया का जन्म 23 मार्च सन् 1910 को उत्तरप्रदेश के अकबरपुर गांव में एक राष्ट्रवादी परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री हीरालाल जी गांधीजी के प्रबल अनुयायी और मां चंदा जी शिक्षिका थीं। अल्पायु में ही उनके सिर से माता का आंचल उठ गया। उनके पिता ने फिर विवाह नहीं किया और शेष जीवन राष्ट्र की सेवा और पुत्र के लालन-पालन में लगा दिया। हीरालाल जी स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे और सभा-सम्मेलनों में बालक राममनोहर को भी साथ ले जाते थे। इस प्रकार लोहिया जी को राष्ट्रप्रेम का गुण विरासत में मिला था।

लोहिया का राजनीति से संबंध बचपन में ही जुड़ गया था। सर्वप्रथम 1920 में लोक मान्य श्री बालगंगाधर तिलक जी की मृत्यु पर उन्होंने एक हड़ताल का आयोजन किया। जब वह पहली बार अपने पिताजी के साथ गांधीजी से मिलने गए तब गांधीजी के व्यक्तित्व का उनके मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उन्हीं

से प्रभावित होकर लोहिया जी ने मात्र 10 वर्ष की आयु में गांधीजी के सत्याग्रह मार्च में भाग लिया। आगे चलकर उन्होंने गांधीजी के नमक सत्याग्रह पर जर्मनी में अपनी पी-एच.डी. की थीसिस भी पूरी की।

पढ़ाई में कुशाग्र लोहिया ने 1925 में प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की और 1929 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में बी.ए.आनर्स की परीक्षा पास की। आगे की पढ़ाई पूरी करने के लिए उन्होंने राष्ट्रप्रेम की खातिर ब्रिटेन जाने के स्थान पर जर्मनी जाना उचित समझा। उन्होंने जर्मन भाषा सीखी और छात्रवृत्ति पाकर जर्मनी चले गए। वहां 23 वर्ष की आयु में उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने अपना शोध-प्रबंध जर्मन भाषा में लिखा था।

लोहिया जी अर्थशास्त्र के साथ-साथ विविध जातियों, नस्ल, धर्म, राजनीति, संविधान, कानून, कला और साहित्य में भी बहुत समझ रखते थे। यूरोप प्रवास के दौरान उन्होंने जिनेवा में होने वाली 'लीग ऑफ नेशंस' की बैठक में भी हिस्सा लिया था। वहां भारत का प्रतिनिधित्व करने महाराज बीकानेर आए हुए थे। जब बीकानेर नरेश सरकार के पक्ष में भाषण कर रहे थे तब लोहिया ने सभागार में सीटी बजाकर तहलका मचा दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने बीकानेर महाराज के प्रतिनिधित्व को चुनौती देते हुए अपने वक्तव्य को जर्मन अखबार 'लू त्रावे ह्यूमेनाइट' में प्रकाशित कर देश का सच्चा प्रतिनिधित्व किया। जर्मनी में रहते हुए उन्होंने 'एसोसिएशन ऑफ यूरोपियन इंडियन' नामक संगठन की स्थापना में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीयता की भावना का भारत के बाहर प्रचार-प्रसार करना था। वह इस संगठन के सेक्रेटरी भी चुने गए।

सन् 1932 में स्वदेश लौटते ही लोहिया ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की सदस्यता ग्रहण कर ली। इस समय तक उनके विचार बहुत कुछ परिपक्व हो चुके थे। कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्यों के ढीलेपन से असंतुष्ट होकर उन्होंने जे.पी.नारायण, अच्युत पटवर्धन और युसुफ मेहराली जैसे समाजवादी युवा कांग्रेसियों के साथ मिलकर सन् 1934 में 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी' की स्थापना की और 'कांग्रेस

सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन भी शुरू किया। 1936 में जब वह सर्वप्रथम 'ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी' के सदस्य चुने गए और उनको इसका प्रथम सचिव नियुक्त किया गया तब "कांग्रेस में रहते हुए उन्होंने सन् 1936 में पहली बार विदेश विभाग बनाया। नेहरू जी ने लोहिया जी को ही इस विभाग का सचिव बना दिया।"[23] इस प्रकार दो वर्ष तक उन्होंने भारत की विदेश नीति को दुनिया के सामने रखा।

लोहिया के बारे में अक्सर कहा जाता है कि वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। 'कांग्रेस सोशलिस्ट' पत्र के संपादन में भी इसकी कुछ झलक दिखती है। "वह गांधी से प्रभावित थे तो राम और कृष्ण के बारे में भी उनकी अलग जिज्ञासा थी। वह अपने सांस्कृतिक व्यक्तित्व से सांस्कृतिक समाजवाद और मानवाधिकारों का अधिकतम फैलाव कैसे हो, इसके लिए तरपर दिखते हैं। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से संबंध विच्छेद हो या किसी मुद्दे पर अपने बेबाक निर्णय लेने की बात, वह योद्धा की तरह खड़े हुए और निरंतर उन्होने अपना पक्ष रखा। लोहिया के बारे में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार गांधी ने कहा, 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है', तो लोहिया के संघर्ष भी उसी प्रकार बोलते हैं कि 'लोहिया जीवन-संघर्ष ही उनका दर्शन है।' लोहया ने मार्क्स व गांधी से अलग एक रेखा खींची। उसके पीछे किसी का अवदान था, ऐसा नहीं है; बल्कि लोहिया स्वयं लोहिया को स्थापित करते हैं। हां, लोहिया के समकालीन बहुत से समाजवादी थे, उन्हें भी हम कमतर नहीं कह सकते; लेकिन लोहिया उनमें एक अलग छवि बनाते हैं, यह सच्चाई है।"[24]

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ होने पर अंग्रेज सरकार द्वारा भारत को जबरदस्ती उसमें शामिल करने पर लोहिया जी ने इसका विरोध किया और अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा भारतीयों से यह अपील की कि वह सभी सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करें। इस पर उन्हें मई 1939 को गिरफ्तार कर लिया गया किन्तु युवाओं के तीव्र विरोध के कारण उन्हें अगले ही दिन छोड़ दिया गया।

जेल से छूटते ही उन्होंने 01 जून, 1940 को 'हरिजन' में एक लेख लिखा जिसके प्रकाशित होते ही उन्हें दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें दो वर्ष

की सजा दी गयी। उन्हें सजा देते वक्त मजिस्ट्रेट ने भी माना कि वह एक उच्च कोटि के विद्वान, सभ्य एवं सज्जन पुरुष हैं जिनकी विचारधारा उदार और नैतिक चरित्र उच्च है। आखिरकार दिसंबर 1941 को सरकार को लोहिया जी सहित कांग्रेस के सभी नेताओं को छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।

सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के समय जब कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए तब बाकी बचे सदस्यों के साथ मिलकर लोहिया व अन्य ने आंदोलन को जारी रखा। उन्होंने अपनी गुप्त प्रिंटिंग प्रेस से न सिर्फ 'करो या मरो' के विषय पर अनेक लेख, पोस्टर और पम्पलेट छापकर वितरित किए बल्कि मुंबई के गुप्त कांग्रेस रेडियो से तीन महीनों तक, जब तक वह पकड़े नहीं गए, ऊषा मेहता के साथ मिलकर संदेशों का प्रसारण भी किया। इसके अलावा उन्होंने प्रसिद्ध समाजवादी विचारक अरुणा असफ अली के साथ मिलकर कांग्रेस के मासिक पत्र 'इंकलाब' का सफल संपादन किया।

मई 1944 में लोहिया को मुंबई में गिरफ्तार करके लाहौर की कुख्यात जेल में ले जाया गया। वहां उन्हें इतनी अमानवीय यातनाएं दी गयीं कि उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। इस पर भी लोहिया जी टूटे नहीं क्योंकि उनके पास नैतिक और आत्मबल की कमी न थी। बाद में गांधी जी के दबाव डालने पर सरकार ने 1946 में लोहिया व उनके साथी जयप्रकाश नारायण को मुक्त कर दिया।

इस समय तक स्वतंत्रता प्राप्ति लगभग सुनिश्चित हो गयी थी लेकिन गोवा अभी भी पुर्तगालियों के कब्जे में था। इसलिए जेल से मुक्त होने के बाद लोहिया ने गोवा जाने का निश्चय किया। वहां पहुंचने पर उन्हें पता चला कि पुर्तगाली सरकार ने गोवा में आंदोलन को दबाने के लिए भाषण और लोगों द्वारा एक जगह पर एकत्रित होने पर प्रतिबंध लगा दिया है। इस स्थिति में लोहिया ने स्वयं भाषण देने का निश्चय किया किन्तु उनके सभा स्थल पर पहुंचने से पूर्व ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना का इतना व्यापक प्रचार हुआ कि अंत में पुर्तगाली सरकार को यह प्रतिबंध हटाने के लिए विवश होना पड़ा। गोवावासियों ने आज भी लोहिया जी के इस पुनीत कार्य को अपने लोक गीतों में सहेजकर रखा है।

लोहिया गांधीजी के सच्चे अनुयायी थे। उन्होंने सदैव भारत विभाजन का विरोध किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जब हिंदू-मुस्लिम एकता की खांई गहरी होती जा रही थी उस समय उन्होंने स्वयं दंगा प्रभावित क्षेत्रों में जाकर लोगों से अपील की कि वह हिंसा का रास्ता छोड़कर एकता का मार्ग अपनाएं। 15 अगस्त सन् 1947 को जब दिल्ली में भारत के बड़े-बड़े नेता सत्ता के हस्तांतरण समारोह में शामिल थे तब लोहिया गांधीजी के साथ थे। 30 जनवरी सन् 1948 को गांधीजी की हत्या और सांप्रदायिक दंगों की स्थिति में कांग्रेसी नेताओं की भूमिका से असंतुष्ट होकर कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने किसानों, मजदूरों और कामगारों को एकजुट करने का फैसला किया और कांग्रेस से अलग हो गयी। इसके बाद लोहिया ने पूरे देश का भ्रमण किया और नेहरू सरकार की कमियों की आलोचना की।

लोहिया ने नेहरूवियन सभ्यता का खुलकर विरोध किया। यद्यपि उस सभ्यता का विरोध गांधीजी ने भी किया था, लेकिन गांधी और लोहिया में फर्क यह था कि गांधी ने कभी सत्ता में आकर या जन प्रतिनिधि के रूप में विरोध नहीं जताया जबकि लोहिया ने सदन तक अपना विरोध दर्ज किया। हिंदी, स्त्री, जातीय असमानता और वैश्विकता पर वह खुलकर बोले और इस बात की पूरी कोशिश की कि उसे धरातल पर लाया जाए।

लोहिया जी का कहना था कि 'जिंदा कौमें पांच साल का इंतजार नहीं करतीं'। अर्थात् यदि कोई सरकार जनता के प्रति पूरी तरह जवाबदेह नहीं है और उसका शासन जनता के हित के अनुसार नहीं है तो उसे जनता को उखाड़ फेंकना चाहिए।

यद्यपि लोहिया पर गांधीजी का प्रभाव बचपन से ही था, किन्तु वे गांधीजी के अंधभक्त नहीं थे। राजनीति में गांधीजी के अहिंसात्मक प्रतिरोध को वे शुरू से ही युगान्तकारी देन मानते थे। किन्तु गांधीजी के आर्थिक विचारों से वे कभी पूर्णतया सहमत नहीं थे। बचपन में संस्कृत के अध्ययन ने उनका झुकाव देश के सांस्कृतिक इतिहास की ओर कर दिया था। इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या उन्हें कभी मान्य नहीं रही, बल्कि उन्होंने समाजवाद को एक नई सभ्यता के रूप में देखाः ऐसी सभ्यता जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण के लिए कोई स्थान न

हो। प्रारंभ से ही लोहिया जी का झुकाव समाजवाद की ओर था। इस दृष्टि से वे संपत्ति के सामाजिक स्वामित्व को एक बुनियादी आवश्यकता मानते थे। कम्युनिस्ट राजनीति के प्रति उनके मन में कभी कोई आस्था नहीं रही। सोवियत रूस को वे अपने छात्र जीवन में ही समाजवादी सभ्यता के निर्माण का एक प्रारंभिक प्रयोग नहीं मानते थे क्योंकि अब तक यह प्रमाणित हो गया था कि रूस तानाशाही की हुकूमत के नीचे जनता की इच्छाओं और भावनाओं से दूर हो गया है।

लोहिया सच्चे अर्थों में समाजवादी थे। वह पूरी दुनिया के समाजवादियों को एक मंच पर लाना चाहते थे। 'प्रजा समाजवादी दल' के महामंत्री बनने के बाद उन्होंने 'हिंद किसान पंचायत' और 'वर्ल्ड डेवलपमेंट काउंसिल' आदि संस्थाओं का गठन इसलिए किया ताकि किसानों की रोजमर्रा की समस्याओं को सुना जा सके और उनका समाधान निकालकर पूरे विश्व में शांति स्थापना में सहयोग दिया जा सके। लेकिन इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि उन्हें आजाद भारत में 12 बार की जेल के सिवाय कुछ नहीं मिला। लोहिया जी अपने इस सपने को साथ लिए 12 अक्टूबर सन् 1967 को सदा के लिए इस संसार से विदा हो गए।

लोहिया समाजवाद को एक परिपूर्ण वैचारिक सिद्धांत और कार्यक्रम के रूप में स्वीकार करते हैं। इस संदर्भ में वे गांधीवाद को न तो पूर्णतः स्वीकार करते हैं और न ही वे उसे नकारते हैं। वास्तव में लोहिया समाजवाद का भारतीय संदर्भों के साथ एक तालमेल बिठाना चाहते हैं जिसमें गांधी और मार्क्स के विचारों का सामंजस्य और अलगाव दोनों ही दृष्टि गोचर होते हैं। "वह पश्चिमी देशों के पूंजीवाद और सोवियत रूस के 'वर्ग संघर्ष' के सिद्धांत के साथ 'गांधी विचार दर्शन' की स्थापना करना चाहते थे। इस कारण डॉ.लोहिया का सिद्धांत भारत वर्ष के स्वदेशी परम्परा के अनुकूल और स्वदेशी धारणाओं का परिपोषक बन गया। इस दृष्टि से डॉ.लोहिया के सिद्धांत को भौतिक और स्वदेशी माना जाना चाहिए। और यही कारण है कि इस देश के लाखों लोगों ने डॉ.लोहिया का अनुसरण किया और समाजवादी विचारधारा तथा लोहिया को व्यापक मान्यता मिली।"[25]

लोहिया जहां आदर्श के रूप में सत्याग्रह को स्वीकार करते हैं वहीं समाज की तात्कालिक संरचना और विचार स्तर को देखते हुए वे वर्ग संघर्ष और सिविल

नाफरमानी के हथियारों को उठाने में भी संकोच नहीं करते हैं। लोहिया भारतीय समाज जोकि विभिन्न जातियों में विभाजित है, के संबंध में सोचते थे कि यहां वर्ग संघर्ष हिंसक अथवा अहिंसक किसी भी रूप में संभव नहीं है। इसलिए वह पहले जाति को मिटाकर समाज को वर्गीय विभाजन में ले जाना चाहते थे। वे इस तथ्य से भलीभांति वाकिफ थे कि यहां बदलाव तब तक संभव नहीं है जब तक यहां जातिगत व्यवस्था विद्यमान है। सिविल नाफरमानी से लोहिया का तात्पर्य सरकार के उन नियमों और कानूनों को मानने से इंकार करना था जो उनके विचारों की कसौटी पर खरे नहीं हैं। उनका विचार था कि सत्याग्रह जीवन शैली है और सिविल नाफरमानी मानव स्वभाव होना चाहिए। वास्तव में लोहिया हर व्यक्ति को सिविल नाफरमानी का अभ्यस्त बनाना चाहते थे ताकि उनमें हर क्षण, हर जगह, हर व्यवस्था को नकारने की क्षमता और अभ्यास पैदा हो सके। इसीलिए लोहिया ने हर संभावित अवसर पर सिविल नाफरमानी का प्रयोग किया है।

लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति के दृष्टा और निर्माता थे। यद्यपि लोहिया गांधीजी के सत्याग्रह और अहिंसा के विचारों के प्रबल समर्थक थे फिर भी वे गांधीवाद को एक अधूरा दर्शन मानते थे। उसी प्रकार वे समाजवादी तो थे लेकिन मार्क्स के दर्शन को भी वे एकांकी मानते थे। वे राष्ट्रवादी होते हुए भी विश्व–सरकार का सपना देखते थे। यद्यपि वे आधुनिकतम् विद्रोही और क्रांतिकारी थे तथापि वे शांति व अहिंसा के अनूठे उपासक भी थे। उनका विचार था कि पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों एक दूसरे के विरोधी होकर भी एकांकी और हेय हैं। इन दोनों से समाजवाद ही छुटकारा दे सकता है। वे समाजवाद को भी प्रजातंत्र के बिना अधूरा मानते थे। उनकी दृष्टि में प्रजातंत्र और समाजवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों ही एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं।

भारत के इतिहास के बारे में भी डॉ.लोहिया की राय सामान्य व्याख्याओं से भिन्न थी। उनका विचार था कि–"हमारा देश शासकों की फूट के कारण विदेशी आक्रमण का शिकार नहीं हुआ, बल्कि उसके शिकार होने का कारण अधिकांश जनता का उसासीन हो जाना था। जनता के रवैये में इसी तरह की उदासीनता का बना रहना उन्हें खतरा जान पड़ता था। उनको यह महसूस हुआ कि कांग्रेस का

आंदोलन भी– जो शायद हाल के इतिहास का सबसे बड़ा आंदोलन था– सिर्फ समाज के विशिष्ट वर्ग को ही अपनी ओर खींच सका। जब तक राजनीति जनता में सक्रियता लाने में सक्षम नहीं होती, तब तक देश का भविष्य नहीं बन सकता। यह उदासीनता स्थायी बन गई है और जनता की आदत बन गई है। इसकी जड़ें गहरी व मजबूत हैं, सो इनको दूर करने के लिए अपरम्परागत और नए तरीकों की जरूरत है।"[26] लोहिया के समाजवादी दर्शन के आधारभूत तथ्य यही विचार थे। अपने इन विचारों पर आधारित सिद्धांतों को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि सामाजवाद की बुनियाद समता, बराबरी, छोटी मशीनें, सामाजिक मिल्कियत, चौखंभा राज और विश्व राज्य में है।

धर्म और राजनीति के बारे में भी लोहिया के विचार परंपरागत समाजवादियों से भिन्न हैं। वे धर्म और राजनीति को एक अनिवार्य सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार कर इन पर सोचते हैं। "अगर समाज है तो धर्म और राजनीति दोनों रहेंगे। एक मनुष्य के श्रेयस की तलाश के रूप में और दूसरा तात्कालिक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष के उपकरण के रूप में। अतः दोनों में से कोई भी मानव जीवन में अप्रत्याशित अथवा अवांछित या अप्रासंगिक हस्तक्षेप नहीं है।"[27] उनका मानना है कि पुराना समाजवाद इस प्रकार नहीं सोचता था। वह धर्म के प्रति निषेधात्मक दृष्टि रखते हुए इसे 'अफीम' मानता था। जबकि डॉ.लोहिया के अनुसार–"कम से कम चार रूपों में धर्म की भूमिका स्पष्ट दिखती है। एक, विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष और कभी–कभी तो रक्त–रंजित संघर्ष के रूप में; दो, विषम संपत्ति–संबंध, जाति और स्त्रियों की वर्तमान दुखद स्थिति के संरक्षक के रूप में; तीन, अच्छे आचरण हेतु सामाजिक–नैतिक शिक्षण के रूप में; और चार, ध्यान व करुणा हेतु अपेक्षित अनुशासन के रूप में।"[28] इस बारे में वह और स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "पहली दो अभिव्यक्तियां सचमुच धर्म को आम जनता के लिए अफीम बनाती हैं। राजनीति को धार्मिक बनाने और इस प्रकार सत्ता–संघर्ष को थोड़ा नरम बनाने के बजाए धर्म स्वयं राजनीतिक बन जाता है और इस प्रकार कलह में मतांधता जोड़ता है। ऐसे धर्म की सचमुच निंदा की जानी चाहिए। लेकिन धर्म संबंधी दूसरी दो अभिव्यक्तियां राजनीति या समाज के लिए अप्रासंगिक नहीं हो सकतीं।"[29]

लोहिया धर्म और राजनीति के संबंध को व्याख्यायित करते हुए कहा करते थे कि– "धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म है।"[30]

लोहिया ने अपनी समाजवादी व्यवस्था में सप्तक्रांति का नारा दिया है। इसके अंतर्गत उन्होंने जिन सात बिंदुओं को रखा है, उसमें स्त्री–पुरुष के प्रति समानता का विचार था, रंगभेद पर आधारित असमानता के विरुद्ध आवाज थी और सामाजिक, राजनीतिक असमानता के विरुद्ध टिप्पणी थी। वह उपनिवेशवाद तथा विदेशी शासन के विरुद्ध खड़े मिलते हैं तथा अधिकतम प्राप्य आर्थिक समानता का समर्थन करते हैं। व्यक्तिगत यानी निजता तथा लोकतांत्रिक अधिकार के लिए प्रखर आवाज बुलंद करते हैं और हथियार के विरुद्ध तथा आतंक के खिलाफ नागरिक अवज्ञा करने की राह को उचित ठहराते हैं। वस्तुतः संक्षेप में लोहिया की सप्तक्रांति को समाजवाद का एक कार्यक्रम कहा जा सकता है।

मूल रूप से यही वैचारिक आधार थे, जो अनुभव और अध्ययन के साथ निरंतर विकसित होते गए और कालान्तर में इन्हीं वैचारिक आधारों पर लोहिया ने राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन एवं सामाजिक संगठन के व्यापक क्षेत्र में एक नव सभ्यता के निर्माण के लिए आधार भूमि प्रस्तुत की जिसे संक्षेप में लोहिया का समाजवादी दर्शन कहा जा सकता है। वास्तव में समाजवाद लोहिया के लिए जीवन की परिभाषा थी। वे समाजवाद को मात्र शासन प्रणाली या जीवन–व्यवस्था के रूप में नहीं स्वीकारते थे। उनकी राय में समाजवाद एक अनुशासित, व्यवस्थित और क्रियाशील दर्शन है। "उनका समाजवाद किसी भी भारतीय नेता की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील, संघर्षपूर्ण एवं आदर्शोन्मुख है। गांधीवाद से प्रभावित उनका समाजवाद आंइस्टीन के वैज्ञानिक चिंतन एवं जर्मन नवस्वच्छंदतावाद का समन्वित रूप है। उनकी चिंतन प्रक्रिया में संपूर्ण विश्व की दार्शनिक चेतना समाहित थी। अतीत की घटनाओं को समझकर अपने चिंतन में आत्मसात् कर लेने योग्य उनमें यदि पर्याप्त इतिहास–दृष्टि थी, तो हमारी बौद्धिक क्षमता को नए आयाम देने वाला प्रखर आधुनिक भाव–बोध भी था।[31]

समकालीन संदर्भों में लोगों का विचार है कि समाजवाद अपनी मूल संवेदना से भटक गया है, लेकिन लोहिया से मुलायम सिंह यादव और अब उसी कड़ी में

अखिलेश सिंह का सत्ता में स्थापित होना कहीं–न–कहीं लोहिया की जीवंतता व प्रासंगिकता को प्रतिबिंबित करता है। "समाजवादी स्वर के नए स्तंभ के रूप में अखिलेश सिंह के प्रति लोगों के भीतर उपजे विश्वास ने इस बात की ओर संकेत किया है कि समाजवाद के भीतर लोगों का विश्वास जगा है और लोग अपने सुभेच्छु लोहिया के सपनों को अखिलेश सिंह या अन्य समाजवादी नेतृत्व में देख रहे हैं।"[32]

प्रस्तुत अध्याय में मैंने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के समग्र साहित्य का अध्ययन व विश्लेषण करने के क्रम में उनके साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टियों को समझने का प्रयास किया है। यहां मैं इस तथ्य को स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं कि कोई भी साहित्यकार अनेक विचारधाराओं से प्रभावित व प्रेरित हो सकता है। लेकिन मैंने इस अध्याय में मूलतः सर्वेश्वर के साहित्य में अभिव्यक्त समाजवादी चिंतन को ही आधार बनाया है और इस क्रम में उनके साहित्य में अभिव्यक्त गांधीवादी समाजवाद, मार्क्सवाद एवं डा.राममनोहर लोहिया के समाजवादी दर्शन को विश्लेषित करने का संक्षिप्त प्रयास किया है। सर्वेश्वर के साहित्य में इन वैचारिक अभिव्यक्तियों के संबंध में डा.कृष्णदत्त पालीवाल का विचार है कि– "स्वाधीनता आंदोलन के संस्कार सर्वेश्वर में गांधी की दृढ़ता बनकर मौजूद रहे और स्वाधीनता के बाद लोहिया की विचारधारा ने उनके कवि–मानस को सींचकर सबल बनाया। मार्क्स ने उन्हें प्रभावित किया पर वे मार्क्सवादी नहीं बन सके।"[33]

मार्क्स, गांधी एवं लोहिया की वैचारिक दृष्टि का संक्षिप्त अनुशीलन एवं विश्लेषण करने के पश्चात मैंने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के साहित्य में उक्त विचारों को परखने और जानने का प्रयास किया है।

4.4 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मूलतः कवि हैं। उनके सभी काव्य–संग्रहों में ऐसी अनेक कविताएं संकलित हैं जिन पर समाजवादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। इस संदर्भ में यदि उनके प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की घंटियां' में गांधीवादी समाजवाद का विश्लेषण किया जाए तो इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में गांधीवादी समाजवाद का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होता है। फिर भी 'पीस

पैगोडा', 'बेबी का टैंक', 'आटे की चिड़िया' और 'सिपाहियों का गीत' शीर्षक कविताएं कहीं न कहीं गांधीवादी समाजवाद से प्रेरित दिखाई देती हैं। "कवि जानता कि कुछ देश और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो शांति की बात तो करते हैं लेकिन भीतर ही भीतर युद्ध की तैयारियां करते रहते हैं।"[34] वह ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए प्रहार करते हैं-

"कि तुमने शांति लिखते समय
एक दूसरे की ओर न देखकर
अपने रिवाल्वरों की ओर देखा.........
कि तुमने करुणा और स्नेह से
एक दूसरे के सम्मुख सिर झुकाने के बजाए
अपने भारी फौजी बूटों के ठोकरों की आवाज की।"[35]

कवि शांति और अहिंसा के सिद्धांतों के इन खोखले और बनावटीपन से बहुत क्षुब्ध है। इसी काव्य-संग्रह की कुछ कविताओं में मार्क्सवाद का प्रभाव भी देखने को मिलता है। 'खाली जेबें, पागल कुत्ते और बासी कविताएं' शीर्षक कविता मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है-

"खस की टट्टियों में आग लगा दें
बर्फ की गाड़ियां सड़कों पर उलट दें,
कोल्ड ड्रिंक, आइस क्रीम,
रेफ्रीजरेटर, थरमस, फैन
ठंडे सुगन्धित बिस्तरे
तहखानों और बन्द कमरों से निकालकर
गलियों में फेंक दें.........
सिर के चिकने ठंडे बाल पकड़कर
आहिस्ता से महज इतना समझाएं
कि हम भी रईस थेः
फर्क इतना ही था
कि छल और फरेब की,

झूठे हिसाब-किताब की

हमने इल्लत नहीं पाली थी,

इसीलिए तुमसे अपनी जेब कटवा ली थी।"[36]

उपर्युक्त कविता में कवि आर्थिक असमानता से इतना आहत है कि वह आक्रोश में आकर पूंजीपतियों के कीमती सामानों को सड़क पर फेंक देने में भी गुरेज नहीं करता है।

सर्वेश्वर के इस काव्य-संग्रह की बहुत-सी कविताएं लोहिया की समाजवादी विचारधारा से भी प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए 'गीत रह गया कोई,' 'घास काटने की मशीन', 'खाली जेबें, पागल कुत्ते और बासी कविताएं', 'तेजी से जाती हुई,' 'सरकंडे की गाड़ी', 'कॉफी हाउस में एक मेलोड्रामा' और 'प्लेटफार्म' आदि शीर्षक कविताओं पर लोहिया के समाजवदी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है-

"वह आदमी है

और आदमियों की रहनुमाई करता कै

उसे संतों की दुकान से

निरर्थक पूजा नहीं खरीदनी है।"[37]

'कॉफी हाउस में एक मेलोड्रामा' शीर्षक कविता के संदर्भ में डॉ.पालीवाल का विचार है कि "कवि मानस पर डॉ.राममनोहर लोहिया के विचारों की यह स्पष्ट मुहर है। जान-बूझकर कवि ने कविता के अंत में डॉ. लोहिया के विचारों की प्रेरणा का संकेत दिया है। लोहियावादी विचारधारा का ही प्रभाव है कि कवि उसके बाद के संकलनों में उनकी वैचारिक भूमिका को काव्य में ढालता गया है। इस विचार-दर्शन में लोहे की जेबों में छिपी हुई बारूद की असंगति को विश्लेषण में पकड़ा गया है। जहां हर दर्शन क्रास लेकर खड़ा था, हर साक्रेटीज को जहर दिया जा रहा था, जहां रूसो का समता, बंधुत्व, तथा स्वतंत्रता वाला सिद्धांत जीवित किया जा रहा है, जहां काल मार्क्स का अखाड़ा था वहां लोहिया का विचारक देश की हालत समझकर बोला है-

बचो, उनसे बचो

जो लकड़ी की टांगों पर दौड़कर

मानव प्रगति का इतिहास लिखने में लगे हैं।

इस आवाज को सुनकर जंग खाए इंसान जग पड़े थे। देवताओं और संतों के नकली चेहरे लगाए हुए लोगों को लोहिया विचार ने नंगा कर दिया था। इस प्रकार संपूर्ण कविता में लोहिया विचार दर्शन का तार्किक विस्फोट है।"[38]

'बांस का पुल' सर्वेश्वर का दूसरा काव्य संग्रह है। इस संग्रह का शीर्षक 'बांस का पुल' एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो संघर्षों को झेलने की शक्ति रखता है। यद्यपि इस संग्रह की ज्यादातर कविताएं विभिन्न विषयों से संबंधित हैं लेकिन कुछ कविताओं में कवि का समाजवादी चिंतन भी मुखरित हुआ है। 'प्रगति का गीत' शीर्षक कविता ऐसी ही एक कविता है जिसमें कवि ने प्रगति के नाम पर सरकारों द्वारा जनता को सिर्फ आंकड़े दिखाकर गुमराह किए जाने पर तीखा व्यंग्य किया है–

"चल, आराम हराम है,
राह कठिन है
और कमाना नाम है
बना योजना
दिखा काम ही काम है।"[39]

इन पक्तियों मे लोहिया के समाजवादी चिंतन को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'दिवंगत पिता के लिए' शीर्षक कविता भी गांधीवादी समाजवाद से प्रेरित कही जा सकती है–

"'सादगी से रहूंगा'
तुमने सोचा था
अतः हर उत्सव में तुम द्वार पर खड़े रहे।
'झूठ नहीं बोलूंगा'
तुमने व्रत लिया था
अतः हर गोष्ठी में तुम चित्र से जड़े रहे।"[40]

इस कविता के संबंध में डॉ.दीपा जार्ज का कथन है कि– “इस कविता में आज के सारहीन, जर्जर मूल्यों पर व्यंग्य का स्वर है।”[41] इस संग्रह की अधिकांश कविताओं पर मार्क्सवादी विचार धारा का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सर्वेश्वर का तीसरा काव्य-संग्रह ‘एक सूनी नाव’ है। इस संग्रह के संबंध में डॉ.पालीवाल का विचार है–“यह पहला काव्य-संकलन है जिसमें कवि व्यंग्य-वक्रोक्ति की कला को विकसित करने के साथ नई राहों की ओर बहुत तेजी से झपटता है।”[42]

इस संग्रह की कविताओं में ‘युद्ध स्थिति’ शीर्षक कविता गांधीवादी समाजवाद से प्रभावित कही जा सकती है–

“मैं घृणा करता हूँ उस युद्ध से
जो बेड़ियां खोलने की जगह
बेड़ियां पहनाता है,
दीवारें ढहाने की जगह
दीवारें उठाता है।”[43]

इसी प्रकार ‘लीक पर वे चलें’, ‘व्यंग्य मत बोलो’, ‘पढ़ी-लिखी मुर्गियां’, ‘घन्त-मन्त’, ‘अभिशाप’, ‘युद्ध-स्थिति’, ‘तर्कयोग’, और ‘जाता हूं मैं’ शीर्षक कविताओं पर डॉ.लोहिया की समाजवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

“साम्यवाद या पूंजीवाद
मैं दोनों पर थूकता हूं
और पूछता हूं
जिसके पैर में तुम जूते नहीं दे सकते
उसके हाथ में तुम्हें
बंदूक देने का क्या अधिकार है?”[44]

इस संग्रह की कविताओं में भी विषयगत विविधता देखने को मिलती है। लेकिन यहां सामाजिक और राजनीतिक विषयों से संबंधित कविताओं में व्यंग्य की

प्रधानता है। "इन कविताओं में व्यंग्य इतना मार्मिक हो गया है कि उसका प्रभाव अंतःकरण पर तत्काल पड़ता है।"[45]

मार्क्सवादी विचारधारा धर्म को शोषण का एक हथियार मानती है। कवि सर्वेश्वर को भी लगता है कि आज ईश्वर के प्रति सच्ची श्रृद्धा का अभाव है। लोगों के लिए ईश्वर का नाम एक कवच जैसा है जिसके सहारे वे अपने पापों को ढकना चाहते हैं। 'इस मृत नगर में' शीर्षक कविता समाज की इसी सच्चाई को बेनकाब करती कविता है-

"और ईश्वर का नाम
हर कमीने चेहरे पर मुखौटा बन जाता है।
आस्था के नाम पर मूर्खता,
विवेक के नाम पर कायरता,
सफलता के नाम पर नीचता,
मुहर की तरह हर व्यक्ति पर लगी हुई है।"[46]

वास्तव में इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से सर्वेश्वर ने व्यंग्य का सहारा लेते हुए समाज को एक दिशा देने का प्रयास किया है। इस संग्रह के संबंध में डॉ.मञ्जु त्रिपाठी के विचार उद्धृत करना प्रासंगिक होगा-"वस्तुतः सर्वेश्वर जी के प्रस्तुत काव्य-संग्रह को आज की कविता में एक सम्मानीय स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी कृतिकार का दायित्व अपनी कृति के माध्यम से समाज तथा समूह की वास्तविक स्थिति का चित्रण करके उसके सुधार के रास्ते तथा सभी शंकाओं का समाधान का उचित ढंग से बतलाना होता है व्यंग्यार्थ अथवा संकेतार्थ द्वारा, कहने की आवश्यकता नहीं कि सर्वेश्वर जी के इस काव्य-संग्रह में विषयों का वैविध्य आज के समाज व जीवन की विविधता के अनुकूल है' जिसमें इन सारी स्थितियों को सफलतम् अभिव्यक्ति मिली है।"[47]

'गर्म हवाएं' सर्वेश्वर का चौथा काव्य-संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं में कवि सर्वेश्वर लोहिया की विचारधारा से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। संग्रह के आरम्भ में ही कवि का वक्तव्य है-

"अब मैं कवि नहीं रहा
एक काला झंडा हूं
तिरपन करोड़ भौंहों के बीच मातम में
खड़ी है मेरी कविता।"[48]

यहां 'मातम' शब्द ध्यान देने योग्य है। यह शब्द इस भाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम है कि देश के तिरपन करोड़ लोगों में गहरी निराशा और बेचैनी है जो आगे चलकर सर्वेश्वर की कविताओं में अभिव्यक्ति पाती है। इस संग्रह की अन्य कविताओं में 'पंचधातु' शीर्षक कविता पर गांधीवादी समाजवाद का प्रभाव देखा जा सकता है यद्यपि कविता में कवि ने इस दर्शन की दुर्दशा पर तीव्र व्यंग्य ही किया है–

"मैं जानता हूं
क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का,
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाने के काम आ गयी,
भीड़ से बचकर
एक सम्मानित विशेष द्वारा से
आखिर वे उसी के सहारे तो जा सकते थे।
और तुम्हारी लाठी...........
अच्छा हुआ
तुम चले गए
अन्यथा तुम्हारे तन का
ये जननायक क्या करते
पता नहीं।"[49]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने व्यंग्य के माध्यम से उस राजनीतिक अवसरवादिता पर तीव्र प्रहार किया है जिसने बापू के सिद्धांतों को महज सत्ता प्राप्ति का एक जरिया बना लिया है। "जिन सिद्धांतों पर चलकर हमारे स्वतंत्रता

संग्राम सेनानी तथा पूज्य बापू राष्ट्र को आजाद करा पाए, वही सिद्धांत आज दफन होते जा रहे हैं। उनके अर्थ, अभिप्राय और आशय बदल रहे हैं।”[50]

इसी क्रम में ‘लोहिया के न रहने पर’ शीर्षक कविता में कवि आवेश में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव में दिखाई पड़ता है–

“संतों की दुकानों के आगे
खड़ी रहेगी उसकी मचान
भेड़ों के वेश में निकलते कमीने तेंदुओं पर
तनी रहेगी उसकी दृष्टि।”[51]

इन पंक्तियों के संदर्भ में डॉ.मञ्जु का विचार है कि–“सर्वेश्वर जी किसी वाद विशेष के समर्थक नहीं है पर कहीं–कहीं साम्यवाद का समर्थन उनके महान कवि व्यक्तित्व को प्रभावित करता प्रतीत होता है।”[52]

जैसा कि मैंने पूर्व में ही लिखा है कि इस काव्य–संग्रह में ऐसी अनेक कविताएं हैं जिन में लोहिया की समाजवादी विचारधारा को अभिव्यक्ति मिली है। ‘धीरे—धीरे’, ‘यह खिड़की’, ‘स्थिति यही है’, ‘लोहिया के न रहने पर’, ‘छीनने आए हैं वे’, ‘बुद्धिजीवी’, ‘दूसरों के कपड़े पहनकर’ और ‘राग डींग कल्याण’ शीर्षक कविताओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। एक उदाहरण देखिए–

“मेरे दोस्तों !
मैं उस देश का क्या करूं
जो धीरे–धीरे
धीरे–धीरे खाली होता जा रहा है
भरी बोतलों के पास खाली गिलास–सा
पड़ा हुआ है.........
सुनो ढाल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे–धीरे एक क्रांति यात्रा
शव–यात्रा में बदल रही है।”[53]

इस कविता के माध्यम से कवि ने इस तथ्य को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है कि आजादी के बाद हमें जो स्वतंत्रता मिली है वो कितनी सारहीन और खोखली है।

इस संग्रह के संबंध मे डा.पालीवाल का यह कथन बिल्कुल सही प्रतीत होता है कि–"एक वृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कवि अपने को 'गर्म हवाएं' की तमाम कविताओं से जोड़ लेता है। समसामयिक राजनीति की उखड़ी सांसों और काली खांसियों की बेदमी हालत कविता के अनुभव चक्र में रचाव पाती है।......आरंभ से ही यह जनकवि मजदूरों की बीड़ियों और गरीबों के चूल्हे में सुलगना चाहता था। उसी अदम्य इच्छा का भारी विस्फोट 'गर्म हवाएं' हैं।"[54]

सर्वेश्वर का पांचवां काव्य–संग्रह 'कुआनो नदी' है जिसे दो भागों–'कुआनो नदी' एवं 'गरीबी हटाओ' में विभक्त किया गया है। 'कुआनो नदी' वस्तुतः एक लम्बी कविता है जिसे क्रमशः तीन उपभागों–'कुआनो नदी', 'कुआनो नदी के पार', और 'कुआनो नदी–खतरे का निशान' में विभक्त किया गया है। इस संग्रह के बारे में कवि का विचार है कि–"पहली कविता 'कुआनो नदी' में देश की गरीबी का चित्रण है। दूसरी कविता 'कुआनो नदी के पार' में देश में चारों ओर फैली हिंसा का और तीसरी कविता 'कुआनो नदी–खतरे का निशान पर' में उस उद्वेलन का जो सामाजिक परिवर्तन के लिए हिंसा का जवाब हिंसा ही देने को आकुल हैं।...........वर्तमान समाज में अब सुधार की गुंजाइश नहीं है। केवल आमूल परिवर्तन का ही विकल्प है। कविता में उस आम आदमी की मनः स्थिति का चित्रण है जो क्रांतिकारी शक्तियों को न तो स्वीकार कर पाता है और न अस्वीकार कर पाता है।"[55] कविता के इन तीनों चरणों में आम आदमी की त्रासदी को अभिव्यक्ति मिली है। इस क्रम में इस संग्रह की विविध कविताओं का विश्लेषण करने पर 'कम्बोदिया' और 'युद्ध के नाम पर' शीर्षक कविताओं में गांधीवादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है–

"इस गरीब धरती के
निहत्थे आदमियों की ओर से
कह दो;

जब सारे अस्त्र जवाब दे जाएं
तब उस पत्थर से
वे इनसानियत का सिर फोड़े
जिसे वे चांद से लाए हैं।"[56]

इस संग्रह की अन्य कविताओं- 'कुआनो नदी', 'कुआनो नदी के पार', 'कुआनो नदी-खतरे का निशान', 'गरीबी हटाओ', 'भुजैनिया का पोखरा', 'गोबरैले', 'हम ले चलेंगे', 'बांसगांव', 'एक बस्ती जल रही है', 'युद्ध के नाम पर', 'यही वह पत्थर है', 'पथराव', 'झाड़े रौ महँगुआ' और 'गरीबा का गीत' शीर्षक कविताओं में लोहिया के समाजवादी दर्शन को अभिव्यक्ति मिली है। वास्तव में सर्वेश्वर भी लोहिया की तरह कागजी दिखावे और आंकड़ेबाजी में विश्वास नहीं करते है-

"गरीबी हटाओ सुनते ही
उन्होंने बड़े-बड़े नक्शे बनाए
आंकड़े इकट्ठे किए
और उन्हें रटने लगे
नक्शों की वर्दी पहन
जब वे एक कतार में खड़े हुए
और राष्ट्रीय धुन बजने लगी
तब उन्होंने कवायद शुरू की
और एक ही जगह पर पैर पटकने लगे।"[57]

इस संग्रह की कविताओं की अभिव्यक्ति के संदर्भ में डॉ.पालीवाल लिखते हैं कि-"कवि चाहता है कि जन-चेतना में एक जन-क्रांति का स्वर बुलंद हो, नीला दर्द रक्त की लालिमा में फूट पड़े। अपने व्यापक अनुभवों को कवि ने इस कविता में छानकर एकत्रित किया है।"[58] इस दृष्टि से नई कविता की तमाम लम्बी कविताओं में इस कविता का अपना अलग व्यक्तित्व बनता है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' तथा 'कुआनो नदी' जन जीवन का सामाजिक इतिहास प्रस्तुत कर पाने के कारण तुलनीय कविताएं हैं।

सर्वेश्वर का छठा काव्य-संग्रह 'जंगल का दर्द' है। पूर्व संग्रहों की भांति इस संग्रह का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में देश के आपातकाल के समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। "वस्तुत यह काव्य-संग्रह उस जंगल की अभिव्यक्ति है जिसमें हम और आप रहते हैं, जिसमें सत्य, न्याय, प्रेम सब कुछ शक्ति और पैसों की तराजू पर तुलता है। जिसकी नैतिकता जंगल की नैतिकता है और जिसकी प्रधान वृत्ति- 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' जंगल की वृत्ति है। अर्थात् शक्तिशाली प्रत्येक वस्तु का उपभोक्ता, स्वामी व अधिकारी है। ठीक यही स्थिति हमारे समाज की भी है। यहां हर नेता, हर अधिकारी, हर पूंजीपति, हर मालिक अपने अधीनस्थ का सर्वस्व हड़पने को मुंह बाए बैठा है और हड़पता भी जा रहा है।"[59] इस संग्रह की अधिकतर कविताएं अपने समसामयिक वातावरण और उसकी घोर यातना से जोड़ी जा सकती हैं।

समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से 'आग', 'भेड़िया-1,2,3' और 'लाल साइकिल' शीर्षक कविताओं पर मार्क्सवाद का प्रभाव देखा जा सकता है-

"वह मजदूरों की ओर मुखातिब थी-
साथियों ! महीनों से आप की
पगार रुकी हुई है,......
आप फाके पर फाके कर रहे हो,
अब उनकी कोठियों का घेराव
करने के अलावा और कोई चारा नहीं,
क्या कहते हो ?
मैंने मजदूरों की आंखों की ओर देखा
कच्ची मिट्टी की गोलियां
आग में तपकर
सुर्ख हो गयीं थीं,
यह सुनते ही
गुलेल की तरह खिंच गईं

छूटने लगीं-

'घेराव? आग लगा देंगे आग।'"[60]

इसी प्रकार 'कितनी ठंड है', 'आग', 'रसोई', 'नक्शा', 'हाथ', 'रास्ता', 'जड़ें', 'राह निकलेगी', 'रेंगता सांप', 'भूख', 'धूल-1,2', 'इंतजार', 'जंगल का दर्द', 'कुत्ता-1,2,3', 'एक स्थिति', 'यह घर', 'संतवाणी', 'काला तेंदुआ-1,2', 'थोड़े दिन और', 'सर्पः चार स्थितियां', और 'टीन पर ओले-1,2' शीर्षक कविताओं में डॉ.राम मनोहर लोहिया के समाजवादी चिंतन को वाणी प्रदान की गई है। एक उदाहरण देखिए-

"इंतजार

शत्रु है

उस पर यकीन मत करो।

उस से बचो।

जो पाना है फौरन पा लो

जो करना है फौरन करो"[61]

उपर्युक्त पंक्तियां डॉ. लोहिया के विचार 'जिंदा कौमे पांच साल का इंतजार नहीं करती' से गहरा साम्य रखती हैं। इसलिए कवि जंगल के दर्द को पहचानकर वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध कठोर मुद्रा अपनाता है। इस काव्य-संग्रह की अभिव्यक्ति के संबंध में डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा है कि- "इस प्रकार प्रतिगामी शक्तियों से लड़ने वाला एक लड़ाकू जीवन-दर्शन कविता में महत्व-प्रतिष्ठा पाता रहा है। इस दृष्टि में पूंजीवादी, साम्राज्यवादी, सामंतवादी, अधिनायकवादी ताकतों को नष्ट करने का संदेश है एवं एक नवीन समाज-व्यवस्था को स्थापित करने का स्वप्न। अतः सर्वेश्वर की कविता 'मूड' की कविता न होकर व्यापक 'विजन' की कविता है। कवि व्यक्तिवादी भावों की भूमिका पर बलि नहीं होता है, कविता में परिवर्तनकारी नए विचारों की मशाल जलाता है।"[62]

'खूंटियों पर टंगे लोग' सर्वेश्वर का सातवां काव्य-संग्रह है। इस संग्रह की कविताएं कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर अनेक भाव-बोधों का दर्शन कराती हैं। परिवेशगत यथार्थ से जूझने की ताकत इस संग्रह में अधिक अभिव्यक्त

हुई है। रोजमर्रा की वस्तुओं जैसे– जूता, दस्ताने, कोट, खूंटी, मोजा और स्वेटर आदि को प्रतीकात्मक रूप में अर्थ बदलकर कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन कविताओं में यथास्थिति को स्वीकर कर लेने की व्यापक पीड़ा प्रकट हुई है। "यह पीड़ा कवि के आत्म से शुरू होकर समाज तक जाती है, और समाज से कवि के आत्म तक आती है। इस तरह कवि और समाज को पृथक न कर, एक करती हुई उसके काव्य–व्यक्ति को विराट कर जाती है। कवि न खुद से काटकर समाज को देखता है और न समाज से काटकर खुद को। इस तरह वह समग्रता में जीता और रचता है।"[63]

समाजवादी अभिव्यक्ति के स्तर पर देखा जाए तो इस संग्रह में 'दस्ताने', 'रिश्ते', 'मंटू बाबू', 'टपरा', 'उंगलियों में चुभे कांटे', 'तानाशाही से लड़ती एक कवयित्री', 'जरूरत है एक सरकारी जासूस की', 'मछली', एवं 'लू शुन और चिड़िया' शीर्षक कविताओं पर मार्क्सवादी समाजवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है–

"चिड़ियाघर के हिंसक पशुओं के
कठघरे खोल आने की बात
मैं अक्सर सोचता रहता हूं।
और अपने ओरी लोहार के पास
ऐसी चाभी बनवाने के लिए बैठा
रहता हूं जिससे सभी ताले खुल जाएं,
उसकी धोकनी के पास पड़े कच्चे लोहे में
देसी पिस्तौल की आकृति मैंने देखी है।"[64]

प्रस्तुत कविता में कवि समाज के बदलाव के लिए हिंसा के स्तर तक जाने को तैयार है। इसी क्रम में इस संग्रह में 'शब्दों का ठेला', 'फसल', 'कोट', 'स्वेटर', 'जूता–1,2,3,4', 'पोस्टमार्टम की रिपोर्ट', 'आहिस्ता मत चलो', 'आपातकाल', 'पेड़–प्रेम', 'फरार', 'हंजूरी', 'रेंगती उंगलियां', 'वह जब मुंह खोलता है', 'मृत्युदण्ड', 'पौढ़ शिक्षा–1,2', 'जरूरत है एक सरकारी जासूस की', 'अब कुछ ठीक नहीं', 'रंग तरबूजे का', 'देशगान', 'आओ आओ आओ', 'अब मैं सूरज को

नहीं डूबने दूंगा', 'मेरे भीतर की कोयल', 'गांव का सपेरा' शीर्षक कविताएं लोहिया की विचारधारा से प्रभावित कही जा सकती हैं-

"जेल के भीतर
खड़े होकर उसने देखा
बाहर उससे भी बड़ी जेल है
जिसमें बेशुमार लोग बंदी हैं
उन्हें मुक्त करना ज्यादा जरूरी है
और बजाए सींकचे काटने के
या सुरंग बनाने के
उनमें मानव आस्था
और संकल्प पर पड़ी
वे बेड़ियां काटनी होंगी
जो ईश्वर और नियति
के नाम पर लगी हुई हैं।"[65]

प्रस्तुत कविता में कवि ने बड़े ही सहज ढंग से लोहिया के समाजवादी दर्शन को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वस्तुतः इस संग्रह के माध्यम से कवि ने समाज को यह संदेश देने का प्रयास किया है कि खूँटी पर टंगे कपड़े की तरह आज का विवश व निरर्थक आदमी हर प्रकार की सक्रियता से विमुख हो चुका है। अपनी इस स्थिति को वह अपना नहीं बल्कि दूसरों का दोष समझता है। अपनी इसी सोच से वह अपनी असफलता बड़ी सरलता से दूसरों के मत्थे मढ़ कर स्वयं निर्दोष बनकर बच जाना चाहता है।

सर्वेश्वर का आठवां और अंतिम काव्य-संग्रह 'कोई मरे साथ चले' है। यह संग्रह सर्वेश्वर की मृत्योपरांत प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह में सर्वेश्वर की काव्य-यात्रा की प्रायः सभी प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। बृहद् मानवीय संदर्भों से निरंतर जुड़ते रहने की खासियत उनकी इस कृति में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। इस काव्य-संग्रह के संदर्भ में डॉ.संतोष कुमार तिवारी का विचार है कि-"सर्वेश्वर

का यह ताजा संकलन सबसे पहले उस अर्थ में अपनी एक विशेष पहचान बनाता हुआ नजर आता है, जो भीतर से रिक्त होते हुए भी उदास आदमी को भयावह वातावरण के बावजूद भी जीवन की अदम्य लालसा, कर्मशक्ति, आजाद चेतना और प्रजातांत्रिक मूल्यों के साथ इंसानियत के सही अर्थ का उद्घोष सुनाता है।"[66] वास्तव में दुनिया को बेहतर बनाने की चिंता के साथ दुखी एवं शोषित मानव जाति के प्रति गहरी सहानुभूति ही इस काव्य-संग्रह की प्रधान अभिव्यक्ति है।

समाजवादी चिंतन की दृष्टि से इस संग्रह में 'बारिश', 'जब अंधेरा हँसता है', 'आंख खोलने के लिए' और 'प्याऊ' शीर्षक कविताएं मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित कही जा सकती हैं; एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"जब अंधेरा हंसता है
रोशनी के दांत टूट जाते है
इसलिए जरूरी है
कि तुम उसकी गरदन जोर से दबाए रहो
वह बेदम छटपटाता रहे तुम्हारी जकड़ में
हर आत्महत्या से पहले
उसकी हत्या जरूरी है।"[67]

प्रस्तुत कविता में कवि पूंजीपतियों के घरों से छनकर आती शोषण की रोशनी से जीवन में अंधकार, निराशा और क्षोभ से भरे शोषित लोगों को सावधान करते हुए कहना चाहता है कि अब अन्याय और शोषण का प्रतिकार करना ही एकमात्र मार्ग है। अन्याय से बचकर भागने से मुक्ति नहीं मिलेगी।

इसी क्रम में इस संग्रह की कुछ कविताएं लोहिया के समाजवादी दर्शन से भी प्रभावित प्रतीत होती हैं। 'एक सपना', 'नाचो और रचो', 'कोई मेरे साथ चले', 'तब तक कैदी नहीं', 'बैठी है तनी हुई वह', 'पाकिस्तानी दोस्त से', 'ऊपर उछाल सकते हो', 'देश', 'मां ने कहा था', 'चोट-1,2,3', 'वे हमारे मसीहा नहीं हो सकते', 'क्रांतिकारी की मौत', 'संकल्प की मीनार', 'उस समय तुम कुछ नहीं कर सकोगे', 'कभी मत करो माफ-1,2', 'कल और आज', 'लोकतंत्र का गाना-1,2, 3'

आदि शीर्षक कविताओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'लोकतंत्र का गाना' शीर्षक कविता की ये पंक्तियां देखिए–

"बोर्ड समाजवाद का टांगे
दुःशासन की खुली दुकान
दुर्योधन सब शान से बैठे
हाथ में लबनी मुँह में पान।"[68]

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि समाजवादी पाखंड पर व्यंग्य कर रहा है। सामाजिक असमानता पर फलते-फूलते ऐसे पाखंडी समाजवाद का विरोध लोहिया के समाजवादी दर्शन में भी उजागर हुआ है।

इस संग्रह में "कवि की विचारधारा स्वस्थ सामाजिकता एवं लोकतांत्रिक जीवन पद्धति की हिमायती है। फलस्वरूप वे अपनी कविता द्वारा युगीन संदर्भों और राष्ट्रव्यापी हलचलों को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हैं।"[69] वास्तव में वे जानते हैं कि लकड़बग्घे घात लगाकर बैठे हैं और लोकतंत्र अभी पालने में ही पल रहा है। अतः इस लोकतांत्रिक शिशु को बचाए रखने के लिए सावधान रहना आवश्यक है। इस तरह देश की ज्वलंत समस्याओं पर निर्भीक विचार उनकी इन कविताओं में अभिव्यक्ति पाते हैं।

डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल ने सर्वेश्वर के कवि और कवित्व की समीक्षा करते हुए लिखा है– "मामूली आदमी की व्यथा और इच्छाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति में अनुभवात्मक ताप का खरापन उन्हें एक समर्थ कवि के रूप में खड़ा करता है। आधुनिक भाव-बोध के सभी स्तरों को खोलने का प्रयास उनके व्यंग्यकार ने लगातार किया है। व्यंग्यकार अपने विवेक से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को न सह पाने के कारण और अपने भीतर सत्य की आग का अनुभव करने के कारण विद्रोही हो जाता है। सर्वेश्वर इसी बोध के विद्रोही कवि हैं। एक प्रकार से निराला और मुक्तिबोध की विद्रोही परम्परा का यह सबसे बड़ा वर्तमान में कवि कहा जा सकता है।"[70]

इस सब से इतर सर्वेश्वर की कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जो किन्हीं कारणों से उपर्युक्त काव्य-संग्रहों में स्थान नहीं पा सकीं, ऐसी कविताओं में 'डफली और घुंघरू', 'विद्रोह-शीशे के जार में', 'दुख अगर सूर्य होता', 'लोकतंत्र का गाना', 'कैंची', 'वह', और 'चुनावः यथा स्थिति' शीर्षक कविताओं को लोहिया की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित कहा जा सकता है। 'लोकतंत्र का गाना' शीर्षक कविता की तह पंक्तियां देखिए-

"बीबी इंदिरा रे,
तू तो लोकतंत्र की रानी
पुलिस-मिलिटरी भाई भतीजे
नौकरशाही देवरानी
पूंजीपति तेरा बड़ा सेठ है
जिसे देख बौरानी......
तन से दूर लंगोटी नाचे
पेट के ऊपर रोटी
जादू तेरा काम न आया
कट गई बोटी-बोटी।"[71]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों में नेहरूवादी समाजवाद से मोहभंग की ध्वनि साफ सुनाई पड़ती है। वास्तव में ऐसी सरकारें किसी काम की नहीं जो गरीब जनता की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत जरूरतें भी पूरी न कर सकें।

इतना ही नहीं बल्कि सर्वेश्वर की कुछ बाल कविताओं में भी सत्ता के ऊपर यह व्यंग्य साफ देखा जा सकता है। 'मोटा और लोटा', 'चालाक लोमड़ी', 'छोड़ लंगोटी', और 'टोपी' शीर्षक बाल कविताएं इसी तरह की प्रतीकात्मक कविताएं हैं।

निष्कर्षतः सरल शब्दों में कहा जाए तो सर्वेश्वर आम आदमी के कवि हैं और उस आम आदमी की पीड़ा और व्यथा ही उन्हें समाजवादी विचारधारा के निकट लाकर उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति पाती है।

4.5 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के कथा-साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मूलतः कवि हैं लेकिन उन्हें एक सफल कथाकार के रूप में भी जाना जाता है। समीक्षकों ने उनके कथा साहित्य पर कम ध्यान दिया है जबकि उनके सृजन-कर्म का आरंभ ही कहानियों से हुआ। उनके तीन कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं-'कच्ची सड़क', 'अंधेरे पर अंधेरा' और 'बदला हुआ कोण'। 'बदला हुआ कोण' संग्रह में वे कहानियां हैं जो सर्वेश्वर के जीवन में प्रकाशित उनके दोनों कथा-संग्रहों- 'कच्ची सड़क' और 'अंधेरे पर अंधेरा' में शामिल नहीं हो सकी थीं। अपनी कहानी के संबंध में एक प्रश्नावली के उत्तर में सर्वेश्वर ने लिखा है-"कहानी तो बनारस आकर लिखने लगा, जब मुझे अपनी कविता जो बस्ती में बहुत अच्छी मानी जाती थी, बनारस आकर खुद-ब-खुद अच्छी नहीं लगने लगी। कहानियां पसंद की जाने लगीं। पहली कहानी 'क्षितिज के पार' 1942 में शंभुनाथ सिंह द्वारा संपादित 'क्षत्रिय मित्र' में छपी। बाद में यह माया में भी छपी थी। छपना अच्छा लगता था। मुझे पहली रचना (कहानी) से ही पैसे भी मिले।"[72]

सर्वेश्वर की कहानियां सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब है। वास्तव में उनके कथा-साहित्य में उनके द्वारा भोगा गया यथार्थ ही जीवंत रूप में चित्रित हुआ है। अपने कथा-साहित्य पर चर्चा करते हुए वह कहते हैं-"जिन स्थितियों में जिस स्तर पर मैं जीता हूं, उससे इतर बिल्कुल दूसरी स्थितियों और स्तर पर भी मैं जीता हूं, शायद अधिक आवेग के साथ। इस तरह दोहरी जिंदगी बिताता हूं-एक समर्पण की, एक विद्रोह की, एक यथार्थ की, एक कल्पना की, एक भावना के स्तर पर, एक विचारों के स्तर पर।-------मेरे लिए लेखक का धर्म सहज मानव का धर्म है, इसके लिए मैं जिस कृत्रिम आदमी से लड़ रहा हूं उसे परास्त कर देना ही मेरे लेखक की विजय है। लेखक की विजय का अर्थ है मानव नियति का एक व्यापक स्तर पर विकास। इसलिए कहानी मेरे लिए इन दोनों स्तरों पर एक साथ लड़ाई की कहानी है।"[73]

इन कहानियों में समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से 'लड़ाई' शीर्षक कहानी गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित कही जा सकती है। इस कहानी में लेखक ने

आजादी के बाद के भारत में गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को बिखरते हुए दिखाया है। आज यदि कोई व्यक्ति गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर चलना भी चाहे तो हमारा भ्रष्ट समाज उसे जीने नहीं देता। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने गांधी जी के सिद्धांतों को यथार्थ के धरातल पर उघाड़ कर रख दिया है–

"मैंने निश्चय किया है कि अब मैं सत्य के लिए लड़ूंगा। चाहे जो कुछ हो...

तुम लोग सच्चाई का गला घोंटते हो......

"बकवास बंद करो ! एक सिपाही ने उसे बेंत जमाते हुए कहा।"

"यह बकवास नहीं है, सत्य है।"

"चुप रहो" दूसरा बेंत पड़ा।

"मैं चुप नहीं रहूंगा। जो गलत है, उसे बारम्बार कहूंगा। आखिरी सांस तक कहूंगा।"

"आप लोग सत्य की रक्षा नहीं करते।" थाने के दरोगा से उसने कहा।

"सत्य की रक्षा करना हमारा काम नहीं है। हम शांति और व्यवस्था की रक्षा करते हैं।"

"फिर सत्य की रक्षा कौन करेगा?"

"सत्य अपनी रक्षा अपने आप करेगा।".........

"तेरी सत्यवादी की......।" दरोगा ने भद्दी गालियां दीं और कहा, "इसे बीस बेंत लगाकर थाने के बाहर कर दो।"[74]

इसी प्रकार 'टूटे हुए पंख', 'डूबता हुआ चांद', 'सोने के पूर्व', 'कमला मर गई', 'लपटें', 'बेबसी', 'चोरी', 'पुलियावाला आदमी', 'रोशनी', 'कच्ची सड़क', 'नयी कहानी के नायक और नायिका', 'मरी मछली का स्पर्श', 'भगत जी', 'मास्टर श्यामलाल गुप्ता' और 'बरसात अब भी आती है' शीर्षक कहानियों पर लोहियावादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। इन कहानियों में मुख्यतः सामाजिक और नारी विषयक समस्याओं को आधार बनाया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"बाहर किसी ने मजाक उड़ा दिया कि उनकी बीवी काली है और बस घर में सारा गुस्सा उतार दिया।" वह बैठी बताती रही कि कैसे घोड़े वाली चाबुक उन

पर टूट गयी थी। किस तरह उनकी एक-एक नस फोड़े की तरह दर्द करती थी और वह महीने भर तक हल्दी-तेल लगाती रही थीं।-"मारते सबके आदमी हैं लेकिन ऐसी मार नहीं मारते।"[75]

नारी हिंसा का जो बिंब सर्वेश्वर ने इस कहानी में खींचा है, डॉ.लोहिया जीवन भर इसी नारी शोषण और समाज में उसकी समानता और गरिमा की बातें करते रहे।

सर्वेश्वर की संपूर्ण कहानियों का मूल्यांकन करने से स्पष्ट होता है कि इनमें जीवन के विविध पक्षों यथा, सामाजिक यथार्थ, नारी चेतना, प्रेम, विवशता और ग्रामीण समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। उनकी कहानियों की समीक्षा करते हुए डॉ.पालीवाल लिखते हैं-"सन् 1940 के बाद कहानी के रचना तंत्र में जो बदलाव आ रहा था, उसकी ध्वनि सर्वेश्वर की इन कहानियों में साफ सुनाई देती है। 'कच्ची सड़क' जैसी कहानी उस गीत और दृष्टि का संकेत देती है, जिधर हम आजादी के बाद बढ़े। 'प्रगति' और 'विकास' के नाम पर हमने ग्राम-व्यवस्था को उजाड़ डाला। जगेश्वर बैलों की बढ़िया जोड़ी लाकर जीवन के स्वप्न बुनने लगा था। उसे लगा कि वह गांव के कालीनों को ढोकर शहर पहुंचाएगा और ठीक-ठाक कमाई होगी। गांव के रईस बड़े ठाकुर प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता और ग्राम पंचायत के सरपंच थे। वह ही सभी गांव वालों को उल्लू बनाकर श्रमदान के सहारे से पक्की सड़क बनवा लेते हैं और माल ढोने के लिए ट्रक खरीद लेते हैं। ट्रक चलते ही बैलगाड़ी वाले बेकार हो गए। असहाय होकर भूखे मरने लगे। कहानी का यथार्थ क्रूर और मार्मिक है-और एक दिन जगेसर ने देखा ठाकुर साहब के दरवाजे पर एक नई ट्रक खड़ी है जो उस पक्की सड़क से आई थी जिसे श्रमदान द्वारा उसने बनाया था।"[76]

डॉ.लोहिया की तरह सर्वेश्वर भी कांग्रेसवाद के कटु आलोचक हैं। इन कहानियों में उन्होंने दिखाया है कि किस तरह कांग्रेसवाद ने 'प्रगति' और 'विकास' का नारा देकर आम आदमी को लूटा और बेइज्जत किया। "व्यंग्य के साथ विडंबना का रचनात्मक उपयोग 'कच्ची सड़क' और 'लड़ाई' जैसी महत्वपूर्ण कहानियों में दिखाई देता है। जीवन के ट्रैजिक अहसासों से ये कहानियां भरी पड़ी

हैं। विशेष बात यह है कि ये कहानियां आधुनिकता के छद्म को तोड़ती हैं और एक देशी संवेदना का पाठक में रचनात्मक विस्तार करती हैं।"[77]

कहानियों के साथ-साथ सर्वेश्वर ने उपन्यास विधा में भी अपनी सशक्त पहचान बनाई है। यद्यपि उन्होंने संख्या में मात्र तीन उपन्यास ही लिखे हैं लेकिन औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से उनके ये उपन्यास विशेष रूप से चर्चित रहे। 'सोया हुआ जल', 'पागल कुत्तों का मसीहा', और 'सूने चौखटे' शीर्षक से उनके ये तीन उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके उपन्यासों में "परिस्थितियों के प्रति विद्रोह का भाव है, वे उसे बदलने के आकांक्षी हैं। लेकिन बाहर से बदलने को लेकर ही वे संतुष्ट नहीं हो सकते। वे उसे भीतर से बदलने के प्रयासी हैं।"[78]

समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से यदि देखा जाए तो सर्वेश्वर उन 'वादों' से अवश्य जुड़े हुए थे जिनकी अस्पष्ट रूप से अपने उपन्यास 'सोया हुआ जल' में वे चर्चा करते हैं। "साम्यवाद का खण्डन, पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध, सर्वहारा वर्ग का मंडन, बुर्जुआ नारा तथा मानववादी परंपरा युग का समर्थन उपन्यासकार ने 'सोया हुआ जल' उपन्यास में किया है।"[79] इस दृष्टि से 'सोया हुआ जल' उपन्यास लोहिया के समाजवादी चिंतन से प्रभावित कहा जा सकता है-

"भीतर से आवाज आ रही थी- "यह सब कुछ नहीं। तुम्हारा साम्यवाद बाह्य परिस्थितियों को बदल सकता है लेकिन जब तक आदमी भीतर से नहीं बदलेगा तब तक जिस स्वर्गिक जीवन की हम कल्पना करते हैं, वह नहीं प्राप्त हो सकता।" एक दृढ़ आवाज !

"भीतर से बदलने का नारा बुर्जुआ नारा है। इसकी सृष्टि पूंजीवादी सभ्यता ने इसलिए की है ताकि आदमी बाहर से आंख मीचे रहे और वे आराम से उसे चूस सकें। भरतवर्ष में इस नारे पर बड़ा जोर है। इस पर बड़ी आस्था भी है, लेकिन सच मानो दोस्त, इस नारे को लगाने वाले जन-क्रांति के साथ विश्वासघात कर रहे हैं।"[80]

इसी क्रम में 'पागल कुत्तों का मसीहा' और 'सूने चौखटे' उपन्यासों को भी नारी चिंतन के आधार पर डॉ.लोहिया की विचारधारा से प्रभावित कहा जा सकता है। वास्तव में प्यार और स्वाधीनता के अभाव में बंद कमरे का समाज आदमी को

मुक्त नहीं करता बल्कि पागल कर देता है। ऐसे में उपन्यास के माध्यम से लेखन ने समझदारी की एक आवाज उठाई है–

"लेकिन जो असुंदर है, अशिव है, हानिकारक है, समाज विरोधी है, उसे मारना धर्म है।"[81] वास्तव में पूरा उपन्यास ही समाज के काले दर्द की त्रासदी है।

'सूने चौखटे' शीर्षक उपन्यास में लेखक ने कमला एवं रामू के निश्छल व निर्मल प्रेम को परंपरा एवं आधुनिकता तथा रूढ़ियों के विद्रोह के निकष पर विकसित किया है। दोनों के प्रेम की परिणति सामाजिक मान्यताओं एवं मूल्यों से टकराकर टूटने में होती है। कमला एवं रामू का प्रेम उनके बचपन का प्रेम है किन्तु परिस्थितियों के आगे वे विद्रोह करने के बावजूद एक नहीं हो पाते। वास्तव में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो यह उपन्यास धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' के अधिक निकट है।

नारीवादी चिंतन और छुआछूत तथा जातिवादी संदर्भों के कारण सर्वेश्वर का यह उपन्यास लोहिया तथा गांधी के समाजवादी विचारों के अधिक निकट है–

"रामू ने उसे देखते ही प्रश्न किया, "रामगुलाम, आज तुमने अपनी औरत को पीटा तो नहीं?"

"नहीं सरकार।" उसने हँसकर उत्तर दिया।......

"यह क्या अपनी औरत को बहुत पीटता है?" कमला ने पूछा।

"हाँ, रात में कभी–कभी इतना मारता है कि वह बहुत जोर–जोर से रोती है।"[82]

इसी प्रकार उपन्यास में कई स्थानों पर लेखक ने भारतीय समाज में हजारों वर्षों से चले आ रहे छुआछूत के प्रति विद्रोह के भाव को बड़ी सहजता और प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है–

"रामू की मां ने जब यह शोर सुना तब पूछने पर उन्होंने पूरा किस्सा बताया और उससे लिपटकर कहा–"मां हम यह जादू वाली बांसुरी नहीं देंगे।"

"लेकिन इसके जवाब में मां से पूरी फौज से अकेले सामना करने के आश्वासन के बजाए उन्हें मार मिली। उनके कान ऐंठे गए, उन पर सोने से पानी छुलाकर छिड़का गया, उन पर गहरी डांट पड़ी और उन्हें इस बात की चेतावनी

दी गई कि भविष्य में उनका बाहर निकलना बंद कर दिया जाएगा, यदि वे उस मेहतरों वाली गली में गए या उन्होंने खुन्नू की ढोल बजाई।"[83]

डॉ.स्मृति ने इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है-"सूने चौखटे' उपन्यास में उपन्यासकार ने रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के लिए कमला एवं रामू के उदात्त एवं निर्मल प्रेम को रचने का प्रयास किया है, प्रेम की परिणति असफलता में ही होती है। कथानक का केन्द्र प्रेम अवश्य है। प्रेम की परिधि सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों से हट जाती है। प्रेम का केन्द्रीय बीज असफल प्रेमियों के हृदय में ही वपित होकर रह जाता है, फलित नहीं हो पाता। संपूर्ण उपन्यास में पात्रों का चारित्रिक विकास कथा सम्मत ढंग से किया गया है। यही कारण है कि पात्रों में अंतर्द्वन्द्व अधिक दिखाई देता है।"[84]

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वर का कथा-साहित्य भी उनके विद्रोही व्यक्तित्व से अछूता नहीं है। समाज में घटित होने वाले किसी भी अन्याय और अत्याचार से उन्हें चिढ़ है। शायद यही कारण है कि समाजवाद की विचारधारा उनके कथा-साहित्य में भी अभिव्यक्ति पाती है।

4.6 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाट्य-साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

साहित्य के क्षेत्र में सर्वेश्वर की पहचान एक सशक्त नाटककार के रूप में भी रही है। इस संबंध में 'बकरी' शीर्षक नाटक उनका चर्चित और प्रसंसनीय नाटक रहा है जिसने उन्हें अग्रिम पंक्ति के नाट्यकारों में प्रमुख स्थान पर सुशोभित किया है। इसके अतिरिक्त सर्वेश्वर के अन्य नाटक भी अपनी व्यंग्यात्मक शैली और राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था-विरोध के कारण विशेष रूप से चर्चित और उल्लेखनीय रहे हैं।

सर्वेश्वर ने नाट्य लेखन की शुरुआत 1948 में की। 'जिंदगी की लौ' और 'मौत की घाटी' नामक दो प्रारंभिक नाटकों को रचकर उन्होंने नाट्य क्षेत्र में पदार्पण किया। इन दोनों नाटकों का मंचन उसी वर्ष 'इंडियन नेशनल थियेटर' इलाहाबाद में किया गया। तदोपरांत उनका झुकाव लोक नाट्य शैली पर आधारित नाटकों की ओर हुआ। 'बकरी', 'लड़ाई', 'हवालात' और 'हिसाब-किताब' शीर्षक नाटक उनकी इसी नाट्य शैली पर आधारित हैं। उनके नाटकों में लोक-शैली के

गीत और संवाद उनके अंतर्मन का कवित्व सामने लाते हैं जिसमें एक ईमानदार चिंतक और देशप्रेमी मौजूद रहता है। डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल ने उनके नाटकों की समीक्षा करते हुए लिखा है–"अनेक नाट्य प्रस्तुतियों के लंबे समय तक धैर्यवान प्रेक्षक बनकर सर्वेश्वर ने यह अनुभव ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि हिन्दी नाटक की सर्वाधिक सर्जनात्मक संभावना को लोक नाट्य–शैली के सार्थक प्रयोगों से ही सामने लाया जा सकता है।"[85]

समाजवादी विचारधारा की दृष्टि से देखा जाए तो उनका प्रथम नाटक 'बकरी' गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित कहा जा सकता है। यद्यपि नाटक के कथ्य में गांधीवादी विचारधारा के अवमूल्यन को ही केन्द्र में रखा गया है। इस नाटक में समकालीन भारत के गांवों की दुर्दशा और उसमें निहित स्वार्थी नेताओं द्वारा आम जनता के शोषण को उजागर किया गया है। नाटक की समीक्षा करते हुए डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र लिखते हैं कि–"1974 में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक आया जिसने लोकनाट्य परंपरा को एक सशक्त आधार प्रदान किया। 'बकरी' ने नाटक के क्षेत्र में तहलका मचा दिया। दिल्ली का 'जन नाट्यमंच' इसे कई महीनों तक राजधानी के विभिन्न भागों में खेलता रहा।"[86]

नाटक की शैली और अभिव्यंजना पर टिप्पणी करते हुए वे आगे लिखते हैं कि "प्रस्तुत नाटक को फारसी रंगशैली और हिन्दी प्रदेश के प्रसिद्ध लोक नाटक 'नौटंकी' शैली के मिले–जुले रूप में व्यक्त किया गया है। ग्रामवासियों की दयनीय स्थिति और उनकी मजबूरी का राजनेता किस प्रकार खुला दुरुपयोग कर रहे हैं, नाटक की केन्द्रीय व्यंजना है। 'बकरी' शीर्षक राजनीतिक व्यंग्य के रूप में गांधी की बकरी से है। सन 1970 के पश्चात गांधीजी की प्रासंगिकता को लेकर देशभर में कई चर्चाएं–परिचर्चाएं आयोजित की जा रही हैं। विचारों के धरातल पर कई तीखी प्रतिक्रियाएं भी सुनाई पड़ रही हैं। कहना न होगा कि आजादी के पश्चात राजनेताओं ने गांधी के नाम की दुकानें खूब चलाईं और इसकी आड़ में भारतीय भोली–भाली अशिक्षित जनता का खूब शोषण भी किया। सक्सेनाजी ने इस नाटक में सत्ता के शोषण और जनता के शोषित स्वरूप को बहुत ही व्यंग्यात्मक,

मनोरंजक और चुटीली भाषा में व्यक्त किया है जिसमें सत्ता, व्यवस्था और उसके पहरेदारों पर साहसपूर्ण कटाक्ष भी है।"[87]

नाटक के तीसरे संस्करण की भूमिका में सर्वेश्वर स्वयं स्वीकार करते हैं कि "गांधीवाद का मुखौटा लगाकर आज भी सत्ता की राजनीति की जा रही है और देश की जनता को छला जा रहा है। लेखक चाहता है कि देश की राजनीतिक स्थिति सुधरे और यह नाटक अपने निहित व्यंग्यार्थ में शीघ्र से शीघ्र असंगत हो जाए।"[88]

नाटक में अनेक ऐसे दृश्य उभरते हैं जिनमें सर्वेश्वर गांधीवादी विचारधारा के दुरुपयोग और विसंगति पर व्यंग्य करते दिखाई पड़ते है, यथा नाटक के प्रथम अंक में ही भिश्ती के माध्यम से उन्होंने गांधीवादी विचारधारा पर अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकते लोगों पर करारा व्यंग्य किया है–

"बकरी को क्या पता था/मशक बन के रहेगी,
पानी भरेंगे लोग 'औ' वह कुछ न कहेगी,
जा-जा के सींच आएगी/हर एक की क्यारी
मर कर के भी बुझाएगी/वह प्यास तुम्हारी।"[89]

नाटक के अगले दृश्य के संवादों में सर्वेश्वर दुर्जन के माध्यम से आखिरकार स्पष्ट कर ही देते हैं कि गांधी जी की बकरी असल में क्या है–

"दुर्जनः यह गांधी जी की बकरी है।

सिपाहीः गांधी जी की?

दुर्जनः हाँ, हाँ महात्मा गांधी की, मोहनदास कर्मचन्द्र गांधी। अच्छा बताओ यह क्या देती है?

सिपाहीः दूध।

दुर्जनः नहीं, कुर्सी, धन और प्रतिष्ठा। (कुछ रुककर) अच्छा बताओ, यह क्या खाती है?

सिपाहीः घास।

दुर्जनः नहीं, बुद्धि, बहादुरी और विवेक। यह गांधी जी की बकरी है।"[90]

एक बानगी और देखिए कि कैसे दुर्जन सिंह गांधीजी की बकरी और उनकी अहिंसक विचारधारा का विश्लेषण करता है–

"दीवान जी बकरी अहिंसावादी होती है। छुरा फिरवा लेगी। गोश्त तो जंगली सुअर का होता है। चपेट में आ गए तो स्वर्ग दिखा दे। हम सब शाकाहारी हैं। बकरी शरणम् गच्छामि।"[91]

इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक के अन्य कई दृश्यों व संवादों में भी सर्वेश्वर गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

नाटक के कुछ दृश्यों व संवादों को देखते हुए सर्वेश्वर लोहिया के विचारों से भी प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए नाटक के नट–नटी का एक गीत दृष्टव्य है–

"दिन में दो रोटी के हों जब देश में लाले पड़े
हों सभी खामोश सब की जबां पर ताले पड़े,
दिल दिमाग औ' आत्मा पर इस कदर जाले पड़े,
सूखे की शतरंज नेता खेलें दिल काले पड़े।
तोंद अड़ियल पिचके पेटों पर चलाए गोलियां,
हर तरफ फिर न निकलें क्रांतिकारी टोलियां,
फिर बताओ किस तरह खामोश बैठा जाए है
अब तो खौले खून रह–रहकर जबां पर आए है–
बहुत हो चुका अब हमारी है बारी,
बदल के रहेंगे ये दुनिया तुम्हारी!"[92]

गीत की सहज अभिव्यक्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वयं लोहिया ही देश के पूंजीपतियों और शोषकों को चुनौती दे रहे हों।

प्रस्तुत नाटक के संदर्भ में निर्देशक श्रीमती कविता नागपाल का कथन उद्धृत करना भी समीचीन प्रतीत हो रहा है जो वस्तुतः लोहिया जी की अभिव्यक्ति ही है। उनका विचार है कि–"व्यवस्था के, समकालीन राजनीति के छद्म और उसके जन–विरोधी एवं जनतंत्र विरोधी चरित्र पर प्रहार करता हुआ यह नाटक जनता, विशेषकर ग्रामीण जनता पर लादी गई धर्मांधता और उसमें होने वाले शोषण–

उत्पीड़न का चित्रण करते हुए एक ऐसे गुस्से का रेखांकन करता है, जिसे यदि समग्र यथार्थ से जोड़कर देखा जाए तो जनवादी चेतना के प्रसार में सहायक हो सकता है।”[93]

इस प्रकार यदि समग्र रूप से देखा जाए तो बकरी शीर्षक नाटक आज के राजनीतिक भ्रष्टाचार व भाई-भतीजावाद का जीवंत दस्तावेज है जो समकालीन संदर्भों में विशेष तौर पर प्रासंगिक हो गया है।

सर्वेश्वर का दूसरा महत्वपूर्ण नाटक ‘लड़ाई’ है। नाटक के संदर्भ में विशेष बात यह है कि यह नाटक सर्वेश्वर की प्रसिद्ध कहानी ‘लड़ाई’ का ही नाट्य रूपान्तरण है। नाटक की विषय-वस्तु स्वतंत्रता के बाद की वह लड़ाई है जिसे हम सब लड़ रहे हैं। पर इस लड़ाई की कोई परिणति नजर नहीं आती है। पूरा सामाजिक-राजनीतिक परिवेश इस लड़ाई को कामजोर कर रहा है। यह स्थिति पूरे देश के लिए दुखद है और इस दुखद स्थिति का चित्रण ही नाटक की मूल विषय-वस्तु है।

समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से सर्वेश्वर का यह नाटक लोहिया की समाजवादी विचारधारा के अधिक निकट है। नाटक के आरम्भ में ही उद्घोषक मानो लोहिया की ओजस्वी शैली में कहता है-“बत्तीस साल......आजादी के बत्तीस साल....लड़ाई, उदासीनता से लड़ाई, गन्दगी, बदनीयती, बेईमानी से लड़ाई...... लड़ाई खत्म नहीं हुई, जारी है। गरीबी से लड़ाई, मानसिक गुलामी से लड़ाई, औपनिवेशिक संस्कार से लड़ाई, सामन्ती स्वभाव से लड़ाई....लड़ाई खत्म नहीं हुई, जारी है। भाषावाद से लड़ाई, जातिवाद से लड़ाई, धर्मांधता से लड़ाई, क्षेत्रीयता से लड़ाई, लड़ाई खत्म नहीं हुई, जारी है। और, इस लड़ाई में हर आदमी अकेला, आस्था और विश्वास से टूटा हुआ। झूठ के विराट रेगिस्तान में अकेला, अकेला......अकेला! ‘सत्य ही ईश्वर है’ महात्मा गांधी ने कहा था, लेकिन कहां है सत्य? कहां है ईश्वर?”[94] नाटक का केन्द्रीय पात्र सत्यव्रत हर जगह लड़ाई लड़ता है-पर बात बनती नहीं।

नाटक के कुछ संवादों में सर्वेश्वर का मार्क्सवादी दृष्टिकोण भी उजागर हुआ है। जब सत्यव्रत स्वामी महेश्वरानंद से धर्म पर बहस करता है तो उनकी कलई

खोलकर रख देता है–“देश में इतनी समस्याएं हैं–गरीबी, अशिक्षा, हिंसा। सबकी रामबाण दवा आपके पास है? आपकी आध्यात्मिकता अफीम है।”[95]

नाटक के कुछ संवादों के माध्यम से लेखक ने गांधीवादी विचारधारा पर भी तीव्र व्यंग्य किया है कि किस तरह यह विचारधारा लोगों की ढाल बन चुकी है। नाटक के छठे दृश्य में संपादक सत्यव्रत से कहता है–“और सत्य वह ढाल है जिसे लेकर हर जगह झूठ की लड़ाई लड़ी जा रही है। आजादी के बाद यही हमने सीखा है। यही सिखाया गया है। यह भी कहो...”[96]

नाटक के संबंध में प्रसिद्ध आलोचक डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल का विचार है कि “लड़ाई अपनी अनेक नाट्य–दुर्बलताओं के बावजूद हिंदी नाटक के क्षेत्र में नये ढंग का प्रयोग है। इस नये प्रयोग की असफलता में ही इस नाटक की सफलता को पाया जा सकता है।”[97]

सर्वेश्वर का तीसरा महत्वपूर्ण नाटक ‘अब गरीबी हटाओ’ है। नाटक के माध्यम से सर्वेश्वर ने वर्तमान सत्ता व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है। यह व्यवस्था आज से नहीं बल्कि सदियों से फल–फूल रही है बस कालानुसार चेहरे बदलते जाते हैं। नाटक के संदर्भ में निर्देशक का वक्तव्य महत्वपूर्ण है–“दरअसल यह नाटक सदियों से व्यापक अपमान और शोषण की चट्टान के नीचे पिसते हुए साधारण जन की पीड़ा के चरम क्षणों का बहुत ही प्रमाणिक मूर्त्तिकरण है। जहां एक ओर नाटक उस चट्टान के भयावह बोझ का एक ठोस अहसास हमें देता है–वहीं उसके नीचे से ‘मानवीय संकल्प के बिरवे को तिरछा होकर रोशनी की तलाश में बाहर निकलता हुआ’ भी दिखता है।”[98]

समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से देखा जाए तो नाटक मार्क्स और लोहिया की विचारधारा के अधिक निकट है। नाटक के संवादों को देखने से प्रतीत होता है कि मानो सर्वेश्वर नाटक में भी अपनी वही चिर–परिचित शैली में हम सबको समाज के भेड़ियों से सावधान कर रहे हैं। नाटक में ग्रामीण, शोषकों की बरगद के विशाल वृक्ष से तुलना करते हुए आदमी के आक्रोश को ठंडा करते हुए समझाता है–“बहुत बड़ा खानदान है उसका। जैसे बरगद ! एक जड़ काटने से कुछ फरक नहीं पड़ता। असली जड़ काटनी होगी, फिर यह देखना होगा कि जमीन पर

उसकी कटी हुई शाख न लगने पाए। नहीं तो फिर उसका खानदान पैदा हो जाएगा। जड़ें फैलाने लगेगा। बड़ी उमर होती है बरगद की। इन सालों की भी बड़ी उमर है। ये सरपंच, ये मंत्री जाने कब से जिंदा हैं।"[99]

नाटक का समापन इस संकल्प के साथ होता है कि अब क्रांति ही एकमात्र रास्ता है। नाटक में नट नेताजी से कहता है–"अब यही रास्ता आप लोगों ने छोड़ा है। राजतंत्र और लोकतंत्र दोनों को हम देख चुके। सबने अपना मतलब साधा है। अब गरीबी हटाने का यही रास्ता रह गया है, सब गरीब मिलकर अपनी गरीबी हटाएं।"[100]

सर्वेश्वर का चौथा नाटक 'हवालात' है जो तीन लड़कों और एक पुलिस वाले की क्रिया-प्रतिक्रिया पर आधारित है। नाटक में समकालीन पुलिस व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया गया है। नाटककार ने व्यंग्य के माध्यम से भारतीय पुलिस व्यवस्था के उस चेहरे को बेनकाब कर दिया है जो बिना पैसे लिए किसी को जेल भी नहीं भेजती है। नाटक में बर्फीली तूफानी रात में ठिठुरते तीन लड़के हवालात में जाने को आतुर हैं, पर यह भी उनका नसीब नहीं है। नाटक में यह वाक्य निरंतर गूंजता रहता है कि "पर वह हमें हवालात क्यों ले जाता? हमारे पास देने को एक दमड़ी जो नहीं थी।"[101]

समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से देखा जाए तो नाटक में लोहिया के प्रगतिशील विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है।

इसी क्रम में 'हिसाब-किताब' और 'मर गया ले जाओ' नाटक भी समकालीन व्यवस्था पर व्यंग्योक्ति के माध्यम से चोट करने वाले नाटक हैं। 'हिसाब-किताब' नाटक हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का वह आइना है जिसमें बच्चों तक का खाना स्वार्थी और हृदयहीन तत्व डकार जाते हैं। वस्तुतः यह नाटक आज की उस व्यवस्था के अधिक निकट है जहां अखबारों में आए दिन मध्यान्न भोजन और बाल पोषाहार को डकारने की खबरें छाई रहती हैं।

'मर गया ले जाओ' सर्वेश्वर का एक नुक्कड़ नाटक है जो गरीबी की हाय-हाय पर आधारित है। यह नाटक भी समकालीन व्यवस्था की उन पर्तों को उघाड़ देता है जहां गरीबों को सरकारी इलाज भी नसीब नहीं है।

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वर का संपूर्ण नाट्य साहित्य प्रगतिशील विचारों का जीवंत दस्तावेज है जिसमें उन्होंने व्यंग्योक्ति शैली का सहारा लेते हुए समकालीन सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर तीखा प्रहार किया है।

4.7 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के इतर-साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिक दृष्टि

जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है कि सर्वेश्वर बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी विशिष्ट रचनाकार है जिन्होंने न सिर्फ काव्य, कथा और नाट्य-साहित्य में अपनी लेखनी चलाई अपितु निबंध, यात्रा-संस्मरण, पत्रकारिता और संपादन के क्षेत्र में भी वह निरंतर सक्रिय रहे।

सर्वेश्वर के निबंध उनके चिंतन की व्यापक अभिव्यक्ति हैं जिनके भीतर से गुजरने पर उनकी भीतरी विशेषताएं साफ तौर पर उभरती हैं। इनमें व्यापक जीवन-दृष्टि, फक्कड़पन की मस्ती और सामान्य में विशेष पाने की ताकत इन निबंधों में हर जगह विद्यमान है। सर्वेश्वर के इन निबंधों पर टिप्पणी करते हुए डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल का विचार है कि “सर्वेश्वर के लघु निबंधों में विषय वैविध्य से जीवन वैविध्य के रंग-बिरंगे जीवंत चित्र मौजूद हैं। ‘जूते और जबान की जुगलबंदी’ में बिहार प्रेस विधेयक के विरोध में दिल्ली में घटी घटना हो या ‘अखिल भारतीय बकरा यूनियन’ जैसा व्यंग्य प्रधान निबंध हो। कमजोर आदमी की स्थिति का बिंब यही है कि ‘दूसरों’ के स्वाद के लिए अपने को कटा देने के खिलाफ सिवा मिमियाने के और कुछ न कर पाते हों। ‘एक अदृश्य गाय’, ‘नैतिकता की तलाश’, ‘बलात्कार का मुआवजा’, ‘एक मौत से दूसरी मौत तक’, ‘अंतरात्मा की आवाज’, ‘विधुरी दिवस मनाइए’, ‘एक शरीफ आदमी’, ‘रायल्टी का घपला’, ‘थपकियां और चपत’, ‘कटे हाथ की पुकार’ जैसे लघु निबंध हों-सभी की एक राजनीतिक टोन है। इस टोन में मामूली आदमी का दर्द उभरता है और सत्ता के अंधेपन के सबूत नजर आते हैं। जाहिर है कि सर्वेश्वर का कवि इस गद्य की ‘करुणा’ में अपने पूरे मानवतावादी चिंतन क साथ मौजूद है। इस जन करुणा का गहरा नाभि-नाल संबंध गांधी और लोहिया की चिंतन परम्परा से है जिसमें भारतीय संत परम्परा का जल कोलाहल कर रहा है।”[102]

सर्वेश्वर की पत्रकारिता में लोहिया की-सी निर्भीकता और निडरता साफ देखी जा सकती है। उनके ये गुण सही अर्थों में उनके पत्रकार होने की पुष्टि करते हैं। निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वर का इतर साहित्य भी उनके प्रगतिशील चिंतन का ही परिणाम है जहां उनकी वैचारिक अभिव्यक्ति में एक स्पष्टता और दूरदर्शिता के लक्षण पूर्णतः परिलक्षित होते हैं।

चूंकि प्रस्तुत पाठ सर्वेश्वर के साहित्य में गांधी, मार्क्स एवं लोहिया की समाजवादी विचारधारा से संबंधित है अतः इस संदर्भ में मैं उनके स्वयं के विचारों को भी स्पष्ट करना महत्वपूर्ण समझता हूं। मार्क्सवाद के संबंध में उनका विचार है कि-"मार्क्सवाद तो आज के युग का सही दर्शन है ही, इसमें संदेह नहीं......जहां तक आप यह कहना चाहते हैं कि मार्क्सवाद व्यक्ति की स्वाधीनता और रचनात्मकता छीनता है- जोकि मेरा भी मानना है कि कुछ हद तक छीनता है- तो वहां उस अर्थ में मैं मार्क्सवादी कतई नहीं हूं।"[103] यहां मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि यद्यपि सर्वेश्वर मार्क्सवादी समाजवाद से प्रभावित हैं लेकिन रचनात्मकता और स्वाधीनता के स्तर पर वह लोहिया के अधिक निकट हैं। नेहरू, गांधी और लोहिया के विषय में उनका विचार है कि-"नेहरू और गांधी ने मेरी काव्य-संवेदना को कभी छुआ नही। उन पर मेरी कोई कविता नहीं है। नेहरू की मृत्यु पर जरूर है 'एक सूनी नाव' और गांधी के सत्ता द्वारा इस्तेमाल पर है 'पंचधातु'। शायद कोई गांधीवादी मेरा मित्र नहीं था। लोहियावादी थे, शुरू में क्रांतिकारी थे-अतः लोहिया की बातें अच्छी लगने लगीं, समझ में आती थीं। पर लोहिया की बातों पर मेरी कविता नहीं थी, मैं कविता उसी पर लिख सकता हूं जो मेरी अनुभूति का हिस्सा हो। लोहिया की बातें मेरे अनुभव का अंश बनने पर ही मेरी कविता में यदि आई हैं तो आई होंगी।"[104] व्यक्तिगत स्तर पर लोहिया के बारे में उनका विचार है कि-"वे काव्य-प्रेमी सहृदय व्यक्ति थे। काफी मानते थे और कई बार उन्होंने मेरी ऐसी कविताएं सुनी-सराहीं जिनसे विचारतः उनका मतभेद था। पर वे साहित्कार पर अपने विचार थोपते नहीं थे। साहित्य कर्म पर आजादी के पक्ष में थे। इसीलिए 'लड़ाई' कहानी भी उनसे बहस के बाद लिखी गई और कथ्य से सहमत न होकर भी 'जन' में उसका विज्ञापन दिया गया।"[105]

डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल को दिए गए एक साक्षात्कार में सर्वेश्वर ने स्वयं स्वीकार किया है कि लोहिया और उनके विचारों में काफी समानता है–"मेरे लिए डॉ.लोहिया की व्याख्याएं बड़ी लुभावनी थीं और मैं उनमें अपने विचारों को पाता भी था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय आने पर मेरा झुकाव समाजवादी आंदोलन में हो गया। उसने मुझे एक दिशा दी और भारतीयता का एक नया अर्थ भी खोला। जिसमें मामूली आदमी से गहरा रिश्ता भी समाया हुआ है।"[106]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि सर्वेश्वर प्रत्यक्षतः किसी वाद अथवा विचारधारा से संबंधित नहीं हैं फिर भी मानवीय मूल्यों के संदर्भ में अनुभूति के स्तर पर वह गांधी, मार्क्स और लोहिया के समाजवादी विचारों से प्रभावित रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. मार्क्स और गांधी का साम्य-दर्शन : नारायण सिंह, पृष्ठ–48
2. आधुनिक भारत के महानतम् भारतीय : डॉ.महेन्द्र मित्तल, पृष्ठ–34
3. मार्क्स और गांधी का साम्य-दर्शन : नारायण सिंह, पृष्ठ–47
4. वही, पृष्ठ–125
5. सुनो विद्यार्थियों : महात्मा गांधी, पृष्ठ–13
6. गांधी और स्टालिन : लुई फिशर (हिंदी अनुवाद-श्री लेखराम), पृष्ठ–22
7. वही, पृष्ठ–127
8. सुनो विद्यार्थियों : महात्मा गांधी, पृष्ठ–98-99
9. महात्मा गांधी के विचार : आर.के.प्रभु तथा यू.एन.राव, पृष्ठ–235
10. अमृत बाजार पत्रिकाः अंक-अगस्त 1934
11. हरिजन : महात्मा गांधी, अंक- 20 फरवरी 1937, पृष्ठ–12
12. महात्मा गांधी के विचार : आर.के.प्रभु तथा यू.एन.राव, पृष्ठ–236
13. वही, पृष्ठ–236
14. वही, पृष्ठ–237
15. हरिजन : महात्मा गांधी, अंक- 13 जुलाई 1947, पृष्ठ–232

16. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास : डॉ.बी.एल.फड़िया, पृष्ठ–614
17. वही, पृष्ठ–610
18. History of Europe : Thatcher and Schwill, Page-238-39
19. मार्क्स और गांधी का साम्य–दर्शन : नारायण सिंह, पृष्ठ–39
20. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास : डॉ.बी.एल.फड़िया, पृष्ठ–628
21. वही, पृष्ठ–638
22. वही, पृष्ठ–638
23. आधुनिक भारत के महानतम् भारतीय : डॉ.महेन्द्र मित्तल, पृष्ठ–94
24. डॉ.राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद : डॉ.कन्हैया त्रिपाठी, (प्रस्तावना), पृष्ठ–8
25. समाजवाद की दशा–दिशा और लोहिया जीवन दर्शन : डॉ.राम सागर सिंह, (भूमिका), पृष्ठ–20
26. वही, पृष्ठ–14
27. भारत माता–धरती माता (राममनोहर लोहिया के सांस्कृतिक लेख), संपादक–ओंकार शरद, पृष्ठ–9
28. गांधी, मार्क्स एंड सोशलिज्म : डॉ.राममनोहर लोहिया, पृष्ठ–375
29. वही, पृष्ठ–375
30. डॉ.राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद : डॉ.कन्हैया त्रिपाठी, पृष्ठ–152
31. समाजवाद की दशा–दिशा और लोहिया जीवन दर्शन : डॉ.राम सागर सिंह, पृष्ठ–138-39
32. डॉ.राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद : डॉ.कन्हैया त्रिपाठी, (प्रस्तावना), पृष्ठ–9
33. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–20
34. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य–संसार : डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ–30
35. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावलीः संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–1, पृष्ठ–104-105
36. वही, पृष्ठ–117-18
37. वही, पृष्ठ–130

38. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–32

39. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–एक, पृष्ठ–192

40. वही, पृष्ठ–220

41. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य–संसार : डॉ.दीपा जार्ज, पृष्ठ–32

42. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–36

43. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–एक, पृष्ठ–284

44. वही, पृष्ठ–285

45. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य–संसार : डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ–51-52

46. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–1, पृष्ठ–269-70

47. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य–संसार : डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ–53

48. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–एक, पृष्ठ–307

49. वही, पृष्ठ–327-28

50. सर्वेश्वर और उनका साहित्य : डॉ.कालीचरण 'स्नेही', पृष्ठ–50

51. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–एक, पृष्ठ–324

52. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य–संसारः डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ–57

53. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावलीः संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–1, पृष्ठ–311-12

54. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–38

55. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–दो, पृष्ठ–5

56. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–दो, पृष्ठ–70

57. वही, पृष्ठ–40

58. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–41

59. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य–संसारः डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ–68

60. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–दो, पृष्ठ–92-93

61. वही, पृष्ठ–110

62. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–45

63. सर्वेश्वर और उनका साहित्य : डॉ.कालीचरण 'स्नेही', पृष्ठ–53

64. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-दो, पृष्ठ-226
65. वही, पृष्ठ-206
66. आधुनिक हिंदी कविता तथा अन्य निबंध : डॉ.संतोष कुमार तिवारी, पृष्ठ-73
67. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-दो, पृष्ठ-342
68. वही, पृष्ठ-377
69. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का काव्य-संसार : डॉ.दीपा जार्ज, पृष्ठ-37
70. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-48
71. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावलीः संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-पांच, पृष्ठ-65-66
72. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-चार, पृष्ठ-5
73. संपूर्ण गद्य रचनाएं : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भाग-तीन, पृष्ठ-12-13
74. क्षितिज के पार : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ-85-86
75. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-चार, पृष्ठ-98
76. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-203
77. वही, पृष्ठ-208
78. वही, पृष्ठ-210
79. सर्वेश्वर का कथा साहित्य : डॉ.स्मृति, पृष्ठ-65
80. सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का मसीहा : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ-19-20
81. वही, पृष्ठ-80
82. सूने चौखटे : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ-14-15
83. वही, पृष्ठ-18-19
84. सर्वेश्वर का कथा साहित्य : डॉ.स्मृति, पृष्ठ-74
85. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-187
86. साहित्य मंडल पत्रिका : डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र (संः के.रवि वर्मा), अंक 201, अक्टूबर-दिसम्बर 1998, पृष्ठ-5
87. वही, पृष्ठ-6
88. बकरी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ-7

89. वही, पृष्ठ–15

90. वही, पृष्ठ–19

91. वही, पृष्ठ–47

92. वही, पृष्ठ–56-57

93. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–तीन, (निर्देशक की बात), पृष्ठ–15

94. वही, पृष्ठ–59

95. वही, पृष्ठ–87

96. वही, पृष्ठ–72

97. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–189

98. अब गरीबी हटाओ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–8

99. वही, पृष्ठ–44- 45

100. वही, पृष्ठ–46- 47

101. हवालात : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–23

102. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–196

103. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–दो, पृष्ठ–403

104. वही, पृष्ठ–408

105. वही, पृष्ठ–408

106. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–231-32

अध्याय

5

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि पर विचार करने से पूर्व 'लोक' और 'दृष्टि' शब्दों के अर्थ पर विचार कर लेना महत्वपूर्ण है। विभिन्न शब्दकोशों में 'लोक' शब्द का अर्थ प्राणी, जन, मनुष्य, प्रदेश, दिशा, यश, कीर्ति, निवास-स्थान, मनुष्यों का कोई सजातीय समूह जिसकी सांस्कृतिक विशेषताएँ निश्चित होती हैं, आदि बताया गया है।

'दृष्टि' शब्द से आशय- "दर्शन, देखने की वृत्ति, किसी मत या विचार के अनुसार किसी ग्रन्थ या विषय पर विचार करने की वृत्ति/शक्ति, मत, अवलोकन, चक्षु, प्रकाश, दृक्पथ, आँख की ज्योति, कृपा, नजर, ध्यान, अनुमान, विचार, आशय और उद्देश्य"[1] आदि से है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के मानक हिन्दी कोश के अनुसार 'दृष्टि' का व्युत्पत्तिक अर्थ है- "(दृश+क्तिन) अर्थात् आँखों से देखकर ज्ञान प्राप्त करने या जानने-समझने का भाव, वृत्ति या शक्ति, अवलोकन, नजर, निगाह, देखने के लिए खुली हुई अथवा देखने में प्रवृत्त आँखें, मन में कोई विशेष उद्देश्य या विचार रखकर किसी की ओर देखने की क्रिया या भाव।"[2]

इस प्रकार यहाँ लोक-दृष्टि से तात्पर्य सर्वेश्वर के उन विचारों और दृष्टिकोणों से है जो उन्होंने ग्रामीण जीवन और उसकी संस्कृति के संबंध में व्यक्त किए हैं। प्रस्तुत अध्याय में सर्वेश्वर के साहित्य में उनकी लोक-दृष्टि का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

5.1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि

आधुनिक कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपने अनूठे व्यक्तित्व के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। वे मूलतः लोकधर्मी कवि हैं जिनके काव्य में लोकजीवन की धारा स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। उनका प्रारंभिक जीवन गाँव में ही बीता जहाँ से उन्होंने अपनी आरंभिक शिक्षा भी ग्रहण की। ग्रामीण परिवेश के प्रति उनके मन में अत्यधिक प्रेम था। उन पर देहात के सहज और सरल जीवन के संस्कार पड़े थे। गाँव के छल रहित जीवन को वे अधिक चाहते थे। इसी कारण उनके साहित्य में देहाती वातावरण अपनी समस्त विशेषताओं के साथ मुखरित हुआ है। यद्यपि उनकी काव्य-यात्रा मुख्यतः नगरीय परिवेश में तय हुई है तथापि जन्म और संस्कार से उनकी काव्य-संवेदना की जड़ें ग्रामीण और लोक-जीवन में हैं। ग्राम्य परिवेश में रहकर अनुभव की जो समृद्धि उन्हें प्राप्त हुई है, उसकी अन्तःसरिता उनके काव्य में आद्योपान्त बही है। यही कारण है कि उनके समस्त काव्य साहित्य में एक समृद्ध और उदात्त लोकचेतना के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य साहित्य में आंचलिक जीवन के चित्रण के साथ ही लोक तत्वों का भी बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है। उनकी कविता का आदर्श है कि वह साधारण जनों के सुख-दुख की वाणी बन सके। उन्होंने न सिर्फ ग्रामीण जीवन की विषमताओं का वर्णन किया है बल्कि उनकी हँसी-खुशी, नाच-गाना, तीज-त्योहारों की उनकी संस्कृति को भी अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है। आम ग्राम-कवियों अथवा नगर कवियों की तरह उन्होंने ग्रामों या नगरों का सीधा चित्रांकन नहीं किया है बल्कि उनकी लोक चेतना उनके आधुनिक भाव-बोध और काव्य विषयों के अनुरूप ढलकर ही अभिव्यक्त हुई है। सर्वेश्वर को दिल्ली की सड़कें कुआनो नदी जैसी दीखती हैं मगर इस नदी की संपूर्ण परिकल्पना के पीछे उनकी लोकचेतना और ग्राम्य-जीवन की अनुभूति है-

> "फिर बाढ़ आ गई होगी उस नदी में
> पास का फुटहिया बाजार बह गया होगा,
> पेड़ की शाखों में बँधे खटोले पर
> बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के

और नीचे कीचड़ में खड़े होंगे चौपाये
पूँछ से मक्खियाँ उड़ाते।"[3]

यह चित्र इतना प्रमाणिक है कि लोक-जीवन के गहन अनुभव और संस्कारों के बिना इसका अंकन नहीं किया जा सकता। यह अंकन कवि का प्रयोजन नहीं है बल्कि एक तीखे यथार्थ को दिखाने में उसकी सार्थकता है। ग्रामीण संस्कारों की प्रबलता ने सर्वेश्वर को 'महानगरीय-सभ्यता' के भीतर बेचैन रखा है। वे कभी भी शहर से समझौता नहीं कर सके। अपने को 'घन्त-मन्त' की कथा का त्रासद हीरो मानकर सर्वेश्वर ने लिखा है-

"घन्त-मन्त दुई कौड़ी पावा
कौड़ी लै के दिल्ली आवा,
दिल्ली हमका चाकर कीन्ह
दिल-दिमाग भूसा भरि दीन्ह"[4]

महानगर के कोलाहल में भी वे शहरी सभ्यता से घबराए नहीं। ग्रामीण संस्कारों से ही वह चरवाहों, हरवाहों और मजदूरों से तादात्म्य स्थापित कर सके। मध्यवर्गीय संवेदना से जुड़े होने के कारण सर्वेश्वर लोक-सम्पृक्ति के कवि कहे जा सकते हैं। लोक-सम्पृक्ति का तात्पर्य लोक और उसके जीव से गहरा लगाव है। इसी से किसी कवि की लोक संवेदना का पता चलता है। वास्तविकता यह है कि लोक की सम्पृक्ति के बिना कोई भी कवि अथवा कलाकार अपने को लोकप्रिय नहीं बना सकता। यह चेतना ग्राम्य जीवन के प्रमाणिक अनुभवों और वहाँ के लोगों के आपसी तौर-तरीकों, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, वातावरण, प्रकृति, बोलचाल, आस्था ओर विश्वासों आदि के गहन निरीक्षण से निर्मित होती है। इसी लोकसंस्कृति और लोक संवेदना की अनेकानेक अनुभूतियाँ सर्वेश्वर के काव्य में दृष्टिगत होती हैं। उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता ग्राम्य-संस्कृति और लोक-धुनों का मणि-कंचन योग है। लोक-संस्कृति के जिज्ञासुओं के लिए सर्वेश्वर के काव्य की ये कविताएँ 'सांस्कृतिक-कोश' के समान महत्वपूर्ण हैं। इन कविताओं का परिवेश हमारे सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का जीवन्त पक्ष है। इसमें न कोई बनावट है और न कोई आरोपण ही है-

"यह डूबी-डूबी साँझ
उदासी का आलम
मैं बहुत अनमनी
चले नहीं जाना बालम,
ड्योढ़ी पर पहले दीप जलाने दो मुझको......
उगने तो दो पहले उत्तर में ध्रुवतारा,
पथ के पीपल पर कर आने दो उजियारा,
पगडण्डी पर जल, फूल-दीप धर आने दो,
चरणामृत जाकर ठाकुरजी का लाने दो,
यह डूबी-डूबी साँझ..... ।"[5]

इसी प्रकार 'आँधी-पानी आया' कविता में भी कवि की लोक-अनुभूति इतनी गहरी है कि लोक-संपृक्ति का पाठक उसके आनन्द रस में सराबोर हो जाता है-

"महल-दुमहले तोड़-फोड़कर
बरसो राम धड़ाके से
दे दे गाली पाकड़ वाली
बुढ़िया मर गई फाके से।
नन्हा बालक तुतलाया
खेतिहर ने गोद उठाया।"[6]

सर्वेश्वर के काव्य की यह विशेषता है कि उन्होंने लोक-चेतना को अपने युग के काव्य के मुहावरे के तौर पर न अपनाकार, एक गहरी तथा आन्तरिक लोक संवेदना का परिचय दिया है। रंग तरबूजे का, झाड़े रे महंगुआ, गरीबा का गीत आदि कविताएँ, भाषा, शिल्प तथा कथ्य के तीन स्तरों पर इसी आंतरिक लोक संवेदना की कविताएँ हैं, जबकि रेत की नदी, शामः एक किसान, भूख, काला तेंदुआ, भुजनियाँ का पोखरा, बाँसगाँव, टपरा, गाँव का सपेरा, मेरे भीतर की कोयल आदि अनेक कविताओं में लोक बिम्बों के प्रयोग द्वारा नितांत आधुनिक संवेदनाएँ भी व्यक्त हुई हैं। इसी प्रकार 'बनजारे का गीत', 'युग जागरण का गीत', 'सिपाहियों का गीत', 'चुपाई मारौ दुलहनि', 'आए महन्त वसन्त', 'मेघ आए' आदि

कविताओं में प्रकृति संवेदना के सहारे लोक जीवन में रची-बसी संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है। 'मेघ आए' कविता में हमारी ग्रामीण-संस्कृति बड़ी शालीनता के साथ संवेदित हुई है-

"मेघ आए बड़े बन-ठन के सँवर के...
पाहुन ज्यों आए हों गाँव में शहर के
पेड़ झुक झाँकने लगे गरदन उचकाए,
आँधी चली, धूल भागी घाघरा उठाए।
बाँकी चितवन उठा नदी ठिठकी, घूँघट सरके....
बूढ़े पीपल ने आगे बढ़कर जुहार की,
"बरस बाद सुधि लीन्हीं"-
बोली अकुलायी लता ओट हो किंवार की।
हरषाया ताल लाया पानी परात भर के,
मेघ आए बड़े बन-ठन के सँवर के।"[7]

इन काव्य पंक्तियों में 'मेघ-पाहुन' के बहाने कवि ने सांस्कृतिक-संवेदना को जिस सरसता और संवेदना के साथ उजागर किया है वह हिन्दी साहित्य की महती उपलब्धि है। ग्रामीण-संस्कृति का इतना विश्वसनीय चित्रण अन्यत्र बहुत कम मिलेगा। 'काठ की घंटियों' से लेकर 'कोई मेरे साथ चले' तक की अनेक कविताएँ सर्वेश्वर की लोक-सम्पृक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सर्वेश्वर ने अपने काव्य में उन सभी सरोकारों को पाठक के सामने रखा है जिनसे गाँव का साधारण जन जुड़ा है। ग्रामीण समाज की दैनिक समस्याओं का भी उनके काव्य में खुलकर चित्रण हुआ है। गाँव से आकर शहर में बसे लोगों की समस्याएँ भी यहाँ वर्णित हुई हैं। 'चुपाई मारो दुलहिन' कविता में कवि ने गाँव की गरीब महिला का दारुण चित्र खींचा है जो रोटी की तलाश में शहर जाकर मजदूरी करती है, मगर लाला के बाजार से उसे खाली हाथ ही लौटना पड़ता है-

"लाला के बाजार में
मिली दुअन्नी
पर वह भी निकली खोटी,

दिन भर सोई,
बीच बाजार में बैठ के रोयी,
साँझ को लौटी
ले खाली झौआ"[8]

प्रस्तुत कविता में एक ऐसी औरत का दर्द है जिसे अपनी इज्जत गँवाकर खोटी दुअन्नी ही मिलती है।

सर्वेश्वर ने अपने काव्य की सरस अभिव्यंजना के लिए लोकजीवन के शब्द बड़ी निपुणता के साथ प्रयोग किए हैं–

"तेरी भैंस को डंडा कब मारा
मैंने भैंस को डंडा कब मारा...
तेरी भैंस है जनता की प्रतिनिधि
उसने मेरी छान गिरायी थी।
तेरी भैंस ने खाया कामसूत्र
तेरी भैंस ने खा डाली गीता
तेरी भैंस से अब क्या शेष रहा
तेरी भैंस से ही यह युग बीता।"[9]

सर्वेश्वर ने अपने काव्य में गाँवों के अनेक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन कविताओं को पढ़कर गाँव का चित्र सामने आ जाता है। उनकी 'कुआनो नदी' कविता का दर्द ग्रामीण संवेदना से जुड़े आम आदमी का दर्द है। यह कविता लोकजीवन के तत्वों और लोक संस्कृति का अद्‌भुत भण्डार है। इसमें बाढ़ के कारण प्राण–रक्षा के लिए पेड़ों की डालों पर बँधे खटोले, उन पर बैठे बच्चे और नीचे कीचड़ में खड़े चौपायों का दृश्य, गाँव की गरीबी, कच्ची सड़क पर चलती बैलगाड़ी, उनमें जुते नए खरीदे व रंगे सींगों वाले घण्टियाँ बजाते बैल, गाँव के पोखर, पोखरों में सिंघाड़े तोड़ते खटिक–खटीकनें, लोहार, बढ़ई, फेरीवाले बिसाती, पानी में बैठकर भोजन बनाती औरतें, उनके बच्चे, निराई–बुवाई के गीत गाती औरतें आदि कितने ही बिम्ब इस कविता में हैं जो ग्रामीण यथार्थ को सामने ला देते हैं।

सर्वेश्वर की कविताओं में भूख, दर्द और देश की गरीबी का भरपूर चित्रण मिलता है। 'भुजैनिया का पोखरा' कविता में गरीबी का मार्मिक दृश्य उपस्थित किया गया है जिसमें एक निर्धन औरत स्वयं दिन-रात काम करती है परन्तु उसके बच्चों को न खाने को रोटी मिलती है और न ही पहनने को कपड़ा। भूखे और अधनंगे बच्चे भी माँ का हाथ बँटाते हैं, मगर पेट की आग तब भी नहीं बुझती-

"भाड़ के सामने काली भूतनी-सी
आज भी वह बैठी है
पसीने से चिपचिपाती देह लिए,
चुप खामोश,
एक-एक चने से अपना भाग्य जोड़ती
दुखती रगें तोड़ती।
उसके अधनंगे बच्चे भाड़ झोंकने के लिए
दिन भर सूखी पत्तियाँ बटोरते हैं।"[10]

सर्वेश्वर की लोकप्रियता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि उन्होंने अपने को बराबर लोकजीवन से जोड़े रखा है। ये अनुभूतियाँ अच्छे और बुरे दोनों ही रूपों में चित्रित हुई हैं। उनके हर संग्रह में एक-आध कविताएं ऐसी मिल ही जाती हैं जो सीधे लोक को अभिव्यक्त करती हुई लोक जीवन से जुड़कर लोकप्रिय हो जाती हैं। उदाहरण के लिए 'काठ की घंटियाँ' काव्य-संग्रह से 'सावन का गीत' लिया जा सकता है-

"नीम की निबौली पक्की, सावन की ऋतु आयी रे
सर-सर-सर-सर बहत बयरिया
उड़ि-उड़ि जात चुनरिया रे,
खुलि-खुलि जात किवंरिया ओठंगी
घिरि- घिरि आत बदरिया रे,
भुइयाँ लोटि-लोटि पुरवाई बड़ी-बड़ी बुँदियाँ लायी रे।"[11]

सावन में निबौली का पकना, वायु का बहना, दादुर, मोर, पपीहे का बोलना एक अजीब मस्ती के वातावरण का सृजन करते हैं। 'गाँव की शाम का सफर'

कविता में कवि ने ग्रामीण जीवन का एक अत्यन्त आकर्षक और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है–

> "सर पर गट्ठर, लपके तेज कदम
> झुका पलक चौपायों के पीछे,
> कोई घायल मन सहला–सहला भूले गीतों को–दोहराता है
> कोई सिसकी का ईंधन भर–भर ठंडे चूल्हों को गरमाता है।"[12]

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सर्वेश्वर एक लोक धर्मी कवि हैं जिनके काव्य में लोक–संवेदना की एक प्रामाणिक और प्रासंगिक दृष्टि मिलती है। यह दृष्टि उनकी अनुभूतियों, संवेदनाओं और भोगे गए यथार्थ से विकसित हुई है। इस कारण ही उनकी कविताएं मानवीय संवेदना का काव्य बन सकी हैं।

5.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के कथा–साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना बहुआयामी व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। मूलतः ग्रामीण परिवेश में पले और बढ़े होने के कारण लोक–सम्पृक्ति के तत्व उनके कथा–साहित्य में भी विद्यमान हैं। उन्होंने ऐसी अनेक कहानियां लिखी जिनमें उनकी लोक–दृष्टि अभिव्यक्त होती है। ऐसी कहानियों में 'आंधी की रात', 'कच्ची सड़क', 'धूप', 'कमला मर गई', 'चोरी', 'सीमाएं', 'डूबता हुआ चांद', 'भुईंलोटन', उठे हुए सिर का बोझ', 'कहानी बिना शीर्षक', 'क्षितिज के पार', 'भगत जी', 'मरी मछली का स्पर्श' और 'सफलता' आदि कहानियां प्रमुख हैं। 'कच्ची सड़क' शीर्षक कहानी में लेखक ने जगेसर द्वारा बैल की एक नई जोड़ी खरीदकर लाए जाने पर ग्रामीण समाज को छोटी–छोटी खुशियों में डूबते और इठलाते हुए बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है–

"शुभ बेला, गीत कढाओं भौजी !" जगेसर ने ब्याह की हंसी को अपने मर्म पर झेलते हुए कहा, "देवरानी ले आओ फिर गीत सुन्यों।" इतना कहकर भौजी ठुमक कर चल दीं। लेकिन चार कदम जाकर एक बार पीछे उलट कर देखा फिर गाती हुई चली गईं।

“रसबुनियां गुलाब चुएला।

उहै, रसबुनियां से पगिया रंगायूं

उ हौरिलवा के नाम बोंधेला।

रसबुनिया गुलाब चुएला।

यौवन के गुलाब से रस की बूंदे चू रही हैं जिनसे मैंने उसकी पाग रंगी है......’ जगेसर ने पंक्तियों को मन ही मन दोहराया और बैलों के लिए नए हौद में सानी चलाने लगा।”[13]

इसी प्रकार ‘उठे हुए सिर का बोझ’ शीर्षक कहानी भी लोक-संवेदना से परिपूर्ण है। कहानी का मुख्य पात्र बीपत स्वाभिमान की जिंदगी जीना चाहता है लेकिन गरीबी और उससे जुड़ी आपदाएं उसे घुटने टेकने पर मजबूर कर देती हैं–

“अचानक उस पर एक और कहर टूटा। उस समय उसकी आयु पैंतीस साल की थी। तीन लड़के थे। बड़े हो रहे थे। एकाएक काले ज्वर में उसकी पत्नी का देहांत हो गया।

भादों का महीना था। चारों तरफ पानी ही पानी था। गांव में कहीं बीनने पर भी एक सूखी टहनी नहीं मिल सकती थी। उसके गुमान का एक पेड़ भी अब उसके पास नहीं था। रोना-धोना समाप्त करने के बाद, पत्नी की मिट्टी के पास वह, उसके लड़के और दो एक उसके साथी इस चिंता में सिर झुकाए बैठे थे कि मिट्टी के लिए लकड़ी का प्रबंध कैसे हो। बीपत से किसी की कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी.......।

अंततः जमीदार के यहां जाने का भी कोई फायदा नहीं हुआ। आखिरकार हारकर बीपत को नदी का सहारा ही लेना पड़ा–

“पानी बरस रहा था। आकाश में इतनी काली घटाएं थीं कि जैसे वे कभी नहीं हटेंगी। बीपत चार आदमियों के साथ अर्थी और सरपत के गट्ठर लिए, चुपचाप नदी के किनारे चला जा रहा था। बिना यह अनुभव किए हुए कि उसके सिर पर कोई बोझ है भी या नहीं।”[14]

सर्वेश्वर ने अपनी कहानियों में लोक-संवेदना के जो रंग भरे हैं वे बड़े सजीव और जीवंत हैं। उनकी बाल कथाएं तो लोक-सम्पृक्ति के प्राणों से ही स्पंदित हैं। 'जूँ चट्‌ट पानी लाल' बाल कथा में लोक संवेदना का रंग देखिए-

"एक लड़की थी। वह हमेशा धूल में खेलती थी। नतीजा यह हुआ कि उसके सिर में जुएं भर गयीं ! वह हर समय सिर खुजलाती और रोती। एक दिन उसकी मां ने कहाः "आ तेरी जुएं निकाल दूं।" मां एक जूं निकालती जाती और उसकी हथेली पर रखती जाती। लड़की उन्हें एक नाखून पर रखकर मारती जाती। उसका नाखून लाल हो गया। वह दौड़ी-दौड़ी उसे धोने नदी पर गई। नदी ने पूछाः "लड़की, लड़की, तेरे नाखून कैसे लाल हो गए?" लड़की ने उत्तर दियाः "जूँ चट्‌ट पानी लाल !"[15]

इस बाल कहानी में सर्वेश्वर की लोक-दृष्टि इतनी प्रभावशाली है कि पाठक बरबस ही गांव की दादी मां या नानी मां की स्मृतियों से होकर गुजर जाता है। इसी प्रकार उनकी अन्य बाल कहानियां 'अपना दाना', 'सफेद गुड़', 'अब इसका क्या जवाब है' और 'टूटा हुआ विश्वास' में भी लोक-दृष्टि बड़े ही प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुई है।

इसी क्रम में कथा-साहित्य के अंतर्गत यदि सर्वेश्वर के उपन्यासों में लोक-दृष्टि का विश्लेषण किया जाए तो कहा जा सकता है कि उनके तीनों ही उपन्यासों में लोक-सम्पृक्ति के तत्व विद्यमान हैं। 'सूने चौखटे' शीर्षक उपन्यास में लोक-संवेदना और भावुकता को ही कथ्य का प्रमुख आधार बनाया गया है। इस उपन्यास में गरीबी से जूझते ग्रामीण समाज और उनके रहन-सहन का जो चित्र सर्वेश्वर ने खींचा है वह उनके जन कवि और लेखक होने का प्रमाण है-

"इस सहन में शहर का कूड़ा साफ करने वाले मेहतर रहते थे जिनके नाम पर ही इस पूरे मोहल्ले का नाम 'कंजड़ टोला' था। सांझ के बाद यहां रोशनी कम होती थी। मच्छरों को भगाने के लिए सुलगते हुए कूड़े का धुआं इतना घना होता था कि आपको आर-पार कहीं कुछ दिखाई नहीं दे सकता था। यूं बांस की झुरमुटों में जुगनू अपनी लालटेनें जला लेते थे। इक्के-दुक्के खपरैल के नीचे मिट्‌टी के तेल की ढिबरियां भी कभी-कभी जलती थीं, लेकिन वहां इंसान हैं, इसकी

सूचना आप इस प्रकाश से नहीं उस शोर से पा सकते थे जो वहां होता था। यह शोर ही जैसे इनकी जिंदगी थी जिसमें फूहड़ गानों के बेसुरे अलाप, कहकहे, गाली-गलौज, मारपीट, औरतों की चीख-पुकार, ऊंचे स्वर में कोसना, ढोल की ढमढम, कार्नेट की तेज आवाज, जिसमें टूट-टूटकर जोड़ी गई किसी चलते सिनेमा के गाने की लत, भूत और प्रेत की माया तले अथुआना, रोना, सिर पटकना, फूल की थालियां और कनस्तरों का पीटना, बच्चों का रोना-गाना, नाचना सब शामिल होता था।"[16]

इसी उपन्यास की पात्र अंधी नानी के परिवेश को बताने के लिए सर्वेश्वर ने जिस लोक-दृष्टि का सहारा लिया है वह परिवेश आज भी हमारे समाज में उसी रूप में विद्यमान है-

"कोठरी बहुत छोटी थी। दरवाजे के पास दीवार में मिट्टी के निकले हुए आले पर छोटी-सी एक मिट्ती के तेल की ढिबिया जल रही थी। एक ढीली अरगनी पर मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े लदे हुए थे। एक ओर चीड़ के पटरे पर थाली, पतीली, तवा तथा और थोड़े बहुत जरूरत के बर्तन करीने से सजे हुए थे। एक झोली चारपाई पर मैली कथरी में लिपटी हुई वह लेटी थी।"[17]

'पागल कुत्तों का मसीहा' शीर्षक उपन्यास की कथावस्तु भी लोकजीवन से गहरा सरोकार रखती है। उपन्यास में आर्थिक संकट से जूझता दीनू नाम का मुख्य पात्र जब अपने बच्चे को बीमारी से बचा लेता है तो उसे अपने पकड़े हुए पागल कुत्ते में दैवीय शक्ति का आभास होता है। इसी के वशीभूत होकर वह उस पागल कुत्ते को अपने घर ले आता है। इस उपन्यास के माध्यम से सर्वेश्वर ने पागल कुत्ते को संकेतात्मक आयाम देकर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांकेतिक मूल्यों की गहरी पड़ताल की है। लोक-दृष्टि के स्तर से भी यह उपन्यास महत्वपूर्ण है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"उसका घर छोटा था। मेहतरों की उस छोटी गंदी वीरान-सी बस्ती में सबसे अलग एक कोने पर, मगर आने जाने के रास्ते में पड़ता था। इसलिए अलग होते हुए भी उसकी सत्ता सबसे बंधी थी। एक छोटी अंधेरी खपरैल की कोठरी, बाहर बांस के फट्टे के सहारे थमा हुआ टीन का एक संकरा-सा कामचलाऊ ओसारा,

जिसके एक हिस्से में घर का चूल्हा था और दूसरे हिस्से में वह पागल कुत्ता बांध दिया गया था। हिफाजत के लिए उसकी पत्नी ने कुछ टूटे टीन के कनस्तर और चीड़ के पटरे रखकर एक दीवार-सी खड़ी कर दी थी।"[18]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वर लोक-सम्पृक्ति के कवि ही नहीं हैं बल्कि लोक जीवन में रचा-बसा उनका कथा-साहित्य भी उनकी लोक-दृष्टि से ही स्पंदित होता है।

5.3 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाट्य-साहित्य में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि

कथा-साहित्य के साथ-साथ सर्वेश्वर की पहचान एक सशक्त नाटककार के रूप में भी रही है। उनके नाटकों में अभिव्यक्त लोक-दृष्टि नाटकों को एक विशिष्ट शैली में परिवर्तित कर देती है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल ने उनके नाटकों के संबंध में ठीक ही लिखा है-"यह अकारण नहीं है कि उनकी कविताओं के बिंब प्रकृति, किसान वेदना और राजनीति से आते है। उनका रचनात्मक स्वभाव ही ऐसा है कि भोगनेवाले प्राणी और रचने वाले प्राणी के बीच पार्थक्य नहीं है। जीवन की सघन-प्रगाढ़ अनुभूतियां शिराओं के खून को खौलाती हैं और सृजन-प्रेरणा की शक्ति से विवश रचनाकार संवेदनात्मक-विचारात्मक, ज्ञान-व्यवस्था को नये-नये रूपों में गुंफित करता है।"[19] इस संदर्भ में यदि उनके प्रमुख नाटक 'बकरी' का विश्लेषण किया जाए तो नाटक के अनेक संवादों, गीतों व दृश्यों में नाटककार की लोक-दृष्टि साफ परिलक्षित होती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"**औरतः** उर्र, उर्र, उर्र! अरे मिल गई, मिल गई! हुजूर ई बकरी हमार है। ईहां कौन बांध लावा?

सिपाहीः बकवास बंद करो। यह गांधीजी की बकरी है।

औरतः नाही हुजूर, हम पाला पोसा है। ई हमार है।

सिपाहीः जानती है यह कितने की बकरी है?

औरतः जमींदार साहब बीस रुपिया देत रहेन हम नहीं दिया, हम को, बच्चों को जान से पियारी है। हम गरीब आदमी हैं, दुई बखत दूध.....।"[20]

प्रस्तुत संवादों में नाटककार ने जिस प्रकार लोक शैली का प्रयोग किया है उससे उसकी लोकदृष्टि ही उजागर होती है। इसके अतिरिक्त नाटक की लोक संवेदना को स्वीकारते हुए सर्वेश्वर स्वयं कहते हैं कि– "यह नाटक न लिखा जाताः **(1)** यदि हिन्दी में कोई ऐसा नाटक होता जिसमें जन चेतना को लोकभाषा और लोकरूपों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के साथ जोड़ने का एक नया व्याकरण देखने को मिलता। **(2)** यदि हिन्दी के तथाकथित श्रेष्ठ नाटक बड़े प्रेक्षागृहों भारी तामझाम और विद्वत प्रेक्षक समाज के मुहताज न होते। **(3)** यदि हिंदी के नाटककार यशःप्रार्थी न होकर आम आदमी की पीड़ा, आम आदमी की जबान में आम आदमी के बीच ले जाना हिंदी रंगमंच के लिए आज अनिवार्य मानते।

यह नाटक जितना ही गांवों, कस्बों, मजदूर बस्तियों और स्कूलों–कालेजों में खेला जाएगा उतना ही इसका उद्‌देश्य पूरा होगा।"[21]

नाट्‌य संबंधी उनकी इस लोकधर्मिता पर प्रकाश डालते हुए डॉ.पालीवाल भी लिखते हैं कि–"अनेक नाट्‌य–प्रस्तुतियों के लंबे समय तक धैर्यवान प्रेक्षक बनकर सर्वेश्वर ने यह अनुभव ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि हिंदी नाटक की सर्वाधिक सर्जनात्मक संभावना को लोक–नाट्‌य शैली के सार्थक प्रयोगों से ही सामने लाया जा सकता है। नये नाटककार को अपनी नाट्‌य–परम्पराओं, रंग–पद्धतियों, प्राविधानों के साथ पूरे मन से जुड़ना चाहिए। पश्चिमी रंग परंपराओं मे प्रयोग तो हो सकते हैं, पर उन प्रयोगों में लोक–मन का जुड़ाव–रचाव नहीं हो सकता। नाटक अपनी भूमि पर ही पनपता है। उसकी पूरी चेतना में संस्कृति विशेष की कलाओं की प्रेरणा–प्रभाव शक्ति सक्रिय रहती है। इसी दृष्टि से सर्वेश्वर ने अपने नाटकों को पश्चिमी प्रयोग–चक्र में नहीं पड़ने दिया। खूब सोच–समझकर उन्होंने भारतीय रंगमंच की लोक–नाट्‌य–शैली वाली जड़ों से अपना नाता जोड़ा। यह नाता उन्हें रामलीला, कृष्णलीला, स्वांग–प्रहसन–नौटंकी की लोक रंग परम्परा से मिला था।"[22]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर का 'बकरी' शीर्षक नाटक लोक–संवेदना और अभिव्यक्ति का जीवंत प्रमाण है जिसमें उनकी लोक–दृष्टि स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

सर्वेश्वर का दूसरा महत्वपूर्ण नाटक 'लड़ाई' है। लोक संवेदना की दृष्टि से देखा जाए तो यह नाटक भी आम आदमी की पीड़ा और उसके संघर्ष की छटपटाहट पर आधारित है। यह एक ऐसी लड़ाई है जो सदियों से लड़ी जा रही है और आज भी जारी है। नाटक के बारह-तेरह दृश्य लड़ाई को सफल बनाते हैं। नाटक का केन्द्रीय पात्र सत्यव्रत हर जगह लड़ाई लड़ता है पर बात बनती नही। आम आदमी की बोली-बानी, गीत लय में नाटक रचने के पीछे सर्वेश्वर की लोक चेतना का रंग है और यह रंग ही इस नाटक की सृजनात्मक शक्ति है।

सर्वेश्वर का तीसरा महत्वपूर्ण नाटक 'अब गरीबी हटाओ' है। लोक-शैली और लोक लय के साथ व्यंग्य की ठसक ने नाटक में प्राण डालने का कार्य किया है। डा.पालीवाल के शब्दों में-"यह नाटक इस सच्चाई को उघाड़कर रख देता है कि शहरी आधुनिक रंगमंच जन-चेतना से कितना विच्छिन्न और दूर है। जब तक हमारा रंगमंच एक व्यापक समाज की पीड़ाओं-संघर्षों, विसंगतियों या विडंबनाओं को संवाद प्रस्तुति और प्रस्तुतिकरण की नयी पद्धतियों की खोज में प्रवृत्त नहीं करता तब तक वह अधूरा है।"[23]

नाटक के कथ्य और शिल्प दोनों मे ही नाटककार की लोक-दृष्टि स्पष्टतः परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए नाटक का एक गीत दृष्टव्य है-

"मंहगाई है छाई राजा का लइहौ ?
दस की झुलनी
दस की ओढ़निया
तीन रुपैया कमाई,
कमाई राजा का लइहौ ?
मंहगाई है छाई राजा का लइहौ ?
एक रुपैया में
चार जलेबी
तीन गटकिहै भौजाई,
भौजाई राजा का लइहौ ?
मंहगाई है छाई राजा का लइहौ ?

जितने में आवे

राजा इक साड़ी

उतने में आवे लुगाई,

लुगाई राजा का लइहौ ?

मंहगाई है छाई राजा का लइहौ ?"[24]

उपर्युक्त गीत ग्रामीण संवेदनाओं को इतनी गहराई से स्पंदित करता है कि मानो यह कजरी और बारहमासा जैसा कोई लोकगीत हो।

सर्वेश्वर का अगला नाटक 'हवालात' है जो पुलिस तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर तीव्र प्रहार करता है। लोक संवेदना की दृष्टि से यह नाटक भी महत्वपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि सर्वेश्वर की यह खासियत है कि उनके नाटकों के अधिकतर किरदार ग्रामीण पृष्ठभूमि के ही होते हैं। एक उदाहरण देखिए जब नाटक का एक पात्र पुलिसवाले की घर की दशा का वर्णन कर रहा होता है-"वह तो मैं पट्टी बंधे होने पर भी देख रहा हूं। एक छोटी कोठरी है। एक टूटी खाट पर आपकी बीमार बीवी बिना दवा के पड़ी है। टीन के कनस्तरों और हांडियों में चूहों भर का राशन। बुझा हुआ चूल्हा है, काला, अधजली लकड़ी राख।"[25]

'हिसाब-किताब' सर्वेश्वर का अंतिम नाटक है जिसमें उन्होंने समाज में व्याप्त उस व्यवस्था पर व्यंग्य किया है जिसमें विभिन्न वर्गों के गठजोड़ से भ्रष्टाचार फलता-फूलता है। लोक संवेदना की दृष्टि से नाटक के संबंध मे इतना ही कहा जा सकता है कि नाटक बालकों के उस बड़े वर्ग के शोषण का वर्णन करता है जो इतने मासूम हैं कि उन्हें इसका आभास भी नहीं होता कि उनके साथ अन्याय किया जा रहा है।

जिस दौर में सर्वेश्वर नाटक लिख रहे थे उस समय नुक्कड़ नाटकों की भी आंधी चल रही थी। सर्वेश्वर भी इससे अछूते नहीं रहे। 'मर गया ले जाओ' सर्वेश्वर का इसी प्रकार का एक नुक्कड़ नाटक है। लोक दृष्टि के पक्ष से देखा जाए तो यह नाटक एक बोली में लिखा गया है जिसमें एक औरत की लाचारी में उसके पति के मरने की व्यथा का चित्रण है। ग्रामीणों की लोकभाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"**आदमीः** (औरत से) हम कहित हैं चुप करो। बहुत होय गवा।

[औरत चुप नहीं होती, रोती ही जाती है।]

आदमीः (औरत से) देखो भीड़ लाग रही है। आपन दुख अपने तक राखे। काव तमाशा बनाय रही हो।"[26]

नाटकों के साथ-साथ सर्वेश्वर ने 'होरी धूम मच्यो री' शीर्षक से एक नृत्य-नाटिका भी लिखी। लोक संवेदना की दृष्टि से यह नाटिका बेजोड़ है। इस नृत्य नाटिका में कृष्ण, मनसुखा, राधा, ललिता तथा अन्य गोपी-गोपियां हैं। नाटिका की शुरूआत उल्लासमय मादक संगीत से होती है जहां डफ, मृदंग आदि वाद्य बज रहे हैं। नाटिका में होली का रीतिकालीन परिवेश है जिसमें कवि पद्माकर के वसंत वर्णन को दर्शाया गया है-

"कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत हैं
कहै पद्माकर परागन में पौन में
पानन में पिक में पलासन पंगत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखो दीप-दीपन में दीपक दिगंत हैं
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में, वेलिन में
बनन में बागन में बगरो वसंत है।"[27]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियां लोक भाषा में होने के कारण इस नाटिका को लोक संवेदना से परिपूर्ण करने में सक्षम हैं और शायद नाटककार का उद्देश्य भी यही है। डॉ.पालीवाल के शब्दों में-"रीतिकालीन कवियों के कवित्त सवैया का रंग नृत्य नाटिका में उमड़ता है और राधा कृष्ण की रंग लीला का प्रगाढ़ संसार पाठकों के चित्त में आनंद राग का संचार करता है।"[28]

सर्वेश्वर के इसी मनोभाव का विस्तार उनकी एक अन्य नाटिका 'रूपमती बाज बहादुर' में भी हुआ है। इस नाटिका में माण्डव के सूने महलों के बीच रात में रूपमती की डोलती आत्मा और बाजबहादुर का अशरीरी प्रवेश दिखाया गया है।

इस प्रकार देखा जाए तो सर्वेश्वर के संपूर्ण नाट्य–साहित्य में लोक–संपृक्ति के तत्व विद्यमान हैं जो उनके नाट्य–साहित्य में उनकी लोक–दृष्टि का प्रमाण हैं। ।

5.4 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के इतर–साहित्य में अभिव्यक्त लोक–दृष्टि

सामान्यतः सर्वेश्वर की पहचान तीसरे सप्तक के एक सशक्त कवि के रूप में है लेकिन उनकी यह पहचान अपूर्ण है। वास्तव में सर्वेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होंने न सिर्फ काव्य रचनाएं लिखी बल्कि कथा साहित्य, नाटक, संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। यहां पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके इतर साहित्य में भी उनकी लोक–दृष्टि साफ झलकती है। पत्रकारिता के अंतर्गत उनके चरचे और चरखे स्तम्भ इसका प्रमाण हैं। उनके ये निबंध हमेशा आम आदमी को केन्द्र में रखकर लिखे गए। व्यंग्य की अद्‌भुत शैली से परिपूर्ण ये निबंध राजनेताओं, सरकारों और नौकरशाहों को तिलमिलाने पर विवश कर देते हैं–

"आजादी के पच्चीस साल के बाद तो उसे अपनी भाषा में लिखने पर गौरव होना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं है? एक पढ़े–लिखे नौजवान के सामने यह हीन भावना क्यों खड़ी हुई है कि जब तक वह अंग्रेजी जानने का प्रमाण न दे दे तब तक वह पढ़ा–लिखा नहीं माना जाएगा। लेकिन स्थिति यही है कि अंग्रेजी जानना ही आज पढ़े–लिखे होने का सबूत है, प्रतिष्ठा का सूचक है।"[29]

सर्वेश्वर की यह लोक–दृष्टि उनके संपूर्ण साहित्य में अमिट रूप से विद्यमान है चाहे वह पत्रकारिता साहित्य हो अथवा उनके संस्मरण या रिपोर्ताज। उनके साहित्य का केन्द्रीय पात्र सतह का वो आदमी है जो निरंतर संघर्षशील है। इस संघर्षशीलता को सामने लाना ही उनका एक मात्र लक्ष्य है।

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वर का संपूर्ण साहित्य लोक संवेदना का साहित्य है और इस लोक संवेदना का आधार उनकी लोक–दृष्टि है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोशः प्रधान संपादक-डॉ.श्याम बहादुर वर्मा, खण्ड-1, पृष्ठ-1273
2. मानक हिन्दी कोश : संपादक-रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ-108
3. कुआनो नदी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-11
4. प्रतिनिधि कविताएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-71
5. कविताएँ-एक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-26
6. वही, पृष्ठ-99-100
7. कविताएँ-दो : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-227
8. कविताएँ-एक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-144
9. कविताएँ-दो : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-119
10. कुआनो नदी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-46-47
11. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-एक, पृष्ठ-88
12. वही, पृष्ठ-63
13. क्षितिज के पार : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-65
14. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावलीः संपादक-वीरेन्द्र जैन, खंड-चार, पृष्ठ-205-06
15. अपना दाना : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-16
16. सूने चौखटे : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-6-7
17. वही, पृष्ठ-9
18. सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का मसीहा : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-58
19. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-187
20. बकरी : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-21
21. वही, पृष्ठ-5-6
22. वही, पृष्ठ-58
23. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-190
24. अब गरीबी हटाओ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ-22-23

25. हवालात : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–19-20

26. वही, पृष्ठ–33

27. होली धूम मच्यो री : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–9-10

28. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ–191

29. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खंड–आठ, पृष्ठ–42

अध्याय

6

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य–दृष्टि

साहित्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति का घनिष्ठ संबंध होता है। भाषा भावों की अनुगामिनी होती है। भाषा के बिना भावों की सशक्त अभिव्यक्ति संभव नहीं है। इस अर्थ में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का यह संबंध साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण होता है। भाव और विचारों में परिवर्तन के समानान्तर भाषा में भी परिवर्तन होता रहता है। छायावादी काव्य की भाषा जहां कोमल और सूक्ष्मार्थी है वहीं प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की भाषा अधिक मुखर और जोशीली है। प्रगतिवाद की भाषा में कहीं–कहीं ओज गुण की प्रधानता दिखाई देती है।

हिन्दी काव्यांदोलनों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि भावों एवं विचारों के साथ–साथ भाषा में भी परिवर्तन होता गया। इस संदर्भ में सतीश कुमार का विचार है कि "काव्य–भाषा के क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों से पूर्व जितने भी प्रयोग हुए उसके अनन्तर भाषा–सौंदर्य के जो मानदण्ड स्वीकार किए गए थे, वे प्रयोगवादियों को मान्य न हुए। उनको पूर्व के कवियों की भाषा–अलंकार, छन्द सभी परम्पराओं के प्रति असंतोष रहा। आज के जटिल और उलझे हुए समाज में संवेदनाएं भी परस्पर उलझी हुई हैं, इसी कारण इन नए कवियों ने अपने भावों के संयोजन के लिए ऐसे अछूते और व्यापक प्रसंगों से सामग्री को ग्रहण किया है, जिनकी कोई पूर्व परम्परा नहीं है। इसी कारण इन नए कवियों को नए काव्य–विषय अपनाने के साथ–साथ अपनी काव्य भाषा को सुगठित बनाने की ओर भी सतत् प्रयास करना पड़ा है, क्योंकि ये नए भावों के अनुरूप भाषा, छन्द, अलंकार, प्रतीक आदि सभी कुछ चाहते हैं।"[1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचनाकाल प्रयोगवादी कवि के रूप में शुरू होता है। कालांतर में समकालीन कवियों में ये अपनी विशिष्ट

पहचान बनाते हैं। इनकी अधिकांश रचनाएं सन् 1960 के बाद ही प्रकाशित हुईं। 70-80 के दशक में परिवेशगत बदलाव के साथ-साथ विचार एवं भाषा में भी काफी परिवर्तन दिखाई देता है।

6.1 भाषिक संरचना

समकालीन कविता सीधे आम जनता से जुड़ी है। इस दौर के कवियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भाषाई स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाई क्योंकि उनका संबंध पत्रकारिता जगत से भी रहा है। इसके कारण उनकी रचनाओं में जगह-जगह पत्रकारिता की भाषा एवं संस्कृति दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही यहां यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की भाषा में अभिव्यक्ति प्रधान है चाहे इसके लिए विदेशी भाषा के शब्दों का सहारा ही क्यों न लेना पड़े। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य एवं अन्य साहित्य में भी भाषा का यह स्वरूप स्पष्टः देखा जा सकता है। उन्होंने अभिव्यक्ति के स्तर पर किसी भी सीमा में बंधना स्वीकार नहीं किया है। ओमप्रकाश थानवी को दिए गए एक साक्षात्कार में वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि-"कविता की भाषा को लेकर मेरा कोई आग्रह नहीं है। इस बात की जरूर कोशिश करता हूं कि जो सहज बोलचाल की भाषा है, उसी में कविता लिखी जाए। तीसरा सप्तक की भूमिका में भी मैंने यही कहा है। ऐसा काव्य जिसके लिए दुरूह, जटिल और अमूर्त की भाषा आवश्यक हो, मैं नहीं रच सकता क्योंकि मेरी संवेदना की बनावट वैसी नहीं है। इसलिए किसी आग्रहवश ऐसा नहीं किया है बल्कि सहज प्रकृतिवश ही मैंने कविता में सरल भाषा को स्वीकार किया है-उसी में काव्य रचा है।"[2] प्रसिद्ध समीक्षक डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में "सर्वेश्वर की काव्य-भाषा दिन-प्रतिदिन बोली जाने वाली भाषा के नित्य तत्वों के पुनर्विन्यास और काव्य-संदर्भगत रूपान्तरण की भाषा है।"[3] आपकी प्रारंभिक रचनाओं में शब्द-रूप के अंतर्गत कुछ बहुप्रचलित तत्सम शब्दों के साथ तदभव और देशज या लोकभाषा के शब्दों की बहुलता है।

6.1.1 शब्द-विधान

प्रत्येक रचनाकार अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा को माध्यम बनाता है। भाषा के निर्माण में शब्द महती भूमिका निभाते हैं। रचनाकार

अपने साहित्य में इन शब्दों का चयन करके ही भाषा को जीवंतता प्रदान करता है। काव्य के क्षेत्र में शब्दों का यह चयन विशेष महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में तार सप्तक के संपादक अज्ञेय का कथन प्रासंगिक है–"काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कविधर्म इसी परिभाषा से निसृत होते हैं।"[4] हमारे विवेचित कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भी अपनी अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए एक सफल रचनाकार के रूप में अपने साहित्य में शब्द–चयन में बेहद संजीदगी का परिचय दिया है। यहां यह बताना समीचीन होगा कि शब्द–चयन का यह स्वरूप सिर्फ सर्वेश्वर के काव्य में ही दृष्टिगोचर नहीं होता है बल्कि उनके गद्य–साहित्य में भी शब्द चयन में विशेष सावधानी बरती गई है। विशेषतः नाट्य साहित्य में उन्होंने शब्द–चयन का विशेष ध्यान रखा है। अध्ययन की दृष्टि से यहां पर उनकी भाषा में प्रयुक्त तत्सम, तदभव एवं लोकभाषा के शब्द तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों के क्रमवार उदाहरण दृष्टव्य हैं–

तत्सम शब्द

जैसा कि पूर्व में ही कहा जा चुका है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य की भाषा बोल–चाल की भाषा है अतः स्वभाविक है कि उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है परन्तु सामान्यतः लोकप्रचलित तत्सम शब्दों का प्रयोग करने में उन्होंने संकोच भी नहीं किया है। उनके साहित्य में प्रयुक्त तत्सम शब्दों के कुछ उदाहरणों के अंतर्गत अस्तित्व, दर्पण, सुगन्ध, प्रवाह, अलंकृत, निवृत्त, वसंत, किंशुक–छत्र, क्रांतियात्रा, आश्रय, सूर्योदय, सुषमा, ललाट, प्रवाह, नाभि, गैरिक–वसन, शिलाखण्ड, प्रतिष्ठित, तन, स्वागत, निर्वसन, अप्रत्याशित, स्वीकृति, प्रतिध्वनि, मुखाकृति, निस्तब्धता, निर्लिप्त, समर्पण, विपन्न, निरर्थक, शव–यात्रा, ईश्वर, विष, आश्चर्य, निस्तेज, प्रतिबिम्बित, निष्प्राण, अलंकृत, सूर्योदय, स्मृति, सूत्रधार, भ्रमित, क्षितिज, अंबर, अग्नि, आक्रोश, फल, पुष्प, पृथक, संकल्प, उच्छिष्ट, यात्रा, प्रेमपत्र, नेत्र, परिश्रम, दयार्द्र नेत्र, पोषक, विषमता, गृहदीप, सत्य, पाषाणवत, मृत्युपाष, आलोक, ज्योति, गौरवर्ण, अश्वारोही, मदिरा, उन्नत, जलक्रीड़ा, निरामिष, वाद्ययंत्र, अग्रगामी, आत्मीयता, आकर्षण, ईर्ष्या, सामर्थ्य, स्वार्थ, व्याप्त,

मनुष्य, ताम्रवर्ण, स्पर्श, दृष्टि आदि शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। तत्सम शब्दावली से परिपूर्ण उनकी एक काव्य-पंक्ति भी दृष्टव्य है-

"निर्मल जल से भरी पुष्करिणी में
हिलती है एक अधडूबी चंदन की डाल
आशीष निमज्जित रामनामी हंसी,
हर क्षण उतरती है पखेरुओं-सी
मुझे अपनी मां याद आती है
हर आंगन को ऊंचे स्वरों में गाती-
निश्चेष्ट होकर बैठ रहना
यह महा दुष्कर्म है।"[5]

तद्‌भव एवं लोकभाषा के शब्द

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में तद्‌भव एवं लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है। अपनी अभिव्यक्ति को सहज रूप देने के लिए उन्होंने ग्रामीण भाषा के शब्दों को भी ग्रहण करने में किसी प्रकार की कोताही नही बरती है। उनके साहित्य में शब्दों के इस चयन के संदर्भ में डॉ.पालीवाल का लिखते हैं कि-"लोक-जीवन की सही हालत का बयान करने के लिए कवि सर्वेश्वर ने देहाती बोली के जीवित शब्दों को कविता में नये अर्थों, व्यंग्य-वक्रोक्तियों, संदर्भों-मिथकों तथा लोक-लयपरक ध्वनियों में ढाला है। भाषा के शब्द आरंभ में कवि ने घर-आंगन, द्वार-चौपाल, खलिहान, मैदान, खेत-मेंड़, किसान-मजदूर आदि के लहजे में ग्रहण किये हैं।"[6] उनके साहित्य में प्रयुक्त तद्‌भव एवं लोकभाषा के शब्दों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं- कुत्ता, आंख, शाम, सावन, गांव, सुबह, गधा, माटी, काम, हाथ, होंठ, सांझ, हाथ, सूखा, पानी, बांस, पांव, चीरना, झांकी, दुलहिन, चुमकारती, सानी, भूसा, बालम, भोड़ी, इकन्नी, दुअन्नी, तमाखू, पोटली, हाता, गठरी, सोंटा, बापू, लइया, ड्योढ़ी, चौपाए, कौआ, झौआ, महुए, जानित, परात, चरन, भौजी, पियरी, उजियारा, बुलौआ, कनकौआ, संझौती, चढ़ौआ, नौआ, फटर-फटर, छुन-छुन, निबौली, उतानी, लकुटिया, करेजवा, हंसुली, बिछिया, नेग, पसरी, दोमुहां, खटोले, गटकना, चुग्गा, दिहिस, खपचियां, चकरघिन्नी, घंत-मंत, कौड़ी,

चाकर, घिघियाना, बरहा, सरसराती, सुथन्ना, टुकड़खोरी, उलच, लादना, ठहाके, अदहन, अगोरते, पटक, निगोड़े, सिवान, नोन तेल भात, फुटहिया बाजार, सगी, ढेकुल, अरगनी, टोला, ढिबरियां आदि। ग्रामीण संवेदना से जुड़ाव सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य की विशिष्ट पहचान है जो उनके साहित्य में उपर्युक्त शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भी हुई है। इस संबंध में उनकी कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"नदिया किनारे
सोने की खान,
छुओ मत, छुओ मत
बड़ी बुरी बान,
बिछिया, झूमर, मुंदरी, तरकी लाओ कहां धरे हो।"[7]

ग्रामीण संवेदना और उसकी कुशल अभिव्यक्ति के कारण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को लोक भाषा का कुशल चितेरा कहा जा सकता है।

विदेशज शब्द

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में विदेशी भाषाओं के शब्दों की भी कोई कमी नहीं है। अभिव्यक्ति के स्तर पर उन्हें जिन शब्दों में भी संप्रेषण प्रभावी दिखाई दिया, उन्होंने उसी के अनुरूप शब्दों का चयन किया। इस प्रकार उनके साहित्य में विदेशज शब्दों की भी बहुलता दिखाई देती है। विदेशज शब्दों के अंतर्गत उन्होंने अधिकांशतः अरबी और फारसी के शब्दों के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। इस संबंध मे डॉ.कल्पना अग्रवाल ने लिखा है कि–"सर्वेश्वर ने अपनी भाषा को सरल बनाने की कोशिश की है। उनका प्रयास ही यह रहा है कि वे उस सही शब्द की खोज करें जो जीवन के विविध संबंधों को अपने ढंग से पाठकों तक संप्रेषित कर सके।"[8] संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए प्रयोग किए गए अंग्रेजी भाषा के शब्दों के संदर्भ में डॉ.हरिचरण शर्मा ने भी लिखा है कि–"जहां लोकभाषा के शब्द अपनी वक्र भंगिमाओं और मुहावरेदानी से मिलकर अभिव्यक्ति को प्रभावी बना देते हैं वहीं अंग्रेजी के वे शब्द जो आजादी के बाद के

वर्षों में जिन्दगी की स्थितियों से जुड़ते चले गए हैं; सर्वेश्वर की अनुभूतियों को संप्रेष्य बनाने में बड़े कारगर सिद्ध हुए हैं।”[9]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्दों में थर्मामीटर, मशीन, पुलिस, बुलेट, ऑपरेशन, थियेटर, काफी हाउस, पिकनिक, नम्बर, सायरन, पर्स, कर्ल, पिनकुशन, टीचर, प्लास्टिक, साइनबोर्ड, फैशन, स्कार्फ, सर्चलाइट, डायनामाइट, सिगरेट, पेपरवेट, नोटबुक, पोस्टमार्टम, लिबर्टी, लेफ्टराइट, स्कूल, इंजिन, ब्लैकबोर्ड, मशीनगन, आफिस, न्यूजपेपर, टैंक, बम, पोस्टर, रेफ्रीजरेटर, आइसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक, थरमस, फैन, कार, क्लीन शेव, होटलों, मास्टर, रिपोर्ट, लीडर, इंस्पेक्टर, कार्नेट, टार्च, म्यूजियम, व्हिस्की, क्लीनर, साइकिल, मिस, लाइब्रेरी, कम्पनी, ब्रेकडाउन, एंग्लो इंडियन, पोलिटिकल सफरर, रेस्ट्रां, लिपिस्टिक, हैंडबैग, नेल पालिश, ब्रसियर्स, माइक्रोफोन आदि शब्द प्रमुख हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य में अरबी और फारसी भाषाओं के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया है। इन भाषाओं के प्रमुख शब्दों के अंतर्गत– कमबख्त, किताब, अक्सर, बुनियाद, रोजगार, कब्रिस्तान, बेतहाशा, दोस्त, हुजूर, मेहरबानी, शोख, काश, खुद, शुक्रिया, सुर्ख, बदरंग, बदहवास, आदमखोर, बेहतर, चिराग, दहशत, रोजगार, उजाला, मशाल, कर्ज, हैरत, गरीब, इलाज, दावत, जमाना, इंतजार, फौलाद, मोजा, सलामत, अखबार, शायद, खामोशी, फरियाद, अदालत, आखिरी, बयान, नफरत, आदम की जात, इश्तहार, मोर्चा, मनहूस, इल्लत, मकसद, वहशी, तीमारदारी, बुनियादी फर्क, गस्त, नादान, जालिम, होशियार, कोशिश, तकलीफ, मकसद, इत्मीनान, वादा, इत्तिफाक, आशियाना, तानाशाही, दौलत, जरूरत, दिमाग, मेहमान आदि शब्द प्रमुख हैं। अरबी–फारसी भाषा के ऐसे शब्दों को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करती उनकी यह काव्य–पंक्ति देखिए–

“मैंने आवाज़ दी है कोई अभी आएगा
मेरी फरियाद ज़माने को वह सुनाएगा।
नफ़रतों का कफ़न, ओ ओढ़ के जाने वाले,
अब मेरा प्यार ले, यह गीत वही गाएगा।”[10]

6.1.2 शब्द-शक्तियां

'शब्दार्थ सम्बन्धः शक्तिः' अर्थात् शब्द और अर्थ के संबंध को शब्द शक्ति कहा जाता है। अभिव्यक्ति के स्तर पर भाषा की तीन शब्द-शक्तियां मानी गयी हैं- अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना। अभिधा शब्द शक्ति में जहां अभिधेयार्थ पर बल दिया जाता है वहीं लक्षणा शब्द शक्ति में लक्ष्यार्थ प्रमुख होता है। जब अभिधा और लक्षणा शब्द शक्तियों का अर्थ बाधित होकर व्यंग्यार्थ प्रमुख हो जाता है तब वहां व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग माना जाता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने काव्य में इन तीनों ही शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है। उनके काव्य-साहित्य में अभिधा शब्द शक्ति से प्रभावित अनेक कविताएं देखी जा सकती हैं जहां साधारण अर्थ में ही उन्होंने अभिव्यक्ति को अत्यंत प्रभावी बना दिया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"मैं जानता हूं पथराव से कुछ नहीं होगा
न कविता से ही।
कुछ हो या न हो
हमें अपना होना प्रमाणित करना है।"[11]

प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में आज के समाज के उस यथार्थ को दिखाने का प्रयास किया गया है जिसमें किसी के कुछ करने या न करने से समाज पर कोई प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता।

अभिधा शब्द शक्ति से अर्थ बाधित होने पर लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया जाता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने लक्ष्यार्थ को ध्यान में रखकर भी अनेक काव्य रचनाओं का सृजन किया है। उदाहरण के लिए उनकी 'पोस्टमार्टम की रिपोर्ट' शीर्षक कविता प्रस्तुत है-

"गोली खाकर
एक के मुंह से निकला-
'राम'।
दूसरे के मुंह से निकला-
'माओ'।

लेकिन तीसरे के मुंह से निकला–
'आलू'।
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे।"[12]

उपर्युक्त काव्य–पंक्तियों में 'राम' जहां धर्मांधता का प्रतीक है वही 'माओ' राजनीतिक विचारधारा की कट्टरता की ओर संकेत कर रहा है। कविता में 'आलू' शब्द का प्रयोग करके कवि ने समाज के उस भूखे और कमजोर वर्ग की ओर संकेत किया है जिसके लिए धर्म और राजनीति से बढ़कर रोटी का महत्व है।

नयी कविता में व्यंजना शब्द शक्ति का विशेष महत्व है क्योंकि यहां नये प्रतीकों व बिम्बों के सहारे व्यंग्यार्थ पर विशेष बल दिया गया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य भी इससे अछूता नहीं है। उनकी 'शरणार्थी' शीर्षक कविता का एक उदाहरण देखिए–

"काली आंधियों
और मूसलाधार बरसात में
इन छोलदारियों में पड़े
याद करने के लिए हमारे पास बहुत कुछ है–
यही कि दुनिया कितनी जल्दी सिमट जाती है,
और ईश्वर कितना असहाय दीखने लगता है।
और आदमी?
उसकी बात मत करो
बेहतर है कि मुझे किसी
आदमखोर जानवर की मांद में ले चलो
कम–से कम पेट भरे होने पर
वह हमला तो नहीं करेगा।"[13]

इन पंक्तियों में यदि शब्दों के साधारण अर्थों पर ध्यान दिया जाए तो कवि का अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। डॉ.मञ्जु त्रिपाठी के शब्दों में–"कवि इनसे अलग हमें

वहां दूर उस अर्थ तक ले जाना चाहता है जहां पहुंचकर हमें आज के मानव की, सभ्य मानव की क्रूरता, निष्ठुरता तथा वैज्ञानिकता की कल्पना मात्र भी भयावह प्रतीत होने लगती है। वह मानव की बात नहीं करना चाहता, उससे श्रेष्ठ तो वह रक्तपिपासु बर्बर जंगली जानवर को समझता है क्योंकि मनुष्य उससे अपनी ही इच्छा नहीं पूरी करना चाहता है वरन् उसका संग्रह करना चाहता है।"[14]

इस प्रकार देखा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने काव्य में तीनों ही शब्द शक्तियों का अभिव्यक्ति की आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है।

6.1.3 शब्द-गुण

काव्य-साहित्य में सामान्यतः तीन गुणों को प्रधान माना गया है-ओज, प्रसाद एवं माधुर्य। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की प्रेम और प्रकृति की कविताओं में जहां प्रसाद और माधुर्य गुण दिखाई देते हैं वहीं प्रगतिशील कविताओं में इनकी भाषा में ओज गुण की प्रधानता देखने को मिलती है। इस संबंध में माधुर्य गुण प्रधान उनकी कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"चांद गीले बादलों में सो रहा है,
चांदनी को कुछ नशा-सा हो रहा है।
नींद में फेंके गये पांसे झकोरे,
होश किसको क्या मिला क्या खो रहा है।"[15]

इसी प्रकार ओज गुण प्रधान उनकी कविता का एक उदाहरण देखिए-

"इतिहास के जंगल में
हर बार भेड़िया मांद से निकाला जाएगा
आदमी साहस से, एक होकर,
मशाल लिए खड़ा होगा।"[16]

इन दोनों ही काव्य-पंक्तियों में समुचित शब्द गुणों के समावेश के कारण भावाभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावी हो गई है। इसी प्रकार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के विभिन्न काव्य-संग्रहों में ऐसी अनेक कविताएं मिलती हैं जिनमें उपर्युक्त काव्य गुणों का समावेश दिखाई देता है।

6.2 बिम्ब–विधान

'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिंदी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है–मूर्त रूप प्रदान करना। काव्य में बिम्ब को वह शब्द चित्र माना जाता है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। इस प्रकार बिम्ब का प्रयोग करके कोई भी रचनाकार अमूर्त्त को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। जब कोई रचनाकार अपने सहित्य में बिम्ब का प्रयोग करता है तो वह न सिर्फ अपनी अभिव्यक्ति हो सरल बनाता है अपितु अनुभूति के स्तर पर भी उसे प्रभावी रूप देने में सक्षम हो जाता है। कविता के लिए चित्रात्मक भाषा की इस उपयोगिता को प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत ने भी अपने ग्रन्थ पल्लव की भूमिका में स्वीकार किया है। वस्तुतः कविता में चित्रात्मक भाषा का आधार बिम्ब विधान ही होता है। इस प्रकार काव्य–भाषा के लिए बिम्ब विधान अपरिहार्य है। बिम्ब की अवधारणा और स्वरूप के संबंध में अनेक विद्वानों द्वारा तथा विभिन्न शब्दकोशों में इस पर विभिन्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं जिन में से कुछ पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा–

'मानक हिन्दी कोश' के अनुसार बिम्ब शब्द का अर्थ है–" किसी आकृति की वह झलक जो किसी पारदर्शक पदार्थ में दिखाई पड़ती है, परछांही, प्रतिमूर्ति, साहित्य में शब्द का लक्ष्य या व्यंजना शक्ति से निकलने वाला अर्थ, संकेत या विपर्याय"[17] आदि।

इसी प्रकार भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश में बिम्ब का अर्थ–"प्रतिबिम्ब, छाया, मूर्ति, कमण्डल, सूर्य या चन्द्र का मण्डल, आभास, झलक, गिरगिट, एक छन्द का नाम, कुंदरू"[18] आदि बताया गया है।

बिम्ब के संदर्भ में डॉ.शंभुनाथ चतुर्वेदी का विचार है कि–"बिम्ब के द्वारा इस प्रकार का एक रूप हमारे समक्ष उभरकर आता है जो हमारी इन्द्रियों के अनुकूल होता है। इसीलिए बिम्ब के माध्यम से किसी भी भाव को आत्मसात करने में सुगमता होती है।"[19]

इसी प्रकार बिम्ब के संबंध में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ.केदारनाथ सिंह का मानना है कि–“बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।”[20]

कुमार विमल के अनुसार, “वस्तुतः बिम्ब–विधान कला का वह मूर्त्त पक्ष है जिससे कलाकार की भाववयन (एक्स्ट्रेशन) संश्लिष्ट सौंदयानुभूति को वस्तु–सत्य का संस्पर्श या तद्‌गत सम्पृक्त आधार के साथ सादृश्याभास मिल जाता है।”[21]

इस प्रकार बिम्ब शब्द के कोशीय अर्थ एवं उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सरल रूप में कहा जा सकता है कि बिम्ब, भाव एवं अनुभूतियों को चाक्षुष रूप प्रदान करके काव्य में आकर्षण उत्पन्न करते हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में उनका बिम्ब–विधान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य में न सिर्फ समाज के यथार्थ की ओर संकेत किया है बल्कि अपनी भाषा में बिम्बों का सहज प्रयोग करके उसे चित्रात्मक रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत भी किया है। उनके काव्य में बिम्बों के प्रयोग के संदर्भ में डॉ.रमेश ऋषिकल्प का विचार है कि–“छायावादी कवियों की भांति कल्पनाश्रित बिम्ब सर्वेश्वर में नहीं हैं। औरत की महीन–महीन और मधुर–मधुर कल्पना में छायावाद का संपूर्ण रेशमी लहंगा गंदला हो गया था। प्रगतिवादियों ने यथार्थ के नाम पर पत्थर पटक बिम्ब पैदा किए थे जिनमें बड़बोलापन और सपाटबयानी अधिक थी। नई कविता के कवि सर्वेश्वर अपनी परंपरा के उन खतरों को अच्छी तरह पहचानते हैं। उन्हें यह अहसास रहा है कि बिम्बविधान की परंपरागत प्रणाली और नए अर्थ के बीच एक बड़ी खाई रही है। आधुनिक जीवन का यथार्थ तेजी से अपना रूप रंग बदल रहा है। इसलिए सर्वेश्वर ने उन बिम्बों को कविता में स्थान दिया जो समकालीन यथार्थ को मूर्त्त करते हैं।”[22]

सुविधा की दृष्टि से सर्वेश्वर के काव्य में बिम्बों को मुख्यतः दो श्रेणियों – ऐन्द्रिक एवं काल्पनिक बिम्बों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है–

ऐन्द्रिक बिम्ब

इसके अंतर्गत हमारी इन्द्रियों से संबंधित बिम्ब यथा– दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, स्वाद, गति आदि आते हैं। सर्वेश्वर के काव्य में प्रयुक्त ऐन्द्रिक बिम्बों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

दृश्य बिम्ब

इस श्रेणी के बिम्बों के अंतर्गत उन बिम्बों को समाहित किया जा सकता है जिनमें हमारी आंखों के सम्मुख विभिन्न चेष्टाओं और व्यापारों के चित्रांकन की क्षमता होती है। इन बिम्बों को भी वस्तु और व्यापार बिम्बों के रूप में विभाजित किया जा सकता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने काव्य में ऐसे बिम्बों का प्रयोग अधिकांशतः किया है। ऐसे ही एक बिम्ब का उदाहरण देखिए–

> "एक सरकंडे की गाड़ी है
> जिसमें मेढक जुते हुए हैं
> मच्छर शहनाइयां बजा रहे हैं,
> लाल चींटे सवार हैं :
> ओ, अरे ओ ! अपना शीश झुकाओ,
> आज के युग की सवारी निकल रही रही है।"[23]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने राजनीति जैसै अमूर्त विषय को सरकण्डे की गाड़ी के रूप में चित्रित करके अपने बिम्ब के माध्यम से उसे मूत्त रूप देने का प्रयास किया है।

श्रव्य बिम्ब

इस बिम्ब के अंतर्गत उन बिम्बों को रखा जा सकता है जिनमें ध्वनियों की प्रधानता होती है। सर्वेश्वर के काव्य के ऐसे ही एक बिम्ब का उदाहरण दृष्टव्य है–

> "दादुर मोर पपीहा बोले
> बोले आंचल धानी रे
> खन–खन–खन–खन चुरियां बोलें
> रिमझिम–रिमझिम पानी रे।"[24]

स्पर्श बिम्ब

इस प्रकार के बिम्ब में स्पर्श की अनुभूति की प्रधानता होती है। एक उदाहरण देखिए–

"आज पहली बार
थकी शीतल हवा ने
शीश मेरा उठाकर
चुप–चाप अपनी गोद में रखा,
और जलते हुए मस्तक पर
कांपता–सा हाथ रखकर कहा–[25]"

घ्राण बिम्ब

गन्ध की अनुभूति संबंधी बिम्बों को घ्राण बिम्ब की कोटि में रखा जाता है–

"एक थका हुआ, नम सुगन्धित झोंका
क्यारियों से होकर चला गया।"[26]

गति बिम्ब

इस प्रकार के बिम्बों में गति की अनुभूति का प्राधन्य रहता है। एक गति–चित्र देखिए–

"सर पर गट्ठर, लपके तेज कदम,
झुका पलक चौपायों के पीछे,
कोई घायल मन सहसा–सहसा
भूले गीतों को दोहराता है।"[27]

प्रणय बिम्ब

प्रेम हमारे दैनिक जीवन के व्यापार का एक महत्वपूर्ण अंग है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी अनेक कविताओं में प्रणय संबंधी बिम्बांकन किया है। उनकी ऐसी ही एक कविता का उदाहरण प्रस्तुत है–

"घास की एक पत्ती के सम्मुख
मैं झुक गया
और मैंने पाया कि
मैं आकाश छू रहा हूं।"[28]

सांस्कृतिक बिम्ब

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी अनेक कविताओं में सांस्कृतिक बिम्बों का भी प्रयोग किया है। इन बिम्बों के अंतर्गत अधिकतर पूजा-अर्चना एवं उत्सवों आदि के दृश्यों का बिम्बांकन किया गया है-

"रामायण की कथा बांचती थी,
ठाकुरद्वारे में कीर्तन करती थी,
गैरिक कंचुकी पहनती थी,
आरती सी दिपती थी
चन्दन सी जुड़ाती थी
प्रसाद सी मिलती थी
चरणामृत-सी व्याकुल होंठों से लगकर
रग-रग में व्याप जाती थी।"[29]

आवश्यकता संबंधी बिम्ब

इस श्रेणी के बिम्बों के अंतर्गत दैनिक जीवन की आवश्यकताओं एवं क्रिया-कलाप संबंधी बिम्बों को रखा जाता है।

एक उदाहरण देखिए-

"शाम-
सेन्दुर का बड़ा टीका लगाए
बुनकर की सांवली औरत
सूत की रंग-बिरंगी लच्छियां रंगकर
आकाश की अरगनी पर टांग रही है।"[30]

काल्पनिक बिम्ब

काल्पनिक बिम्बों से तात्पर्य मानसिक बिम्बों से है। इन बिम्बों के अंतर्गत ऐसे बिम्ब आते हैं जिनका संबंध हमारी इन्द्रियों की अपेक्षा भावों और विचारों से अधिक होता है। वस्तुतः इन बिम्बों में वैचारिक एवं भावात्मक अनुभूति की प्रधानता होती है। इन मानसिक बिम्बों के संदर्भ में प्रभाकर शर्मा का विचार है कि-"मानस बिम्ब ऐसे बिम्ब हैं जिनमें दृश्य-गुण की अपेक्षा भावात्मक या वैचारिकता का पुट

हो। अतिशय भावाकुलता एवं चिन्तन की स्थिति में कवि ऐसे बिम्बों का सृजन करता है।"[31] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भी अपने काव्य में काल्पनिक बिम्बों का सहजता से प्रयोग किया है। यहां सुविधा की दृष्टि से काल्पनिक बिम्बों को भाव बिम्ब एवं विचार बिम्ब के रूप में विभक्त किया जा रहा है–

भाव बिम्ब

भाव बिम्बों में चित्र और दृश्यबोध की अपेक्षा उसका भाव पक्ष प्रबल होता है। सर्वेश्वर की 'सुहागिन का गीत' शीर्षक कविता का एक भाव बिम्ब देखिए–

"चुप रहो जरा सपना पूरा हो जाने दो,
घर की मैना को जरा प्रभाती गाने दो,
खामोश धरा–आकाश दिशाएं सोयी हैं,
तुम क्या जानो क्या सोच रात भर रोयी हैं?
ये फूल सेज के चरणों पर धर देने दो,
मुझको आंचल में हरसिंगार भर लेने दो,
मिटने दो आंखों के आगे का अंधियारा,
पथ पर पूरा–पूरा प्रकाश हो लेने दो।
यह ठंडी–ठंडी रात उनींदा का आलम,
मैं नींद–भरी–सी चले नहीं जाना बालम।"[32]

विचार बिम्ब

विचार बिम्बों में मानसिक चिंतन की प्रधानता रहती है। चूंकि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक प्रखर पत्रकार भी थे इसलिए स्वाभाविक रूप से उनके काव्य में विचार बिम्बों की भी कमी नहीं है। इस संदर्भ में एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"जो भी आएगा
समाजवाद और समानता के नाम की
ईंटें पकाएगा
मनमाने बेडौल सांचों में
ढालेगा कच्ची मिट्टी
पर बुझा पड़ा रहेगा आवां
नाम गुलबिया चुत्तर झावां।"[33]

6.3 प्रतीक-योजना

प्रतीक अंग्रेजी शब्द 'सिम्बल' का हिन्दी अनुवाद है। यह एक ऐसा शब्द है जिससे किसी वस्तु का बोध होता है। वस्तुतः प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव, विचार या अगोचर तत्व को साकार करने के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए, किसी देश का ध्वज उस देश की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण राष्ट्र के सम्मान एवं गौरव का प्रतीक माना जाता है।

हिन्दी साहित्य में प्रतीकों के प्रयोग की परम्परा नवीन नहीं है। सिद्ध साहित्य और कबीर की उलटबांसियों में प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में किया गया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में प्रतीक योजना पर विचार करने से पूर्व प्रतीक शब्द के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के विचारों से परिचित हो लेना समीचीन होगा।

प्रतीक शब्द के संबंध में हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य भगीरथ मिश्र का विचार है कि-"अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं की समानता या प्रत्यक्षता के आधार पर जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का संकेत या प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"[34]

डॉ.हरिचरण शर्मा के अनुसार, "प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के निमित्त प्रस्तुत किए गए प्रत्यक्ष या दृश्य संकेत हैं।"[35]

इसी प्रकार प्रतीक के संदर्भ में ओमप्रकाश अवस्थी का विचार है कि, "वास्तव में प्रतीक अनुभूति पर अर्थ की और अर्थ पर भी ठोसपन या विशिष्टार्थ की वरीयता का द्योतक हैं।"[36]

इस प्रकार उपर्युक्त विचारों के आधार पर सरल रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रतीक अनुभव व अनुभूति की अवस्था विशेष के वे शाब्दिक प्रतिरूप हैं जिनके माध्यम से विस्तृत को संक्षेप में कहने का प्रयास किया जाता है। साहित्य में प्रतीक अनुभूति को प्रभावी बनाने एवं वातावरण को नया अर्थ देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

नई कविता के संदर्भ में प्रतीकों का विशेष महत्व है। इस दौर के कवियों ने परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग भी अपने तरीके से किया है। इस संदर्भ में डॉ.रमेश

ऋषिकल्प का विचार है कि, "शेर, बकरी, भेड़िया, खरगोश, मेमना, गिलहरी, तोता, मैना, गाय, सांप, बछड़ा सभी प्रतीक हैं और वह ऐसे प्रतीक हैं जिनका प्रशेष अत्यंत प्राचीन है और जिनका प्रयोजन नई कविता के कवियों ने अपने ढंग से किया।"[37]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य में अनेक प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। उनके अधिकांश प्रतीक उस परिवेश की उपज हैं जो अनुभूति के साथ सदैव उनके साथ बना रहा। इसीलिए उनके अधिकतर प्रतीक सामाजिक और राजनीतिक जीवन से संबंधित हैं। सामान्य जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों को भी उन्होंने अपने प्रतीकों का आधार बनाया है। विश्वम्भर मानव ने उनके प्रतीकों पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है, "कुछ अत्यधिक प्रचलित जैसे सांझ, दीप, चांद, नाव, ताल आदि, कुछ निजी जैसे खपचियां, पोस्टर, बांस का पुल आदि के, कुछ गांव के जीवन से संबंधित जैसे नट, चरवाहा आदि, इसके अतिरिक्त कबीर की भांति इन्होंने कुत्ता, खरगोश, तोता, गौरैया, गिलहरी, मेंढक आदि जीव-जन्तुओं को भी प्रतीक के रूप में लिया है।"[38] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के प्रतीक विधान पर विचार करते हुए रमेश ऋषिकल्प ने भी कहा है कि, "प्रतीक व्यवस्था इस बात का संकेत देती है कि सर्वेश्वर प्रतीक मामूली आदमी के लिए लिखते हैं। इसीलिए मामूली आदमी की जिन्दगी के प्रतीक इनमें अनजाने ही आते रहे हैं। जैसे 'गोबरैले', 'भाड़ का ठंडा देश', सूखी पत्तियां', 'टांके दिन', 'रंगीन घड़ियां', 'पनियल सांप', 'खौलता गर्म पानी', 'पेट पर बंधा तकिया', 'गिद्ध', 'जंगल का दर्द', 'एक सूनी नाव', 'कुआनो नदी'।"[39]

सुविधा की दृष्टि से सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

प्राकृतिपरक प्रतीक

जब प्रकृति के किसी पदार्थ या जीव-जन्तु के माध्यम से किसी विचार अथवा भावना का प्रतिनिधित्व किया जाता है तो ऐसे प्रतीक प्रकृतिपरक प्रतीक कहलाते हैं। इन प्रतीकों को भी जड़ और चेतन प्राकृतिक प्रतीकों के रूप में बांटा जा सकता है। जड़ प्रतीकों के अंतर्गत नदियां, पेड़-पौधे, आकाश, पहाड़, वनस्पतियां आदि

आते हैं। जबकि चेतन प्रतीकों के अंतर्गत चेतनाशील जीव–जन्तु आते हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। उनके काव्य–संग्रहों के नाम भी अधिकांशतः प्राकृतिक प्रतीकों पर ही आधारित हैं। 'काठ की घंटियां' जहां कुण्ठाग्रस्त मानव की प्रतीक हैं जो चाहकर भी अपनी अभिव्यक्ति नहीं दे पाता है वहीं 'बांस का पुल' एक ऐसे व्यक्तित्व का प्रतीक है जो अत्यधिक सहनशील है। 'गर्म हवाएं' आज के समाज में व्याप्त अकुलाहट और व्याकुलता का प्रतीक हैं। इसी प्रकार 'जंगल का दर्द' समाज की उस यातना का प्रतीक है जिसे आज भी हम सब भोग रहे हैं। इस प्रकार समग्रता से देखने पर पता चलता है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग खुलकर किया है। उनके काव्य में अभिव्यक्त एक प्राकृतिक प्रतीक का उदाहरण दृष्टव्य है–

> "चिड़ियों को लाख समझाओ
> कि पिंजड़े के बाहर
> धरती बहुत बड़ी है, निर्मम है,
> वहां हवा में उन्हें
> अपने जिस्म की गंध तक नहीं मिलेगी।
> यूं तो बाहर समुद्र है, नदी है झरना है,
> पर पानी के लिए भटकना है,
> यहां कटोरी में भरा जल गटकना है।"[40]

उपर्युक्त पंक्तियों में चिड़िया एक ऐसे व्यक्तित्व का प्रतीक है जो सारी सुख–सुविधाएं पाकर भी मुक्ति की आकांक्षा रखती है।

सांस्कृतिक प्रतीक

इन प्रतीकों के अंतर्गत संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीकों एवं सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रतीकों को शामिल किया जाता है। इस संदर्भ में उनकी 'पीस पैगोडा' शीर्षक कविता का एक उदाहरण देखिए–

> "ज़रूर मेरे दोस्त !
> मेरी बधाई स्वीकार करो,

और इस बार यदि फिर
'पीस पैगोडा' बनाना पड़े
तो बौद्ध भिक्षुओं के गैरिक वसनों को न भूलना,
क्योंकि उन ढीले चोगों के नीचे
बड़ी-बड़ी आटोमेटिक राइफलें तक
आसानी से छिपाई जा सकती हैं।"[41]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'पीस पैगोडा' और बौद्ध भिक्षुओं के गैरिक वसन, दोनों को ही शांति और अहिंसा के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है।

परम्परागत प्रतीक

परम्परागत प्रतीकों के अंतर्गत ऐसे प्रतीक आते हैं जिनका प्रयोग प्रारम्भ से ही होता आया है। नयी काव्य परिपाटी में यद्यपि नये प्रतीकों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है फिर भी कुछ प्रतीक ऐसे हैं जिन्हें परम्परागत रूप से नये कवियों ने भी स्वीकार किया है। इन प्रतीकों के अंतर्गत प्रभात, दीप, नाव, अंधकार आदि को लिया जा सकता है। इन प्रतीकों का प्रयोग सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भी अपने काव्य में किया है-

"चांदनी रात
शांत वन
पत्तियां झर रही हैं।
घुमाव लेती नदी
चप्पू चलाती चली आ रही है
एक नाव"[42]

यांत्रिक एवं वैज्ञानिक प्रतीक

इन प्रतीकों के अंतर्गत यांत्रिक जगत से संबंधित प्रतीकों को रखा जाता है। आज का युग विज्ञान का युग है और हमारे चारों ओर वैज्ञानिक उपकरणों का जाल है, ऐसे में साहित्यकारों द्वारा वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग करना स्वभाविक है। हमारे विवेच्य रचनाकार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भी अपनी अनेक कविताओं में वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है-

“शब्द यदि बुलेट होते
तो तानाशाहों की छाती पर बैठे होते।”[43]

यहां बुलेट को वैज्ञानिक प्रतीक के अंतर्गत शक्ति और हिंसा के रूप में दिखाया गया है।

यौन प्रतीक

नयी कविता में यौन प्रतीकों को ग्रहण करने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं किया गया है। इस संबंध में डॉ.रमेश ऋषिकल्प का विचार है कि, “नई कविता का एक अंश यौन परिकल्पनाओं से भी लदा है और इस यौन परिकल्पना ने भी पचासों तरह के प्रतीक बनाए हैं।”[44] यौन प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति-मन की कुंठा, दमित अनुभूतियां और अवचेतन की प्रतिक्रियाएं व्यक्त की जाती हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में प्रयुक्त यौन प्रतीक सामान्यतः प्राकृतिक उपकरणों से लिए गए हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

“तुम्हारा तन
एक हरी-भरी झाड़ी है।
जिसमें मैं मेमने-सा
अपना तन रगड़ता हूं।”[45]

नवीन एवं मौलिक प्रतीक

इस श्रेणी में ऐसे प्रतीकों को शामिल किया जा सकता है जो बिल्कुल नवीन हैं और पूर्व में इनका प्रयोग नहीं हुआ है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में इस प्रकार के अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण देखिए-

“प्रगति का इतना ही
इतिहास मैं जानता हूं।
क्योंकि हर बार अन्त में
मैं....महज मैं-
एक सूना प्लेटफार्म,
निर्जन खामोश पड़ा रह गया हूं,
यही कहने के लिए

कि एक ट्रेन आयी थी

रुकी थी

चली गयी;

शायद फिर आएगी।"[46]

यहां पर कवि ने प्लेटफार्म को एक सहनशील व्यक्तित्व के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है।

6.4 उपमान विधान

नई कविता में भाषा के अंतर्गत उपमान विधान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस दौर की कविता में अर्थालंकारों का प्रयोग सामान्यतः अधिक दिखाई देता है। इन अर्थालंकारों का मूल उपमान विधान ही होता है। इन उपमानों का प्रयोग समान्यतः चार प्रकार से किया जाता है। मूर्त के साथ मूर्त, मूर्त के साथ अमूर्त, अमूर्त के साथ अमूर्त एवं अमूर्त के साथ मूर्त रूप में। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में इन चारों ही रूपों में उपमानों का सफल प्रयोग किया गया है। उनके यह उपमान उनके परिवेश की उपज हैं। स्पष्टीकरण के लिए ऐसे उपमानों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

1. "शांत ज्वालामुखी-सी तुम
सो रही हो चांद अपने वक्ष पर रखकर।"[47]

2. "चुपचाप जिसमें भावनाएं चढ़ती-उतरती हैं,
अखण्ड कीर्तन की
थकी हुई स्पष्ट धुन-सी।"[48]

3. "आपरेशन थियेटर-सी
जो हर काम करते हुए भी चुप है।"[49]

4. "ठंडी खुरपी-सी जिन्दगी को
प्रतीक्षा है जिन हाथों की
वे कहीं गोदामघरों के दरवाजों पर
काट कर लगा तो नहीं दिए गए?"[50]

5. "लोकतंत्र को जूते की तरह

लाठी में लटकाए

भागे जा रहे हैं सभी सीना फुलाए।"[51]

उपर्युक्त पंक्तियों में वर्णित इन उपमानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने नवीन उपमानों के माध्यम से नई कविता को एक विशिष्ट पहचान दी है। इनके यह उपमान न सिर्फ नवीन हैं बल्कि अभिव्यक्ति के स्तर पर भी अपनी अलग छाप छोड़ते हैं। उनके उपमानों के संदर्भ में डॉ.कल्पना अग्रवाल का विचार है कि, "उनके उपमान सटीक, सार्थक, सादृश्य के सूचक और काव्यानुभवों को संप्रेषित करने की पूरी योग्यता रखते हैं।"[52]

6.5 मुहावरे एवं लोकोक्तियां

मुहावरे और लोकोक्तियां किसी भी भाषा की जीवंतता का प्रमाण होते हैं। इनके प्रयोग से भाषा में न सिर्फ सजीवता आ जाती है बल्कि भाषा के लोक तत्व की पूर्ति करने में भी मुहावरे और लोकोक्तियां बहुत सहायक होते हैं। वास्तव में मुहावरा उन वाक्यों अथवा वाक्यांशों को कहा जाता है जो अपने शब्दों का सामान्य वाच्यार्थ न प्रकट कर बल्कि कुछ विलक्षण अर्थ जताते हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य की अभिव्यक्ति को सुस्पष्ट और प्रभावी बनाने के लिए अनेक लोक प्रचलित मुहावरों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है। उनमें से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

1. गोद में मुंह छुपाना
2. आदमी होने का एहसास कराना
3. आग तापना
4. दीवारों का हिलना
5. बत्तीसी झड़ना
6. हाथ फैलाना
7. दिन डूबना
8. स्वर फूटना
9. राह मोड़ना
10. पंख छोटे होना

11. नरक का कीड़ा होना

12. दरार पड़ जाना

13. विपत्ति का पहाड़ टूटना

14. उल्टे पांव लौट जाना

15. चेहरा पीला पड़ जाना

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य की भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों की भाषा है। रचनाकार ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए लोक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तिों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य की भाषा आम बोलचाल की भाषा होने के कारण भी मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग यहां स्वाभाविक रूप से हुआ है।

6.6 शैली-विधान

शैलीगत विधान के अंतर्गत यहां पर मुख्य रूप से सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के गद्य-साहित्य के भाषाई और शैलीगत पक्ष पर संक्षिप्त चर्चा की जा रही है। इस क्रम में चूंकि उनके साहित्य के भाषाई पक्ष पर पूर्व में ही चर्चा की जा चुकी है इसलिए इस विषय पर पुनः चर्चा करना प्रासंगिक नहीं होगा। शैलीगत विधान के अंतर्गत उनके गद्य साहित्य में विभिन्न शैलियां देखने को मिलती हैं जिनमें व्यंग्यात्मक शैली, नाटकीय शैली, आत्मचरितात्मक शैली, आलंकारिक शैली, मार्मिक शैली, विचारात्मक शैली और उद्देश्य प्रधान शैलियां प्रमुख हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए उनके साहित्य में निहित कुछ प्रमुख शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

व्यंग्यात्मक शैली

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार बनाया है। उनकी इस शैली का प्रयोग उनके साहित्य में अधिकांशतः दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए उनकी कहानी 'छिलके के भीतर' का एक संवाद देखिए जिसमें रचनाकार ने बड़ी कुशलता से व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है-

"एक-दूसरे की घात में बैठे हुए दोनों मित्रों के छिलके उतर चुके थे और भीतर छिपी वास्तविकता उभर आई थी।"[53]

इस कहानी में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करके आज के युवाओं की समस्याओं को उभारते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि हम सब आज नैतिक रूप से कितने खोखले हो चुके हैं।

आत्मचरितात्मक शैली

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने कई ऐसी कहानियां भी लिखी हैं जिनमें पात्र अपना परिचय स्वयं ही देता है। इस प्रकार की कहानियों में आत्मचरितात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण देखिए–

"मैं तांगे से उतर पड़ा। सड़क पर काफी भीड़ जमा थी। रास्ता एकदम रुक गया था। कौतूहलवश एक तरफ से भीड़ में घुसकर जो मैंने देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा।"[54]

आलंकारिक शैली

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मूलतः एक कवि थे, इस बात का प्रमाण उनकी कहानियां भी देती हैं। उनकी अनेक कहानियों के संवादों में अलंकारप्रधान शैली को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

"खिड़की के बाहर का आकाश तारों से भर गया, जैसे सफेद फूल कढ़ा एक काला परदा गिर पड़ा हो और कमरे का प्रकाश धीमा–धीमा होता गया।"[55]

दार्शनिक शैली

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने कई गंभीर विषयों पर चर्चा के दौरान दार्शनिक शैली का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार की शैली का अधिकतर प्रयोग उनके उपन्यासों में देखने को मिलता है। इस संदर्भ में उनके उपन्यास 'सूने चौखटे' का एक उदाहरण देखिए–

"और समाज में आज निन्यानवे प्रतिशत ऐसे ही दुर्बल व्यक्ति हैं। आमोद–प्रमोद किसलिए? आत्मविस्मृति के लिए? अपने को भूलने की जरूरत ही क्या यह सूचित नहीं करती कि अपने को याद रखना दुखद है? अपने को याद करना दुखद क्यों होना चाहिए?"[56]

इसी प्रकार अपने गद्य की अन्य विधाओं में भी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग करके अपनी भाषाई कुशलता का परिचय दिया है।

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य की भाषा को एक नया आयाम दिया है जिसमें शब्दों का चयन, बिम्ब, प्रतीक, उपमान विधान और शैलीगत दृष्टि का विशेष महत्व है। रचनाकार ने अपनी भाषा को न सिर्फ सरल और सहज बनाए रखा है बल्कि आम बोलचाल के शब्दों का चयन करके भाषा के लोक तत्व की पूर्ति भी की है। इस प्रकार भाषाई संदर्भ में भी उनको आम आदमी का रचनाकार कहा जा सकता है। अपनी व्यंग्यात्मक शैली और पत्रकार की सजग भाषा के कारण उनकी अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावी बन गयी है। इस प्रकार साहित्यिक भाषा के क्षेत्र में भी उन्हें एक कुशल रचनाकार कहा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तीसरा सप्तक टीका : प्रो.सतीश कुमार, पृष्ठ-53

2. इतवारी पत्रिका : ओमप्रकाश थानवी, अंक-जून 1981, पृष्ठ-43

3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-66

4. तारसप्तक : संपादक-अज्ञेय, पृष्ठ-301

5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-274

6. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-68

7. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-90

8. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना-व्यक्ति और साहित्यः डॉ.कल्पना अग्रवाल, पृष्ठ-106

9. सर्वेश्वर का काव्य-संवेदना और संप्रेषण : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ-162

10. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-18

11. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-2, पृष्ठ-79

12. वही, पृष्ठ-199

13. वही, पृष्ठ-61

14. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य-संसारः डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, पृष्ठ-113

15. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-79

16. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-2, पृष्ठ-102

17. मानक हिन्दी कोश : संपादक-रामचन्द वर्मा, खण्ड–4, पृष्ठ–127

18. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश : संपादक-रामचन्द्रपाठक, पृष्ठ–566

19. नया हिन्दी काव्य और विवेचना : डॉ.शंभुनाथ चतुर्वेदी, पृष्ठ–338

20. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान : डॉ.केदारनाथ सिंह, पृष्ठ–23

21. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व : कुमार विमल, पृष्ठ–217

22. नई कविता और सर्वेश्वर : डॉ.रमेश ऋषिकल्प, पृष्ठ–64

23. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–125

24. वही, पृष्ठ–88

25. वही, पृष्ठ–59

26. वही, पृष्ठ–47

27. वही, पृष्ठ–63

28. वही, पृष्ठ–245

29. वही, पृष्ठ–197

30. वही, पृष्ठ–188

31. नरेश मेहता का काव्य-विमर्श और मूल्यांकन : प्रभाकर शर्मा, पृष्ठ–95

32. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–27

33. वही, पृष्ठ–319

34. पाश्चात्य काव्य-शास्त्र : भगीरथ मिश्र, पृष्ठ–245

35. सर्वेश्वर का काव्य-संवेदना और संप्रेषण : डॉ.हरिचरण शर्मा, पृष्ठ–171

36. नई कविता-रचना प्रक्रिया : ओमप्रकाश अवस्थी, पृष्ठ–217

37. नई कविता और सर्वेश्वर : डॉ.रमेश ऋषिकल्प, पृष्ठ–71

38. नयी कविता नये कवि : विश्वम्भर मानव, पृष्ठ–280

39. नई कविता और सर्वेश्वर : डॉ.रमेश ऋषिकल्प, पृष्ठ–173

40. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–126

41. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–106

42. प्रतिनिधि कविताएं: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–53

43. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–58

44. नई कविता और सर्वेश्वर : डॉ.रमेश ऋषिकल्प, पृष्ठ–72
45. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–161
46. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–144
47. वही, पृष्ठ–45
48. वही, पृष्ठ–51
49. वही, पृष्ठ–52
50. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावलीः संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–2, पृष्ठ–26-27
51. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1, पृष्ठ–315
52. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना–व्यक्ति और साहित्यः डॉ.कल्पना अग्रवाल, पृष्ठ–127
53. क्षितिज के पारः सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–43
54. वही, पृष्ठ–15
55. वही, पृष्ठ–114
56. सूने चौखटेः सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ–78

अध्याय
7

अध्ययन का निष्कर्ष

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के संपूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन और विश्लेषण करने के पश्चात् मुझे उनके विचारों और रचना-दृष्टि को समझने का अवसर मिला। सर्वेश्वर की साहित्यिक दृष्टि समाज में व्याप्त असमानता, शोषण और अन्याय को भेदती हुई आम आदमी के जीवन और चरित्र से जुड़कर साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। वास्तव में उनका साहित्य भोगे हुए यथार्थ का प्रतिबिम्ब है। यह यथार्थ आज भी हमारे समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। एक आम आदमी किस प्रकार राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में अपने आप को असहाय और बेबस पाता है, यह सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। मानवीय मनोवृत्तियों की जितनी परख सर्वेश्वर जी को थी उतनी किसी भी साहित्यकार के लिए उसके साहित्य की सार्थकता हेतु होना आवश्यक है। वस्तुतः साहित्य की सार्थकता सहितार्थ भाव की संस्कृति में होती है। यह सहितार्थ भाव उनकी समग्र रचनाओं में किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है। इनका अधिकांश साहित्य मानवीय सरोकारों के इर्द-गिर्द ही रचा गया है। आपके साहित्य की इस दृष्टि के संबंध में प्रसिद्ध साहित्यकार नामवर सिंह ने ठीक ही कहा है, “इतना ज्यादा ह्यूमन कंसर्न सर्वेश्वर में था जितना बहुत कम लोगों में होता है और यह ह्यूमन कंसर्न ही उनकी कविताओं में व्यक्त होता है। शायद इसके पीछे उनका वह गांव का संस्कार था जो उन्हें अधिक मानवीय, सदाशय और आत्मीय बनाता है।”[1] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आम आदमी के रचनाकार हैं और उनके अधिकांश विचार समकालीन संदर्भों में विशेष रूप से प्रासंगिक हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की संघर्ष भूमि में पले-बढ़े सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने परिवार एवं परिवेशगत जीवन को बड़ी पैनी दृष्टि से परखा और जाना था। बचपन की सुखद और दुखद स्मृतियां और भोगा हुआ परिवेशगत यथार्थ ताउम्र उनके साथ रहा जो आपके साहित्य के विविध रूपों में अभिव्यक्त भी हुआ है। सर्वेश्वर के साहित्य में व्यक्ति अनुभव की प्रधानता देखी जा सकती है। किशोरावस्था से ही उनका रुझान प्रगतिशील विचारों की ओर दिखाई देता है। इनका व्यक्तित्व निष्पक्षता और साफगोई वाला तथा स्वभाव चिंतन-प्रधान, विनम्र एवं कर्म साधना से परिपूर्ण था। इस संदर्भ में तीसरे सप्तक में उनके इस स्वभाव पर की गयी टिप्पणी का विवरण प्रासंगिक है- "स्वभाव से न अच्छा न बुरा, बाहर से गंभीर, सौम्य, पर भीतर वैसा नहीं। विपत्ति, संघर्ष, निराशाओं से घनिष्ट परिचय के कारण जरूरत पड़ने पर खरी बात कहने में सब से आगे। अपनों के बीच बेगानों-सा रहने की और बेगानों को अपना समझने की मुख्य आदत थी। काहिली, चुस्ती, सोचना अधिक करना कम, अपनी लीग पर चलना और किसी की परवाह न करना ये उनके मुख्य दोष हैं, दूसरों की दृष्टि में। आकांक्षा कुछ ऐसा करने की, जिससे दुनिया बदल सके। मन का असंतोष और मित्रों का सहयोग उनकी संपत्ति थी।"[2] वास्तव में सर्वेश्वर विद्रोही व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। उनका यह व्यक्तित्व उस समाज की देन है जिसमें वे पले-बढ़े थे। इनकी दृष्टि में परम्परागत समाज के प्रति एक नवीनता का भाव दिखाई देता है जो विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है। उन्होंने समाज में व्याप्त अवसरवाद और शोषण की संस्कृति को बहुत करीब से देखा और समझा था। इसीलिए वे परिस्थितियों से समझौता न करके जीवन के हर क्षेत्र में विद्रोह का रास्ता अपनाते रहे। विवेचित रचनाकार की यह विद्रोही दृष्टि उसकी कविताओं तथा नाटकों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढाँचे में परिवर्तन के हिमायती के रूप में अभिव्यक्त हुई है। सर्वेश्वर जीवन में परिवर्तन के प्रबल पक्षधर हैं इसीलिए वे कहते भी हैं-

"लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पथ प्यारे हैं।"[3]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हिन्दी साहित्य जगत के एक ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनकी लेखनी से साहित्य की कोई भी विधा छूटी नहीं है। उनके व्यक्तित्व के समान उनका रचना जगत भी व्यापक है। सर्वेश्वर ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। हालांकि साहित्य में उनकी पहचान एक कवि के रूप में ही की जाती है। उनका काव्य केवल भावों का मात्र उच्छलन नहीं वरन् बौद्धिकता की परिणति भी है। इसलिए उनकी रचना के आयाम व्यापक हैं। उनके सभी काव्य संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। वीरेन्द्र जैन के संपादन में उनकी रचनावली भी अब वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हो चुकी है। काव्य से लेकर पत्रकारिता तक उन्होंने एक लम्बी यात्रा तय की है। इस यात्रा में उन्होंने बहुत-सा बाल साहित्य भी रचा है जिस पर आधुनिक रचनाकारों ने बहुत कम ध्यान दिया है।

एक सशक्त कवि के रूप में सर्वेश्वर ने विविध विषयों को आधार बनाकार काव्य-सृजन किया है। जिसमें प्रकृति प्रधान, प्रेम प्रधान और राजनीतिक व्यंग्य प्रधान कविताएं प्रमुख हैं। सर्वेश्वर के इन समस्त काव्य-संग्रहों के अध्ययन एवं विश्लेषणोंपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि नई कविता के कवियों की सूची में सर्वेश्वर का विशिष्ट स्थान है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में उनका दृष्टिकोण बहुत पारदर्शी है। वे अपने चिन्तन में समाजवादी और अभिव्यक्ति में आक्रामक हैं। उनकी कविताएँ अनुभूति की प्रमाणिकता को मुखरित करती हुई प्रतीत होती हैं जिसके कारण उनका काव्य संप्रेषण की दृष्टि से बहुत सफल है। 'काठ की घंटियाँ' शीर्षक काव्य-संग्रह से कवि की जो काव्य-यात्रा शुरू होती है वह 'कोई मेरे साथ चले' तक आते-आते यह भली-भाँति स्पष्ट कर देती है कि इस यात्रा में कोई पड़ाव नहीं है।

यद्यपि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की पहचान एक कवि के रूप में की जाती है तथापि कथा साहित्य में उनके योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। विश्वविद्यालय जीवन से ही उन्होंने कहानियां लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1950 तक वे कहानियां ही लिखते रहे। उनकी पहली कहानी 'क्षितिज के पार' 1942 में शंभुनाथ सिंह द्वारा संपादित 'क्षत्रिय मित्र' में छपी थी। उपन्यास के क्षेत्र में सर्वेश्वर की पहचान का प्रमुख कारण उनके द्वारा लिखित तीन लघु उपन्यास- सूने चौखटे, सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का मसीहा हैं। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से तीनों का विशिष्ट महत्व है। प्रथम उपन्यास 'सोया हुआ जल' एक मनोविश्लेषणवादी उपन्यास है और शैलीगत विधान में पश्चिमी शैली के अधिक निकट है। उपन्यास की वैचारिकी के संदर्भ में डॉ.स्मृति ने लिखा है, "उपन्यासकार सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कहीं न कहीं उन 'वादों' से अवश्य जुड़े हुए थे जिनकी अस्पष्ट रूप से अपने उपन्यास 'सोया हुआ जल' में वे चर्चा करते हैं। साम्यवाद का खण्डन, पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध, सर्वहारा वर्ग का मंडन, बुर्जुआ नारा तथा मानववादी परंपरा युग का समर्थन उपन्यासकार ने 'सोया हुआ जल' में किया है।"[4] दूसरा उपन्यास 'पागल कुत्तों का मसीहा' सामाजिक और आर्थिक समस्यों पर आधारित एक यथार्थवादी उपन्यास है जिसके माध्यम से रचनाकार ने जीवन मूल्यों के क्षरण को कथ्य का आधार बनाया है। सर्वेश्वर के तीसरे और अन्तिम उपन्यास 'सूने चौखटे' में सामाजिक व्यवस्था पर करारा प्रहार किया गया है और साथ ही उन परम्पराओं और खोखली मूल्य-व्यवस्था पर भी व्यंग्य किया गया है जो आज के समय में अपनी प्रासंगिकता खो चुकी हैं। यह उपन्यास औपन्यासिक विन्यास की दृष्टि से भी अत्यंत सफल माना गया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लिखे गए नाटकों में सर्वेश्वर का विशिष्ट स्थान है। उनके अधिकांश नाटक सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए समसामयिक परिस्थितियों पर आधारित हैं। इनमें से उनका 'बकरी' शीर्षक नाटक विशेष रूप से चर्चित रहा है। इस नाटक के माध्यम से रचनाकार ने गांधीवादी सिद्धान्तों और विचारों की ओट में छिपे राजनीतिक व्यवस्था के शोषक चरित्र को उघाड़कर रख दिया है।

सर्वेश्वर के जीवन की अनुभूतियां उनके विचारों के माध्यम से साहित्य में अभिव्यक्त हुई हैं। वस्तुतः साहित्य और विचार का घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य-सृजन में विचार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। साहित्य मानव के विकास एवं संवेदना की अभिव्यक्ति है। साहित्य की अर्थवत्ता एवं महत्ता विचारों से ही संपुष्ट होती है। वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विचारों को संवेदना के स्तर पर व्यक्त कर रचनाकार पाठक के साथ एक तादात्म्य स्थापित करता है। हिन्दी साहित्य प्राचीन युग से अब तक विभिन्न विचारधाराओं से जुड़ा रहा जिसका प्रभाव समय-समय पर जनमानस पर पड़ा। कहा गया है कि कोई भी रचनाकार बिना विचारक हुए महान सर्जक नहीं हो सकता। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की साहित्यिक दृष्टि में भी विभिन्न विचारों और विचारधाराओं का प्रस्फुटन हुआ है। वास्तव में साहित्य समकालीन संदर्भों से अलग हटकर कालजयी नहीं हो सकता। इस संबंध में गोस्वामी तुलसीदास भी कहते हैं कि 'जौं बरषै बर बारि विचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू।' अर्थात् यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता है तो उससे कवितारूपी श्रेष्ठ मुक्तामणि की प्राप्ति होती है। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य में विचारधाराओं का व्यापक महत्व है। इस संदर्भ में देखा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के विचार मार्क्स, गांधी और लोहिया के समाजवादी विचारों के अधिक निकट हैं साथ ही उन पर अन्य विचारधाराओं का भी प्रभाव है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में यदि वैचारिक दृष्टियों के संदर्भ में देखा जाए तो उनके सभी काव्य-संग्रहों में ऐसी अनेक कविताएं संकलित हैं जिन पर समाजवादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि उनके प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की घंटियां' में गांधीवादी समाजवाद का विश्लेषण किया जाए तो इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में गांधीवादी समाजवाद का प्रभाव अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। फिर भी 'पीस पैगोडा', 'बेबी का टैंक', 'आटे की चिड़िया' और 'सिपाहियों का गीत' शीर्षक कविताएं कहीं न कहीं गांधीवादी समाजवाद से प्रेरित कही जा सकती हैं। सर्वेश्वर के इस काव्य-संग्रह की बहुत-सी कविताएं लोहिया की समाजवादी विचारधारा से भी प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए 'गीत रह गया कोई,' 'घास काटने की मशीन', 'खाली जेबें, पागल कुत्ते और बासी

कविताएं', 'तेजी से जाती हुई,' 'सरकंडे की गाड़ी', 'कॉफी हाउस में एक मेलोड्रामा' और 'प्लेटफार्म' आदि शीर्षक कविताओं पर लोहिया के समाजवादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। 'कॉफी हाउस में एक मेलोड्रामा' शीर्षक कविता के संदर्भ में हिन्दी के प्रसिद्ध समीक्षक डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल का विचार है कि "कवि मानस पर डॉ.राममनोहर लोहिया के विचारों की यह स्पष्ट मुहर है। जान-बूझकर कवि ने कविता के अंत में डॉ.लोहिया के विचारों की प्रेरणा का संकेत दिया है। लोहियावादी विचारधारा का ही प्रभाव है कि कवि उसके बाद के संकलनों में उनकी वैचारिक भूमिका को काव्य में ढालता गया है। इस विचार-दर्शन में लोहे की जेबों में छिपी हुई बारूद की असंगति को विश्लेषण में पकड़ा गया है। जहां हर दर्शन क्रास लेकर खड़ा था, हर साक्रेटीज को जहर दिया जा रहा था, जहां रूसो का समता, बंधुत्व, तथा स्वतंत्रता वाला सिद्धांत जीवित किया जा रहा है, जहां काल मार्क्स का अखाड़ा था वहां लोहिया का विचारक देश की हालत समझकर बोला है-

'बचो, उनसे बचो
जो लकड़ी की टांगों पर दौड़कर
मानव प्रगति का इतिहास लिखने में लगे हैं।'

इस आवाज को सुनकर जंग खाए इंसान जग पड़े थे। देवताओं और संतों के नकली चेहरे लगाए हुए लोगों को लोहिया विचार ने नंगा कर दिया था। इस प्रकार संपूर्ण कविता में लोहिया विचार दर्शन का तार्किक विस्फोट है।"[5]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कुछ कविताएं मार्क्सवादी विचारधारा से भी प्रभावित हैं। ऐसी कविताओं में 'इस मृत नगर में', 'जरूरत है एक सरकारी जासूस की', 'आग', 'भेड़िया-1,2,3' आदि कविताएं प्रमुख हैं।

कहानियों में समाजवादी विश्लेषण की दृष्टि से 'लड़ाई' शीर्षक कहानी गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित कही जा सकती है। इस कहानी में लेखक ने आजादी के बाद के भारत में गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को बिखरते हुए दिखाया है। आज यदि कोई व्यक्ति गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर चलना भी चाहे तो हमारा भ्रष्ट समाज उसे जीने नहीं देता। प्रस्तुत

कहानी में लेखक ने गांधी जी के सिद्धांतों को यथार्थ के धरातल पर उघाड़ कर रख दिया है। इसी प्रकार 'टूटे हुए पंख', 'डूबता हुआ चांद', 'सोने के पूर्व', 'कमला मर गई', 'लपटें', 'बेबसी', 'चोरी', 'पुलियावाला आदमी', 'रोशनी', 'कच्ची सड़क', 'नयी कहानी के नायक और नायिका', 'मरी मछली का स्पर्श', 'भगत जी', 'मास्टर श्यामलाल गुप्ता' और 'बरसात अब भी आती है' शीर्षक कहानियों पर लोहियावादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। इन कहानियों में मुख्यतः सामाजिक और नारी विषयक समस्याओं को आधार बनाया गया है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाट्य साहित्य में अभिव्यक्त समाजवादी विचारधारा की दृष्टि से देखा जाए तो उनका प्रथम नाटक 'बकरी' गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित कहा जा सकता है। यद्यपि नाटक के कथ्य में गांधीवादी विचारधारा के अवमूल्यन को ही केन्द्र में रखा गया है। इस नाटक में समकालीन भारत के गांवों की दुर्दशा और उसमें निहित स्वार्थी नेताओं द्वारा आम जनता के शोषण को उजागर किया गया है। इसी प्रकार उनके अन्य नाटकों 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ', 'हवालात', और 'हिसाब-किताब' में भी विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः यदि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिकी के संदर्भ में कहा जाए तो वह आम आदमी के कवि हैं और उस आम आदमी की पीड़ा और व्यथा ही उन्हें समाजवादी विचारधारा के निकट लाकर उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति पाती है। इसी प्रकार उनका कथा-साहित्य भी उनके विद्रोही व्यक्तित्व से अछूता नहीं है। समाज में घटित होने वाले किसी भी अन्याय और अत्याचार से उन्हें चिढ़ है। शायद यही कारण है कि समाजवाद की विचारधारा उनके कथा-साहित्य में भी अभिव्यक्त हुई है। सर्वेश्वर का नाट्य साहित्य उनके प्रगतिशील विचारों का जीवंत दस्तावेज है जिसमें उन्होंने व्यंग्योक्ति शैली का सहारा लेते हुए समकालीन सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर तीखा प्रहार किया है।

आधुनिक कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपने अनूठे व्यक्तित्व के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। मूलतः वे लोकधर्मी कवि हैं जिनके काव्य में लोकजीवन की धारा स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। सर्वेश्वर के काव्य साहित्य में आंचलिक

जीवन के चित्रण के साथ ही लोक तत्वों का भी बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है। उनकी कविता का आदर्श है कि वह साधारण जनों के सुख-दुख की वाणी बन सके। उन्होंने न सिर्फ ग्रामीण जीवन की विषमताओं का वर्णन किया है बल्कि उनकी हँसी-खुशी, नाच-गाना, तीज-त्योहारों की उनकी संस्कृति को भी अपने काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है। आम ग्राम-कवियों अथवा नगर कवियों की तरह उन्होंने ग्रामों या नगरों का सीधा चित्रांकन नहीं किया है बल्कि उनकी लोक चेतना उनके आधुनिक भाव-बोध और काव्य विषयों के अनुरूप ढलकर ही अभिव्यक्त हुई है। सर्वेश्वर को दिल्ली की सड़कें कुआनो नदी जैसी दीखती हैं मगर इस नदी की संपूर्ण परिकल्पना के पीछे उनकी लोकचेतना और ग्राम्य-जीवन के तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है-

"फिर बाढ़ आ गई होगी उस नदी में
पास का फुटहिया बाजार बह गया होगा,
पेड़ की शाखों में बँधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के
और नीचे कीचड़ में खड़े होंगे चौपाये
पूँछ से मक्खियाँ उड़ाते।"[6]

यह चित्र इतना प्रामाणिक और सजीव है कि लोक-जीवन के गहन अनुभव और संस्कारों के बिना इसका अंकन नहीं किया जा सकता। यह अंकन कवि का प्रयोजन नहीं है बल्कि एक तीखे यथार्थ को दिखाने में उसकी सार्थकता है। ऐसा नहीं है कि लोक संवेदना की यह अनुभूतियां सिर्फ सर्वेश्वर के काव्य में ही देखने को मिलती है अपितु उनका अन्य साहित्य भी लोक संवेदनाओं से परिपूर्ण है।

इस प्रकार मध्यवर्गीय संवेदना से जुड़े होने के कारण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना को लोक-सम्पृक्ति का रचनाकार कहा जा सकता है। लोक-सम्पृक्ति का तात्पर्य लोक और उसके जीवों से गहरा लगाव है। इसी से किसी रचनाकार की लोक संवेदना का पता चलता है। वास्तविकता यह है कि लोक की सम्पृक्ति के बिना कोई भी कवि अथवा कलाकार अपने को लोकप्रिय नहीं बना सकता। यह चेतना ग्राम्य जीवन के प्रामाणिक अनुभवों और वहाँ के लोगों के आपसी तौर-तरीकों, रहन-

सहन, रीति-रिवाजों, वातावरण, प्रकृति, बोलचाल, आस्था ओर विश्वासों आदि के गहन निरीक्षण से निर्मित होती है। इसी लोकसंस्कृति और लोक संवेदना की अनेकानेक अनुभूतियाँ सर्वेश्वर के काव्य और अन्य साहित्य में दृष्टिगत होती हैं।

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य में लोक-संवेदना की एक प्रामाणिक और प्रासंगिक दृष्टि मिलती है। यह दृष्टि उनकी अनुभूतियों, संवेदनाओं और भोगे हुए यथार्थ से विकसित हुई है। इसीलिए उनकी कविताएं मानवीय संवेदना की कविताएं बन सकी हैं।

समकालीन कविता सीधे आम जनता से जुड़ी है। इस दौर के कवियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने भाषाई स्तर पर अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनाई है। चूंकि उनका संबंध पत्रकारिता जगत से भी रहा है इस कारण उनकी रचनाओं में जगह-जगह पत्रकारिता की भाषा एवं संस्कृति दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही यहां यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की भाषा में अभिव्यक्ति पक्ष प्रधान है चाहे इसके लिए उन्हें विदेशी भाषा के शब्दों का सहारा ही क्यों न लेना पड़े। उनके संपूर्ण काव्य एवं अन्य साहित्य में भी भाषा का यह स्वरूप स्पष्टः देखा जा सकता है। उन्होंने अभिव्यक्ति के स्तर पर किसी भी सीमा में बंधना स्वीकार नहीं किया है। इसके साथ ही भाषा में विभिन्न प्रकार के बिम्बों, नवीन प्रतीकों और विविध प्रकार की शैलियों के माध्यम से भी उन्होंने भाषा को जीवंतता प्रदान की है। उनकी भाषा आम बोल-चाल की भाषा होने के कारण अभिव्यक्ति के स्तर पर बहुत प्रभावी है।

निष्कर्षतः कहा जाए तो सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने साहित्य की भाषा को एक नया आयाम दिया है जिसमें शब्दों का चयन, बिम्ब, प्रतीक, उपमान विधान और शैलीगत दृष्टि का विशेष महत्व है। रचनाकार ने अपनी भाषा को न सिर्फ सरल और सहज बनाए रखा है बल्कि आम बोलचाल के शब्दों का चयन करके भाषा के लोक तत्व की पूर्ति भी की है। इस प्रकार भाषाई संदर्भ में भी उनको आम आदमी का रचनाकार कहा जा सकता है। अपनी व्यंग्यात्मक शैली और पत्रकार की सजग भाषा के कारण उनकी अभिव्यक्ति अत्यंत प्रभावी बन गयी है। इस तरह साहित्यिक भाषा के क्षेत्र में भी वह एक कुशल रचनाकार हैं।

शोध-प्रबंध के समग्र निष्कर्ष के अंतर्गत मेरा विचार है कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का अधिकांश साहित्य समाजवाद और मानवतावादी विचारों से प्रभावित है जहां रचनाकार की दृष्टि आम आदमी के जीवन में समानता, बंधुत्व और आपसी भाईचारे तथा मानव-मूल्यों की हिमायती दिखाई देती है। उनके संपूर्ण साहित्य को समाजवाद और सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक परंपरा का निर्वहन करने के कारण जनवादी साहित्य कहा जा सकता है। इस शोध कार्य के दौरान सबसे बड़ी उपलब्धि यही कही जाएगी कि मुझे सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य के वैचारिक धरातल का पता चला। यह वैचारिक धरातल उनकी समाजवादी दृष्टि से विकसित होते हुए उनकी मानवतावादी दृष्टि तक विस्तार पाता हुआ प्रतीत होता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के साहित्य का अध्ययन एवं विश्लेषण तथा उनके विचारों और रचना-दृष्टि पर शोध कार्य करते हुए मुझे कई ऐसे विषयों की भी अनुभूति हुई जिन पर अभी भी शोध की संभावनाएं हैं-

क) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में समाजवादी विचारधारा का अनुशीलन

ख) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के पत्रकारिता साहित्य में अभिव्यक्त वैचारिकी

घ) समकालीन बाल साहित्य में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का योगदान

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. दिनमान : संपादक-रघुवीर सहाय, (नामवर सिंह का वक्तव्य), 2-8अक्टूबर, पृष्ठ-35

2. वक्तव्य, (तीसरा सप्तक), पृष्ठ-220

3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-1, पृष्ठ-263

4. सर्वेश्वर का कथा साहित्य : डॉ.स्मृति, पृष्ठ-65

5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ-32

6. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली : संपादक-वीरेन्द्र जैन, खण्ड-2, पृष्ठ-13

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. ‘अब गरीबी हटाओ’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2008
2. ‘अपना दाना’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1999
3. ‘एक सूनी नाव’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1992
4. ‘कविताएँ–एक’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1981
5. ‘काठ की घंटियाँ’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2001
6. ‘कविताएँ दो’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1978
7. ‘कुआनों नदी’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1984
8. ‘कोई मेरे साथ चले’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1985
9. ‘खूँटियों पर टँगे लोग’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1991
10. ‘गर्म हवाएँ’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1969
11. ‘जंगल का दर्द’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1976
12. ‘प्रतिनिधि कविताएं’ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010

13. 'बकरी' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2009

14. 'बांस का पुल' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2001

15. 'लड़ाई' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010

16. 'सम्पूर्ण गद्य रचनाएं' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, खंड–3, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1992

17. 'सूने चौखटे' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2009

18. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली' : संपादक–वीरेन्द्र जैन, खण्ड–1-9, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2004

19. 'सोया हुआ जल और पागल कुत्तों का मसीहा' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1997

20. 'हवालात' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002

21. 'हाथी की पो' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नवोदय सेल्स, नई दिल्ली, संस्करण–2002

22. 'होली धूम मच्यो री' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010

23. 'क्षितिज के पार' : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2003

सहायक–ग्रंथ सूची

1. 'अज्ञेय और उनके उपन्यास' : गोपाल राय, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1975

2. 'अंतरंग साक्षात्कार' : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, सचिन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण–1988

3. 'आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण' : रमेश कुन्तल मेघ, अक्षरा प्रकाशन,

नई दिल्ली, संस्करण–1969

4. ‘आलोचना और विचारधारा’ : नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012

5. ‘आधुनिक भारत के महानतम् भारतीय’ : डॉ.महेन्द्र मित्तल, ग्लोबल हारमनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण–2011

6. ‘आधुनिक हिंदी कविता तथा अन्य निबंध’ : डॉ.संतोष कुमार तिवारी, रचना प्रकाशन, मथुरा, संस्करण–1991

7. ‘आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान’ : डॉ.केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1994

8. ‘इतिहास और आलोचना’ : नामवर सिंह, सत् साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1956

9. ‘कल्पना और छायावाद’ : केदारनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1996

10. ‘कविता का जीवित संसार’ : अजित कुमार, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1972

11. ‘कविता से साक्षात्कार’: मलयज, संभावना प्रकाशन, हापुड़, संस्करण–1979

12. ‘काव्य रचना प्रक्रिया’ : कुमार विमल, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, संस्करण–1974

13. ‘गांधी और स्टालिन’ : लुई फिशर (हिंदी अनुवाद–श्री लेखराम), गोल्लान्ज प्रकाशन, लन्दन, संस्करण–1947

14. ‘गांधी, मार्क्स एंड सोशलिज्म’ : डॉ.राममनोहर लोहिया, नवहिंद प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण–1963

15. ‘Thatcher and Schwill’ : History of Europe, C. Scribner’s sons Publication, New York, 1900

16. ‘डॉ.राममनोहर लोहिया और सतत समाजवाद’ : डॉ.कन्हैया त्रिपाठी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण–2014

17. ‘तार सप्तक’ : संपादक–अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,

संस्करण–1972

18. ‘तीसरा सप्तक’ : संपादक–अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1971

19. ‘नई कविता’ : क्रान्तिकुमार, म.प्र. ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, संस्करण–1972

20. ‘नई कविता’ : डॉ.देवराज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002

21. ‘नई कविता और सर्वेश्वर’ : डॉ.रमेश ऋषिकल्प, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1979

22. ‘नई कविताएँ–एक साक्ष्य’ : डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1976

23. ‘नई कविता का आत्मसंघर्ष’ : मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1977

24. ‘नई कविता–कथ्य एवं विमर्श’ : डॉ.अरुण कुमार, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1991

25. ‘नयी कविता नये कवि’ : विश्वम्भर मानव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1980

26. ‘नई कविता–नये धरातल’ : डॉ.हरिचरण शर्मा, पदम बुक कम्पनी, जयपुर, संस्करण–1969

27. ‘नई कविता–रचना प्रक्रिया’ : ओमप्रकाश अवस्थी, राष्ट्रभाषा संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण–1985

28. ‘नई कविता स्वरूप और समस्याएँ’ : जगदीश गुप्त, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1971

29. ‘नया हिन्दी काव्य और विवेचना’ : डॉ.शंभुनाथ चतुर्वेदी, नन्द किशोर एण्ड सन्स प्रकाशन, चौक, वाराणसी, संस्करण–1964

30. ‘नरेश मेहता का काव्यः विमर्श और मूल्यांकन’ : प्रभाकर शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–1979

31. ‘नाटककार सर्वेश्वर’ : धीरेन्द्र शुक्ल, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1989

32. ‘परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य’ : हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–1984

33. ‘पाश्चात्य काव्य–शास्त्र’ : भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–1993

34. ‘पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास’ : डॉ.बी.एल.फड़िया, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, संस्करण–2002

35. ‘प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प–विधि’ : सत्यपाल चुध, इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद

36. ‘प्रयोगवाद और नयी कविता’ : डॉ.शम्भुनाथ सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, संस्करण–1991

37. ‘भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष’ : प्रो.विपिन चन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, संस्करण–1990

38. ‘भारत माता–धरती माता’ :राममनोहर लोहिया के सांस्कृतिक लेख, संपादक–ओंकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1993

39. ‘महात्मा गांधी के विचार’ : आर.के.प्रभु तथा यू.एन.राव, नेशनल बुक ट्रस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005

40. ‘मार्क्स और गांधी का साम्य–दर्शन’ : नारायण सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण–1963

41. ‘मार्क्स और पिछड़े हुए समाज’ : राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1986

42. ‘मानव मूल्य और साहित्य’ : धर्मवीर भारती, ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, संस्करण–1960

43. ‘मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और हिंदी उपन्यास’ : कुंवरपाल सिंह, नवचेतन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005

44. ‘मेरा समर्पित एकान्त’ : नरेश मेहता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–1962

45. ‘रामचरित मानस’ : गोस्वामी तुलसीदास, प्रथम सोपान (बालकाण्ड), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर प्रा.लि, नई दिल्ली, संस्करण–1994
46. ‘विचारधारा और साहित्य’ : अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
47. ‘शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा’ : डॉ.मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012
48. ‘स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी काव्य और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति’ : डॉ.चन्द्रभूषण सिन्हा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–1980
49. ‘समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता’ : डॉ.रघुवंश, दशाब्धि प्रकाशन, आगरा, संस्करण–1972
50. ‘समकालीन कविता का व्याकरण’ : डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव, शुभद्रा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1980
51. ‘समकालीन विचारधाराएं और साहित्य’ : डॉ.राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002
52. ‘समकालीन साहित्य चिंतन’ : संपादक–डॉ.रामदरश मिश्र, डॉ.महीप सिंह, ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1995
53. ‘समाजवाद की दशा–दिशा और लोहिया जीवन दर्शन’ : डॉ.राम सागर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010
54. ‘सत्ता, समाज और सर्वेश्वर की कविताएँ’ : डॉ. रसाल सिंह, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2009
55. ‘सर्वेश्वर और उनकी कविता’ : कृष्णदत्त पालीवाल, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1979
56. ‘सर्वेश्वर और उनका साहित्य’ : डॉ.कालीचरण ‘स्नेही’, आराधना ब्रदर्स प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–1997
57. ‘सर्वेश्वर का कथा साहित्य’ : डॉ.स्मृति, संजय बुक सेंटर प्रकाशक, वाराणसी, संस्करण–2004
58. ‘सर्वेश्वर का कवितालोक’ : डॉ.महेश दिवाकर, सुमन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1994

59. 'सर्वेश्वर का काव्य-संवेदना और सम्प्रेषण' : डॉ.हरिचरण शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण-1980

60. 'सर्वेश्वर का रचना संसार' : संपादक-प्रदीप सौरभ, मुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद

61. 'सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय' : डॉ.कृपाशंकर पाण्डेय, शिवम् प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1991

62. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य-संसार' : डॉ.मञ्जु त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2001

63. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य (मानवीय सरोकारों के दर्पण में)' : डॉ.विजय शर्मा, अमर प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण-2005

64. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य-संसार' : डॉ.दीपा जार्ज, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण-2009

65. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म' : कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2006

66. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना' : डॉ. इफ्फत असगर, नेहा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2004

67. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना-व्यक्ति और साहित्य' : डॉ.कल्पना अग्रवाल, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2001

68. 'साहित्य और विचारधारा' : ओमप्रकाश ग्रेवाल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, संस्करण-1994

69. 'साहित्य की वैचारिक भूमिका' : डॉ.राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2007

70. 'साहित्य-सहचर' : हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005

71. 'सुनो विद्यार्थियो' : महात्मा गांधी, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण-2011

72. 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व' : कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

संस्करण–1981

73. 'हिन्दी का गद्य साहित्य' : डॉ.रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2007

74. 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' : संपादक–डॉ.रामदरश मिश्र, ज्ञानचन्द्र गुप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1984

75. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण–2005

76. 'हिन्दी साहित्य का विकास' : डॉ.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिवार प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1954

<u>पत्र–पत्रिकाएं</u>

1. अमृत बाजार पत्रिकाः अंक–अगस्त 1934

2. आजकल (हिंदी मासिक), संपादक–सीमा ओझा, कुमार विमल (साक्षात्कार), जनवरी 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

3. आलोचना : अर्चना वर्मा, संपादक–शीला सन्धू, राजकमल प्रकाशन, जुलाई–सितम्बर 1978

4. आलोचना : खगेन्द्र ठाकुर, अक्टूबर–दिसम्बर, वर्ष 1985, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

5. आलोचना : संपादक–नामवर सिंह, अक्टूबर–दिसम्बर 2013

6. इतवारी पत्रिकाः ओमप्रकाश थानवी, अंक–जून 1981

7. दिनमान : नेमिचन्द्र जैन, 2-8 अक्टूबर, 1983

8. दिनमानः संपादक–रघुवीर सहाय, (नामवर सिंह का वक्तव्य), 2-8 अक्टूबर, 1985

9. भाषा त्रैमासिक : डॉ.कृष्णदत्त पालीवाल, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली

10. मधुमालती (परिचर्चा अंक) : वर्ष 1975

11. साहित्य मंडल पत्रिका : डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र (संपादक–के.रवि वर्मा), अंक 201, अक्टूबर–दिसम्बर 1998

12. हंस : अंक-अप्रैल 1934

13. हरिजन : महात्मा गांधी, अंक- 13 जुलाई 1947

14. हरिजन : महात्मा गांधी, अंक- 20 फरवरी 1937

15. दैनिक जागरण 29 दिसम्बर, 2014

16. अमर उजाला

17. दैनिक भास्कर

18. हिन्दुस्तान

शब्दकोश

1. 'आदर्श हिंदी-संस्कृत कोश' : संपादक-रामसरस शास्त्री, चौखम्भा विद्या भवन प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-1957

2. 'प्रभात बृहत् हिन्दी शब्दकोश' : संपादक-डॉ.धर्मेन्द्र वर्मा, खण्ड-1-2, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010

3. 'नालंदा अद्यतन कोश' : संपादक-पुरूषोत्तम नारायण अग्रवाल, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण-1992

4. 'नालंदा विशाल शब्द सागर' : संपादक-श्री नवल जी, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण-2000

5. 'बृहत् हिन्दी कोश' : संपादक-कालिका प्रसाद, वाराणसी ज्ञानमंडल लिमिटेड, चतुर्थ परिवर्धित संस्करण, मार्गशीष, संवत् 2030

6. 'भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश' : संपादक-पं.रामचन्द्र पाठक, संशोधित संस्करण-1995

7. 'मानक हिंदी कोश' : संपादक-रामचन्द्र वर्मा, खण्ड-4-5, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण-1964

8. 'लघु हिन्दी शब्द सागर' : संपादक-करुणापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, प्रकाशन, काशी, संवत्-2021

9. 'साहित्यिक पारिभाषिक शब्द कोश' : संपादक-प्रो.महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रो.तारकनाथ बाली, पूनम इण्टरनेशनल प्रकाशन, संस्करण-1992

10. 'हिंदी विश्वकोश' : संपादक–नगेन्द्रनाथ बसु, भाग–21, बी.आर.पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, संस्करण–1986